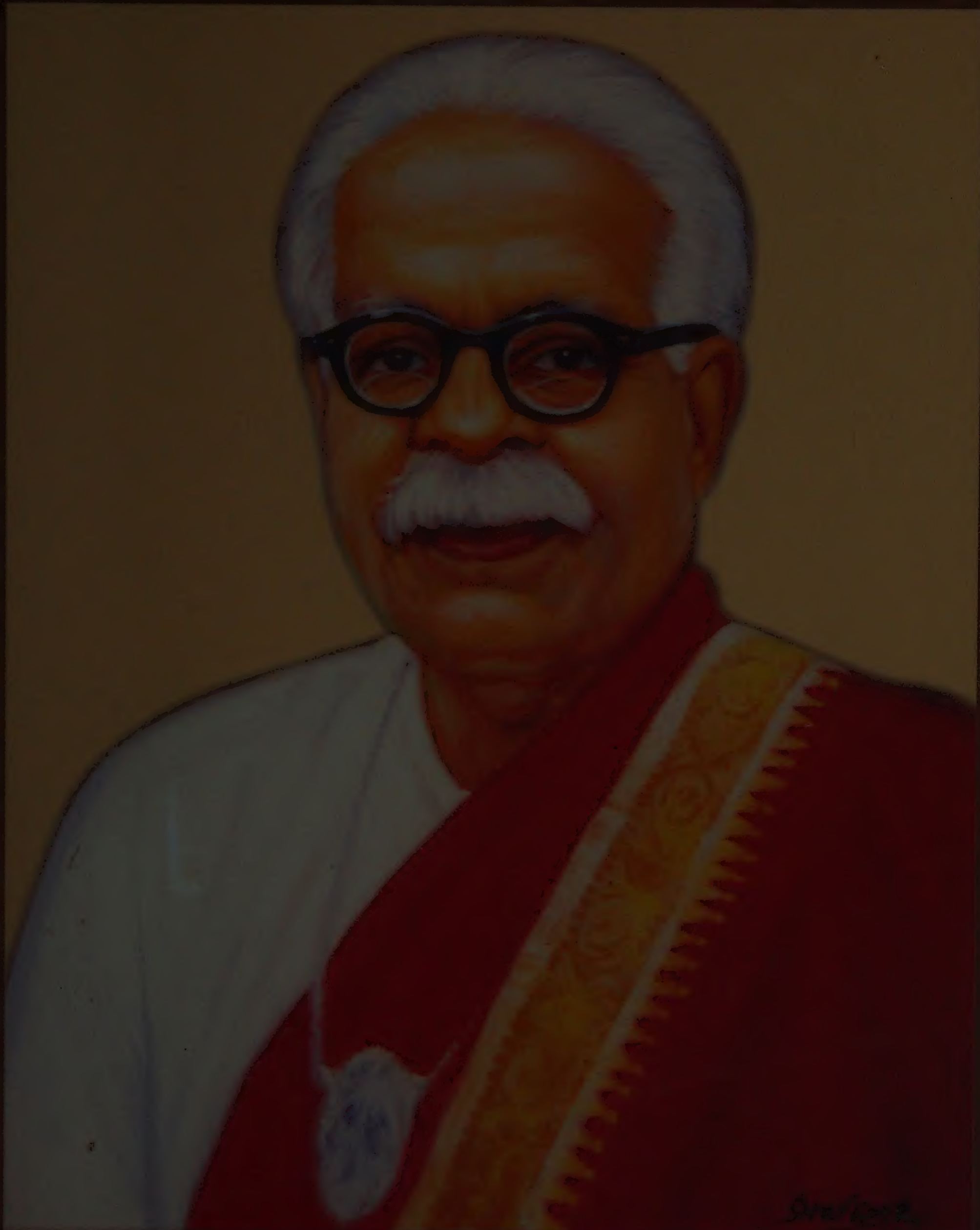
विश्व कोंकणि साहित्य - २

महाकवि गोविन्द पै

कन्नड भाषा का प्रथम राष्ट्रकवि



मूल लेखक
कय्यार किञ्जण्ण रै

अनुवाद
डॉ एल सुनिता बाई



An inscription in Konkani at the foot of one of the largest monolithic statues in the world. This statue of lord Gomateshwara was created around 983 AD by Chamundaraya, a minister of the Ganga King, Rajamalla.

महाकवि गोविन्द पै

मूल लेखक
कय्यार किंञण्ण रै

अनुवाद
डॉ. एल सुनीता बाई

कोंकणी भास आनी संस्कृती प्रतिष्ठान,
मंगळूर - 575016

Konkani Language and Cultural Foundation (R)
(Konkani Bhas Ani Sankriti Pratistan (R))
World Konkani Centre, Konkani Gaon,
Shakthinagra, Mangalore - 575 016

Maha Kavi Govinda Pai
A Book on the life and works of
Poet Laureate Manjeshwar Govinda Pai

Written by :
Shri Kayyar Kinhanna Rai (in Kannada)
Perdala - 671 551

Translated by : Dr. L. Sunitha Bai, Kochi
Cover Photo : Shevgoor Fine Arts, Mangalore
Printed at : Madhuban Graphics, Mangalore
Print[illegible]
Sponsored by K. Ram[illegible]th, [illegible]galore.

Published by
Konkani Language and Cultural Foundation (R)
(Konkani Bhas Ani Sankriti Pratistan (R))
World Konkani Centre, Konkani Gaon,
Shakthinagra, Mangalore - 575 016

भूमिका

'महाकवि गोविन्द पै' पै से संबन्धित मेरी तीसरी पुस्तक है। ई. स. १९४९ के मार्च महीने में मद्रास सरकार ने राष्ट्रकवि की उपाधि श्री पै को प्रदान की। इस प्रकार पहली बार एक कन्नड कवि को ऐसी एक उपाधि प्राप्त हुई। दूसरे वर्ष मुंबई में चलाए गए कन्नड साहित्य सम्मेलन के वे अध्यक्ष बने। दोनों घटनाओं के बीच मैंने अपनी पहली पुस्तक 'राष्ट्रकवि गोविन्द पै' लिखी। वह पुस्तक ई. स. १९५० में पूर्ण हुई। ई. स. १९८३ में उनकी शताब्दी के अवसर पर मैंने उन पर दूसरी किताब लिखी। इसका शीर्षक 'गोविन्द पै - स्मृति कृति' था। मंगलोर विश्वविद्यालय का कन्नड भाषा से संबंन्धित पहले प्रकाशन के रूप में यह प्रकाशित हुई। इसी शृंखला की तीसरी कडी है 'महाकवि गोविन्द पै'।

जब मैं कौमारावस्था में था और साहित्य में मेरी रुचि उत्पन्न होने लगी थी उस समय गोविन्द पै का परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला। मुझे याद है कि वे मेरे प्रति बडे दयावंत रहे थे और मुझसे उन्होंने प्यार भरा बर्ताव किया था। उनके जीवन और कृतित्व के बारे में पढने का शौक मुझको रहा था। इसी सिलसिले में मैं उन पर लेख लिखा करता था, भाषण देता था, पुस्तकें तैयार करता था और इस प्रकार उनके बारे में जानकारी फैलाता था। 'महाकवि गोविन्द पै' नाम की यह पुस्तक मेरे इसी प्रयत्न की पूर्ति कही जा सकती है।

इतना सब करते हुए भी उनके श्रेष्ठ व्यक्तित्व और रचनात्मक साहित्यिक प्रतिभा के साथ मैं न्याय कर सकूंगा, इसका मुझे सन्देह है। इस कवि के व्यक्तित्व एवं प्रभाव का स्पष्ट एवं विवरणात्मक चित्र प्रस्तुत करना उतना आसान नहीं है। वे असामान्य कुशलता के प्रतिभावंत, विचारवंत, दार्शनिक, अनुसंधाता, बहुभाषाज्ञानी, भाषावैज्ञानिक, विद्वान और कवि थे। फिर भी एक महान कार्य से संबद्ध होकर मैंने अपनी छोटी सी शक्ति का उपयोग किया और इसके सहारे में तृप्त हूँ।

अपनी पहली दोनों पुस्तकों और लेखों में मैंने जरूरत के अनुसार पै की कविता से उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। लेकिन इस पुस्तक में मैंने केवल गद्य रूपान्तर ही प्रस्तुत किया है । दूसरी भाषाओं में इस पुस्तक के अनुवाद को सरल बनाने के उद्देश्य से मैंने ऐसा किया है। अनुवाद कार्य में पद्य की अपेक्षा गद्य ही ज्यादा अनुकूल रहता है। कन्नड लोगों को भी उनकी कविता समझने के लिए पद्य की अपेक्षा गद्य ही ज्यादा सहायक रहेगा।

इस पुस्तक की रचना करने की प्रेरणा मुझे 'गोविन्द पै स्मारक समिति' से मिली जिनका मैं आभारी रहूँगा।

दुन्दुगेडि सालल्या नुडिवे नान्यार कलवम्
सलिसलेन्दु नुडिगे दुडिवे निन्नय सलवम्
(दूसरों का समय नष्ट करने के लिए मैं नहीं वोलता
भाषा के प्रति तुम्हारा ऋण चुकाने का मैं प्रयत्न करता हूँ।)

पेरडाल
२२-९-१९८७ कय्यार किंञण्ण रै

हिन्दी अनुवाद के संबन्ध में

'महाकवि गोविन्द पै' नाम के पुस्तक के मूल रचयिता श्री कय्यार किञ्जंण्ण रै ने यह पुस्तक कन्नड़ भाषा में लिखी है। इस पुस्तक के अंग्रेज़ी अनुवाद के संदर्भ में उन्होंने कहा कि इस अनुवाद से शोध एवं साहित्य के प्रेमी लोग पूरे संसार में महाकवि गोविन्द पै के बारे में समझ पायेंगे और उनकी साहित्यिक एवं शोधपरक उपलब्धियों की प्रशंसा करेंगे। हिन्दी अनुवाद के संबन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि संपूर्ण भारत में श्री पै के बारे में लोग समझ पायेंगे और उनकी साहित्यिक एवं शोधपरक उपलब्धियों की प्रशंसा करेंगे।

श्री गोविन्द पै अपूर्व प्रतिभा, विलक्षण स्मृति, महान विद्वत्ता, तीक्ष्ण क्षमता, बड़ी उत्सुकता, अविराम प्रयत्न आदि गुणों से युक्त थे। ऐसे एक महान लेखक का परिचय भारत के समस्त लोगों को कराने के लिए 'महाकवि गोविन्द पै' पुस्तक का हिन्दी अनुवाद सहायक रहेगा। कोंकणी भाषा और संस्कृती प्रतिष्ठान, मंगलोर के अध्यक्ष, श्री बस्ती वामन शणै ने इसके हिन्दी अनुवाद की माँग जो की उसके अनुसार अब इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद आपके सामने है।

भारत की सभी भाषाओं में हिन्दी केन्द्रीय महत्व की भाषा है। यह हमारी राष्ट्रभाषा और पूरे देश की संपर्क भाषा है। हिन्दी प्रदेश के लोग पूरे भारत की कोई भी साहित्यिक कृति हिन्दी में ही समझ सकते हैं। वैसे ही समस्त भारत के लोग किसी भी कृति के हिन्दी अनुवाद से उस कृति का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस दृष्टि से 'महाकवि गोविन्द पै' का हिन्दी अनुवाद बड़े ही महत्व का रहेगा। भारत की संश्लिष्ट भाषिक एवं सामाजिक संरचना में आदान प्रदान के ज़रिए हिन्दी भाषा ही लोगों की सहायता कर सकती है। हिन्दी के साहित्यकारों से दूसरी भाषाओं के साहित्यकारों की तुलना भी अनुवाद के ज़रिए संभव हो सकती है। हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और कन्नड़ के राष्ट्रकवि गोविन्द पै समकालीन एवं समान विषयों पर लिखनेवाले हैं। 'महाकवि

गोविन्द पै' का हिन्दी अनुवाद इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन में बड़ी सहायता पहुँचा सकता है।

'महाकवि गोविन्द पै' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत करते हुए उनकी महान प्रतिभा के सामने श्रद्धांजलि अर्पित करने का जो अवसर मुझे प्रदान किया गया उसके लिए मैं कोंकणी भाषा और संस्कृती प्रतिष्ठान, मंगलोर के अध्यक्ष, श्री बस्ती वामन शणै के प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

डॉ. एल. सुनीता बाय
रिटयेर्ड प्रोफेसर
वृन्दावन, काक्कनाड पी. ओ.
कोचीन - ६८२०३०, केरल

प्रकाशक की ओर से

राष्ट्रकवि गोविन्द पै का नाम कन्नड़ साहित्य और दूसरे भारतीय साहित्यों के गुणग्राहक लोगों को प्रेरणा प्रदान करनेवाला है। जब वे जीवित थे तब विद्वान लोगों, अनुसंधाताओं भाषावैज्ञानिकों, इतिहासकारों और दार्शनिकों के लिए दक्षिण कर्नाटक तीर्थस्थान ही रहा था। इसका कारण यही था कि वे एक भव्य पुरुष थे। अनेक साहित्यों के क्षेत्र में वे एक 'गोम्मट'(बाहुबली) थे। अपने मानवीय गुणों को लेकर भी वे बड़े प्रसिद्ध थे।

कन्नड़ भाषा के महान कवि एवं लेखक और ६६ वें अखिलभारतीय कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष कय्यार किंञण्ण रै अपने को श्री गोविन्द पै के शिष्य मानते थे। राष्ट्रकवि गोविन्द पै के जीवन एवं कविता के संबन्ध में उन्होंने अपनी 'महाकवि गोविन्द पै' नामकी पुस्तक में लिखा है। यह पुस्तक मलयालम भाषा में अनूदित हुई है। स्वर्गीय पै की साहित्य रचनाओं का गहरा अध्ययन श्री रै ने किया है। कन्नड और तुळु साहित्य से संबन्धित कार्यक्रमों में जब जब मेरी उनसे भेंट हुई तब तब वे हमेशा स्वर्गीय राष्ट्रकवि की विद्वत्तापूर्ण रचनाओं को अनुवाद के जरिए दूसरी भाषाओं में और फिर संसार के दूसरे साहित्यों में प्रचारित करने का प्रयत्न करने के लिए बार बार मुझे स्मरण दिलाते थे।

थोडे महीनों के पहले कन्नड पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद करनेवाले कासरगोड के अवकाशप्राप्त प्रधानाध्यापक श्री ए. नरसिंह भट्ट मुझसे मिले और कय्यार किंञण्ण रै की 'महाकवि गोविन्द पै' पुस्तक के उनके द्वारा किए गए अनुवाद की सूचना दी। कासरगोड की 'महाकवि गोविन्द पै स्मारक समिति ' द्वारा उस पुस्तक के प्रकाशन की स्वीकृति देने के बारे में भी उन्होंने बताया। लेकिन पिछले कई पर्षों से वे मौन थे। अन्त में पहले विश्व सारस्वत सम्मेलन समिति के द्वारा उसका प्रकाशन करने के लिए उन्होंने मुझसे विनती की।

जब मैं स्कूल में पढता था उस समय एक बार मैं राष्ट्रकवि गोविन्द पै से बंटवाल में मिला। राष्ट्रकवि के द्वारा लिखी हुई कई कविताएँ हमारे पाठ्यक्रम में थीं। ये उनके 'गिळिविंडु', 'नन्दादीप', 'गोलगोथा' आदि संग्रहों से ली गई थीं। मेरे बालकपन में कन्नड़ भाषा में परिचित होने के कारण मैं श्री गोविन्द पै को आदर देता था। इसलिए 'महाकवि गोविन्द पै' पुस्तक के श्री नरसिंह भट द्वारा किए गए अंग्रेज़ी अनुवाद को प्रकाशित करने की रै की माँग मैंने स्वीकार कर ली। मैं इसे अपना भाग्य समझता हूँ। बस्ती प्रकाशन की ओर से यह पुस्तक प्रकाशित करने का अवसर मुझे प्रदान करने के लिए मैं कय्यार किंञण्ण रै और श्री ए. नरसिंह भट्ट के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

अपने कन्नड कृतियों के हिन्दी तथा कोंकणी भाषाओं में अनूवादित करके प्रकाशित करने के लिए हमें अनुमति देकर, कवि, साहित्यकार और दिवंगत गोविंद पै पर विशेष आदराभिमानी, कय्यार किज़्ज़णण रै जी को कोंकणी प्रतिष्टान आभार व्यक्त करता है। अपनी, विद्वतपूर्ण भाषा शैली से हिन्दी, कोंकणी भाषाओं में अनुवाद कर्ता, कोच्ची की डा. सुनीति बाई को भी कृतज़ता पूर्वक आभार मानते हैं। "महाकवि गोविंद पै" हिन्दी भाषा कृति को सुदंर मुख प्रष्ट रचना मे। शेवगूर आर्टस मंगलूर को भी विश्व कोंकणी केंद्र कार्यकारि समिति कृतज़ता से स्मरण करती है।

मधुबन ग्रपिक्स, मंगलोर को जिन्होंने मनोहर रूप में इस पुस्तक को छापने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया, मैं धन्यवाद देता हूँ।

विश्व कोंकणी केंद्र
मंगलूर
१२.१०.२००८

बस्ति वामन शेणै
अध्यक्ष
कोंकणी भास आनि संस्कृती
प्रतिष्टान

महाकवि गोविन्द पै

अध्याय - १

प्रस्तावना

भारत के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी प्रयत्नों एवं उपलब्धियों के कारण हमेशा स्मरण करने योग्य रही है। दासता की बेडियों में पडकर दु:ख का अनुभव करनेवाले भारत ने क्रोध में आकर सिंह जैसा गर्जन किया। हमारे देश की आत्मा जागृत हो उठी और स्वतंत्रता की प्रखर उम्मीद लेकर आगे बढ़ी । साहित्य, कला, संस्कृति आदि भिन्न भिन्न क्षेत्रों में देश की सर्वांगीण उन्नति के खातिर कार्यक्रम तैयार होने लगे। उच्च-नीच, जात-पांत, पुरुष स्त्री आदि के भेद निकाल फेंककर भारत की जनता एक बनी और भरी हुई नदी के समान तेजी से आगे बढ़ी. भारत की स्वतंत्रता इस असामान्य शौर्य, अतुलनीय त्याग एवं अनंत प्रयत्न का परिणाम थी।

संक्रान्ति के इस काल में भारत की जनता की अन्तरात्मा को जागृत करने के लिए प्रयत्न करनेवाले थे श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, श्री दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहनराय और श्री नारायण गुरु। इन महान पुरुषों ने हमारे मन में आत्मविश्वास भर दिया कि हम भारतवासी धार्मिक , आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षेत्रों में संसार के दूसरे देशों से बढकर आगे रहे हैं। इस संदर्भ में तिलक, गाँधी, नेहरू, सुभार्ष बोस आदि नेता और स्वतंत्रता के शूरवीर स्मरण करने योग्य रहे हैं जिन्होंने अस्तमयरहित साम्राज्य की शासकीय मुद्रा लेकर चलनेवाले ब्रिटिशों को सत्य, अहिंसा और त्याग पर चलकर संग्राम करते हुए यहां से भगा दिया। देश की प्रगति के साथ साथ राष्ट्र का अभिमान भी बढा और भाषा, साहित्य आदि का विकास भी निरन्तर होता गया। इस दिशा में बंगाल सबसे आगे रहा। बंकिमचन्द्र चाटर्जी, रवीन्द्रनाथ टागोर जैसे लेखक एवं कवि देशप्रेम को जागृत करने के लिए एवं भाषा के प्रति प्रेम बढाने के लिए प्रयत्न करने लगे। बंकिमचन्द्र का 'वन्दे मातरम्' टागोर का 'जनगणमन' राष्ट्रगीतों के रूप में जो स्वीकार किया गया, यही इसका उज्ज्वल प्रमाण है। सर्वप्रथम बंगाल में जलाए गए इस दिये का प्रकाश समस्त भारत में व्याप्त हो गया। बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र,

कर्नाटक,केरल, आन्ध्र, तमिलनाड और भारत के अन्य कई प्रदेशों में भाषा एवं साहित्य के प्रति प्रेम बढ़ने लगा।

दक्षिण भारत में पुनरुत्थान का बिगुल बजाने का श्रेय श्री सुब्रह्मण्य भारती को जाता है। स्वतन्त्रता संग्राम का जोश चढते हुए इस संग्राम में भाग लेनेवाले अविस्मरणीय महान व्यक्तियों में प्रमुख थे कवि भारती। मलयालम साहित्य में कुमारनाशान और वळ्ळत्तोळ नारायण मेनोन, कन्नड साहित्य में ब. म. श्रीकान्तय्या, डॉ. बेन्द्रे, कुवेंपु, गोविन्द पै आदि इस दिशा में काम करनेवालों में प्रमुख थे। इन श्रेष्ठ व्यक्तियों ने अपने अपने साहित्य के जरिए भारतीय भाषाओं का गौरव बढाया। इन कृतित्वों में भारतीय जनता की आकांक्षा और इच्छा स्पष्ट और गतिवंत रही है। इन महान व्यक्तियों में एक थे महाकवि गोविन्द पै। उनके जीवन एवं कृतित्व को आधार बनाकर उनके व्यक्तित्व का अंकन करने का प्रयत्न यहां किया गया है।

बचपन

गोविन्द पै का जन्म २३ मार्च , ई. स. १८८३ को हुआ था। उनके पिता का नाम तिम्मा पै और माता का नाम देवकम्मा था। पै इनके प्रथम पुत्र रहे। उनके तीन छोटे भाई और तीन छोटी बहनें थीं। इनके नाम क्रमशः नारायण पै, अनन्त पै और सुब्राय पै तथा गंगा भवानी (अम्मणी), कृष्णाबाय और सरस्वती बाय थे। भाइयों, बहिनों एवं उनके बच्चों को पै बडे ही स्नेह से पालते थे। बदले में वे लोग भी भक्ति एवं आदर से पै की देखरेख करते थे। अन्तिम घडी तक वे पै की सेवा में लगे रहे।

गोविन्द पै के नाम के पहले 'म' (एम) अक्षर मंगलोर एवं मंजेश्वर प्रदेश को सूचित करता है। श्री पै का जन्म सौकार बाब के पहले घराने में हुआ। यह घराना मंगलोर का प्रसिद्ध घराना था। उनका प्राचीन घर कार स्ट्रीट में आज भी रहा है। इस परिवार के सदस्य आज भी इसी घर में रहते हैं। उनके कुलदेव, काळीयमर्दन श्री कृष्ण का मंदिर भी वहीं पर है। पुत्तूर के समीप अनंतडी में उस परिवार की संपत्ति आज तक मौजूद है। वहाँ के 'समंध' से संबन्धित हर साल चलनेवाले 'उळ्ळाल्ती मेच्चीं' उत्सव में आज भी इस घराने को आदर दिया जाता है। प्रसिद्ध व्यापारी, डॉक्टर, इंजिनियर, वैज्ञानिक और समाज सेवक इस परिवार में जन्म लेकर प्रसिद्ध रहे हैं। पै के पिताजी श्री तिम्मा पै ज्योतिष के पंडित थे

और उनके पितामह नारायण पै दयावंत एवं परोपकारी थे। दक्षिण कर्नाटक में ई. स. १८३९ में हजार लोगों को भोजन देनेवाले प्रथम व्यक्ति थे नारायण पै। तलश्शेरी, मंगलोर एवं गुजरात में उनका हुंडी से संबन्धित व्यापार चलता था। मंगलोर के सरकारी कालेज के संस्थापकों में एक ये ही थे।

गोविन्द पै की मां का घर मंजेश्वर में था। उनकी माता देवकि अम्मा मंजेश्वर के प्रसिद्ध शानभाग राजघराने के लक्ष्मण शानभाग की बेटी थी। पै के पिता का घर मंगलोर में था। फिर भी वे, उनके भाई और बहनें मंजेश्वर में ही जन्मे थे और उनका पालन पोषण भी वहीं पर हुआ था। बेटियों एवं उनके बच्चों के रहने के लिए शानभाग घराने में मंजेश्वर में एक अलग ही आवास तैयार किया गया था। गोविन्द पै एवं उनके छोटे भाई छुट्टी के दिनों में मंजेश्वर आते थे। काव्यरचना, शोधकार्य एवं साहित्यिक काम वे मंजेश्वर में ही करते थे। इस प्रकार मंगलोर गोविन्द पै लोगों के बीच मंजेश्वर गोविन्द पै के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहाँ पर विशेष रूप से इस बात का स्मरण करना आवश्यक है कि 'देवकीतनय' के तूलिका नाम से वे काव्य रचना करते थे। 'माळ पै' उनका दुलारा नाम था। लेकिन इस नाम से उन्हें कोई पुकारता नहीं था। बाद में लोग इस नाम को भूल गए।

श्री गोविन्द पै का प्राथमिक शिक्षण मंगलोर के बेसल मिशन हाइस्कूल में हुआ। वे बुद्धिमान एवं प्रतिभावान छात्र थे। बाद में हाइस्कूल की शिक्षा उन्होंने मंगलोर के केनरा हाइस्कूल में की। कन्नड भाषा के प्रसिद्ध लेखक श्री म. न. कामत पै के सहपाठी रहे थे। हाइस्कूल में बँटवाल वामन बालिगा और बंटवाल पुंडलीक बालिगा, दोनों ने उनको कन्नड की शिक्षा दी। ई.स.१८९९ में कानरा हाइस्कूल में पढते समय उन्होंने 'ऐंजल' शीर्षक की हस्तलिखित अंग्रेजी पत्रिका प्रकाशित की। इस पत्रिका में लेख एवं कविता लिखनेवालों में सबसे आगे थे गोविन्द पै एवं म. न. कामत।

कविता का जन्म

पहले ही कहा जा चुका है कि छुट्टी के दिनों में गोविन्द पै मंजेश्वर में आते थे । इस समय वे उस प्रदेश के रंगमंच पर खेले जानेवाले यक्षगान का आस्वादन करते थे। यक्षगान के गीत 'जगते' तरह तरह के तालों के साथ गाए जाते थे। लोकवाद्य, पौराणिक चरित्रों के आश्चर्यपूर्ण

वेश, खास नृत्य, रंगमंचीय संवाद, पालने के एवं कृषिसंबन्धी गीत, सबका प्रबल प्रभाव उन पर पडा और इस प्रभाव के कारण उनकी संगीत एवं साहित्य में रुचि बढ़ने लगी।

उस समय गोविन्द पै के जीवन में स्मरण करने योग्य एक घटना घटी। जय नाम का संवत्सर, माघ महीने का अन्तिम सप्ताह। ई. स. १८९५ में फरवरी का अन्तिम सप्ताह। हमेशा के जैसे पानी बरसता था। घर के सामने आंगन में एक बडा सा मंडप तैयार किया गया। बहुत से बन्धुजन और मित्र लोग इकट्ठे हुए। उपनयन संस्कार चल रहा था। एक ओर लड्डू बनाए जा रहे थे। उस दिन शनिवार या इतवार था, या वह शिवरात्रि का दिन था। स्कूल की छुट्टियाँ चल रही थीं। मंडप में शोरगुल ऐसा था कि वहाँ पर तोते का चींव चींव भरा मकई का खेत जैसा लग रहा था। पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे इधर उधर दौड रहे थे। हर कहीं उनके बोलने की प्रतिध्वनि सुनाई पड रही थी। सब कहीं आनन्द और उल्लास छाया हुआ था। शोरगुल के बीच से मधुर सुर से किसी लोकगीत का गायन सुनाई पड रहा था।

मेरे वच्चे तू वन में क्यों जाता है? तू वन में क्यों जाता है?
वन में हिंस्र जन्तु तुझ पर आक्रमण करेंगे,
तेरा नुकसान करेंगे
तू वन में क्यों जाता है?

आनन्द और उल्लास से घर के अन्दर ही अन्दर दौडते रहनेवाले गोविन्द पै के कानों में इस गीत की आवाज पडी. उनको यकायक कुछ हो गया। उनके मन में आश्चर्यजनक अनुभूति हुई। मंडप के कोलाहल पर उनका ध्यान नहीं जाता था। वे घर के अन्दर चले, पुस्तक निकाली और लिखना शुरू किया। साँझ तक एक एकांकी पूर्ण हुआ। दो तीन दिनों में उन्होंने गीतों से युक्त एक नाटक लिखा - 'माता पिता का अकेला बेटा वन में चला गया। माता पिता ने उससे प्रार्थना की कि ऐसा नहीं करना चाहिए।' जब ईश्वर को पाने के लिए ध्रुव वन में चले गये तब सुनीती के दुःख के बारे में उन्होंने सुना था। जब राम वन चले गए तब दशरथ के दुःख के बारे में भी वे सुन चुके थे। यक्षगान के ताल और मर्दल से युक्त खेलों से उन्होंने जानकारी प्राप्त की थी। गीत की पंक्तियों ने उनके मन को जागृत किया। क्रौंच मिथुन के दुःख को देखकर आदिकवि वाल्मीकि के हृदय में जो दया उत्पन्न हुई , उससे कविता का जन्म हुआ।

उसी प्रकार दुःख भरे इस गीत को सुनकर उन्हें कविता करने की प्रेरणा हुई। वाल्मीकि आदिकवि बने तो हमारे कवि ने बाद में खूब कविताएँ लिखीं। श्रेष्ठ महाकाव्य के दर्जे के काव्य के छोटे छोटे टुकडे तैयार किए और कन्नड भाषा के राष्ट्रकवि का सम्मान प्राप्त किया।

इस घटना का विवरण गोविन्द पै द्वारा लिखे गए 'साहित्यज्ञर आत्मकथन' (साहित्यकारों का आत्मकथन) शीर्षक आत्मचरितात्मक लेखन के संग्रह से लिया गया है।

बारह तेरह वर्ष की आयु में गोविन्द पै ने कविताएँ लिखनी शुरू कीं। ई. स. १८९५ में उन्होंने 'मकराक्ष कळग' (मकराक्ष से जूझ) शीर्षक से यक्षगान का उपाख्यान तैयार किया। मकराक्ष कौन थे, इसकी जानकारी उन्हें नहीं थी। उनकी उम्मीदों के विरुद्ध होने के कारण उपाख्यान के तीन भागों में एक भाग उन्होंने लिखते ही फाड डाला। जो भी हो इतना तो समझना चाहिए कि कर्नाटक की कला एवं साहित्य का लोकप्रिय नमूना गोविन्द पै के साहित्य के लिए प्रेरणा देनेवाला बन गया।

ई. स. १८९६ में पै के जीवन में दूसरी एक घटना घटी। उनके माता पिता नहीं जानते थे कि वे कविता करते हैं। किसी कारण से छोटे भाइयों से झगडा हुआ और क्रोध में आकर उन्होंने माता जी से कहा कि गोविन्द पै कविता करते हैं। वे रूढियों को महत्व देनेवाली महिला थीं। यक्षगान के प्रसिद्ध कवि श्री मुल्की वासुदेव प्रभु 'बिल्लहब्बा' (धनु का उत्सव) नाम से एक रचना करके पागल हुए। पागलपन से उन्हें मुक्ति तब हुई जब उन्होंने 'समुद्र मंथन' के नाम से यक्षगान से संबन्धित दूसरी रचना की। उनका दृढ विश्वास था कि कविता लिखनेवाले लोग पागल हो जाते हैं। गोविन्द पै के छोटे भाइयों की फरियाद सुनकर उन्हें क्रोध आया। कविता लिखने के पागलपन को दूर करने के लिए उन्होंने पै को कठोर दण्ड दिया। इसके फलस्वरूप कुछ समय तक वे घर में बैठकर कविता की रचना नहीं करते थे। राह चलते चलते वे कविता करते थे। अवकाश के समय स्कूल में बैठकर लिखते थे। ई. स. १८९८ तक वे ऐसे हि आगे बढे। इस समय उन्होंने बेसल मिशन द्वारा प्रकाशित प्राचीन कन्नड का 'हळेगन्नड व्याकरणसूत्रंगळु' नाम के व्याकरण ग्रंथ का अध्ययन किया और छन्दों के विभिन्न रूपों का भी परिचय प्राप्त किया। 'जैमिनी भारत', 'गदुगभारत' आदि ग्रंथ भी उन्होंने पढे। इसी समय भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग भी शुरू किया। जब जब वे कविता लिखकर सन्तोष नहीं पाते थे

तब उसे फाड डालते थे।

अतुकान्त कविता

इंटरमीडियट पास करने तक पै ने मंगलोर के सरकारी कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। आधुनिक कन्नड साहित्य के प्रमुख लेखक श्री पंजे मंगेश राव उनके शिक्षक थे। श्री मुण्णुरुशि ररामय्या ने कुछ समय (१८९९ - १९००) उन्हें कन्नड भाषा पढाई। काव्यकला में निष्णात व्यक्ति उस समय 'द्वितीयाक्षर प्रास' को कविता का प्राण मानते थे। तुक के नियमों का अनुसरण करते हुए कन्नड भाषा के सभी कवि कविताएँ लिखते थे। गोविन्द पै को एसा लगा-'तुक कविता का बाहरी अलंकार रहा, कविता की मूल सत्ता नहीं। अंग्रेजी एवं संस्कृत के उत्कृष्ट काव्यों में 'द्वितीयाक्षर प्रास'नहीं है। हम इसकी उपेक्षा क्यों नहीं करते ?' श्री. पंजे मंगेश राव कवि के रूप में बहुत प्रसिद्ध थे। यही नहीं उनके आचार्य भी थे। धैर्य संभालकर उन्होंने पंजे से पूछा – 'यह कैसे हो सकता है? तुक के नियम तोडकर यदि हम कविता लिखें तो? परंपरा को तोडकर कविता करें तो क्या नुकसान है? पंजे ने उन्हें स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। वे विषय को ही छोड बैठे। यहाँ से लेकर तुक के बिना कविता लिखना और उसे फाड देना चालू रहा। इसके बाद ई. स. १९११ अप्रैल में जब वे बडौदा के नौसारी प्रदेश में थे तब श्री. पै ने धैर्य संभाल कर तुक के नियम तोडकर कविता करने का निश्चय किया। उन्होंने टागोर की बंगाली कविता 'आई भुवन मनमोहिनी' और इकबाल की उर्दू कविता 'हिन्दुस्तान हमारा' कन्नड भाषा में अनूदित किया । एक स्वतन्त्र कविता की रचना भी की। उसका नाम था 'होलेयनु यारु?' (शूद्र कौन?) यह कविता उस समय मंगलोर से निकलनेवाली 'स्वदेशाभिमानी' पत्रिका में प्रकाशित हुई । गोविन्द पै की यह रचना कन्नड साहित्य में हलचल मचानेवाली बन गई। साहित्य के क्षेत्र में वाद विवाद शुरू हुए। गोविन्द पै ने इस प्रकार पैरों चलकर जो पगडंडी बनाई वह आज राजमार्ग का रूप ले चुकी है। उस मार्ग से आज रथ भी चलने लगे हैं। मंगलोर, बंगलोर, कारवार, धारवार और मैसूर के कवि तुक के नियमों को तोडकर कविता करने लगे। श्री. पै इनमें अगुआ थे। कन्नड भाषा के काव्य साहित्य में उन्होंने नई पगडंडी से चलना शुरू किया। उससे वे प्रख्यात बने। कविता की हथकडियाँ तोडकर उसे मुक्त करनेवाले महान कवि के रूप में कन्नड साहित्यकार गोविन्द पै को चित्रित करने

लगे। पै के आचार्य श्री पंजे मंगेश राव कन्नड साहित्य में पहले कथाकार के रूप में भी प्रसिद्ध थे। उसी प्रकार उनके शिष्य भी 'द्वितीयाक्षर प्रास' के नियमों को तोडते हुए काव्यक्षेत्र में प्रसिद्ध बने। दोनों कर्नाटक के थे और दोनों की भाषा कोंकणी थी।

ई. स. १८९९ में सोलह वर्ष की आयु में श्री. पै ने विल्यम शेक्सपियर के 'ट्वेल्थ नाइट' नाटक के प्रथम अंक के थोडे से दृश्यों का अनुवाद कन्नड भाषा में प्रस्तुत किया। यह अनुवाद उन्होंने कन्नड भाषा के 'वृत्त' और 'कन्द' के नाम से प्रसिद्ध छन्दों में किया और महाकवि मुद्दण के नाम से प्रसिद्ध श्री. नन्दलिके लक्ष्मीनारायणय्या को भेज दिया। लक्ष्मीनारायणय्या ने उन्हें छन्द और तुक के साथ कविता करने का प्रोत्साहन दिया। लेकिन श्री. पै को इस दिशा में आगे बढना पसन्द नहीं था।

स्वर्णपदक

मंगलोर के सरकारी कॉलेज में ऊँचे दर्जे में पास होकर उन्होंने मद्रास में क्रिश्चियन कॉलेज में प्रवेश लिया। उस समय कासरगोड एवं दक्षिण कर्नाटक मद्रास राज्य में थे और विद्यार्थी अपना शिक्षण मद्रास नगर में करने की इच्छा करते थे। गोविन्द पै ने बी. ए. करने के लिए इस कॉलेज में प्रवेश लिया। भारत के राष्ट्रपति के रूप में प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन गोविन्द पै के सहपाठी थे। नगर का जीवन और वहाँ का उच्च शिक्षण पै के अनुभव ज्ञान को बढाने में काफी सहायक रहा। विद्यार्थी होते हुए भी उन्होंने कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया । पश्चिमी भाषाओं में लैटीन एवं फ्रेंच भाषाएँ भी शामिल थीं। पूर्वी भाषाओं में उन्होंने संस्कृत, बंगला और पाली भाषाओं का ज्ञान ग्रहण किया। बी. ए. की परीक्षा में उन्होंने अंग्रेजी का प्रश्नपत्र लिखा ही था कि पिताजी की रोगावस्था की खबर उनको मिली। उन्हें ऐसा आघात हुआ मानो बिजली लग गई हो। परीक्षा आधी ही छोडकर वे घर की ओर लौटे। बाद में बी. ए. परीक्षा पूर्ण नहीं कर सके। अंग्रेज़ी का प्रश्नपत्र जो दिया था, उसमें उन्हें स्वर्णपदक प्राप्त हुआ।

संपन्न भाषा पुस्तकालय

बाद का शिक्षण गोविन्द पै को घर पर ही करना पडा। उनकी जानकारी एवं विद्वत्ता स्वयं सिद्ध थी। उस समय मंगलोर के बेसल मिशन

ने कन्नड भाषा के नए पुराने कई ग्रंथ प्रकाशित किए। घर के बुजुर्गों की अनुमति से उन्होंने कई पुस्तकें खरीदीं और पढना शुरू किया। विस्तृत एवं विविधता से युक्त वाचन करते रहने से मूल्यवान पुस्तकों का संग्रह करने के विषय में गोविन्द पै की तुलना केवल उन्हींसे की जा सकती थी। हमारे देश में गोविन्द पै के समान व्यक्ति विरले ही रहे हैं। उन्होंने अकेले ही साहित्य के क्षेत्र में आश्चर्यजनक काम करते हुए बडी सफलता प्राप्त की । मंजेश्वर के घर में अलग से वाचन कक्ष रहा था और ऊपर की मंजिल पुस्तकों की अलमारियों से भरी थी। घर में जहाँ तहाँ पुस्तकों की ढेर देखने को मिलती थी। खरीदी हुई पुस्तकें वे बराबर पढ़ते रहते थे और वायलेट स्याही से प्रमुख बातों को अंकित करते जाते थे। उनके द्वारा उपयोग में लाया गया किट्टेल का कोश राष्ट्रकवि गोविन्द पै अनुसंधान केन्द्र, उडुपी में आज भी सुरक्षित रखा गया है। उस कोश का हर एक पृष्ठ एवं हर एक शब्द पूरा रेखांकित, प्रश्नांकित एवं सुधार किए हुए रूप में मिलता है। यह पहले पृष्ठ से शुरू होकर १७५२ वें याने अन्तिम पृष्ठ तक चलता है। इसमें गोविन्द पै के अध्ययन की व्यापकता एवं गहराई स्थाली पुलक न्याय से हमारी समझ में आ ही जाती है। वैदिक संस्कृत, पाली, हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती आदि भारतीय आर्यभाषाओं, कन्नड, मलयालम, तमिल आदि द्रविड भाषाओं और लैटिन, ग्रीक, इतालवी, फ्रेंच आदि विदेशी भाषाओं का ज्ञान उन्हें था। पूरी बाईस भाषाएँ वे जानते थे। इतनी सारी भाषाओं का परिचय प्राप्त करनेवाले लोग देश भर में विरले ही हैं। जीवन के आखिरी दिनों में उनकी स्मरण शक्ति कम हो गई और उनके द्वारा उधार दी हुई किताबें लौटाई नहीं गईं। इस प्रकार उनकी थोडी पुस्तकें नष्ट हो गईं। तैंतालीस भाषाओं की ४७३४ किताबें उनके पुस्तकालय में बाकी रही थीं। उनके छोटे भाई के बच्चों ने ये किताबें उडुपी के महात्मा गाँधी कॉलेज को दान में दे दीं। आज भी इस कॉलेज के 'राष्ट्रकवि गोविन्द पै अनुसंधान केन्द्र' में ये किताबें देखने को मिलती हैं। आज उस पुस्तकालय में दिखाई पडनेवाली गोविन्द पै की किताबों का भाषावर वर्गीकरण नीचे दिया जा रहा है –

भाषा	संख्या	भाषा	संख्या
अंग्रेज़ी	१८७२	कन्नड	१२८०
संस्कृत	३९८	मराठी	१८५
हिन्दी	१३६	फ्रेंच	१२७

अवेस्ता और पहलवी	१९	बंगला	५८
पाली	४५	ग्रीक	४१
लैटिन	२८	तमिल	२४
स्पानिश	२३	उर्दू	१७
कोंकणी	१४	गुजराती	१८
मलयालम	११	असीरियन	६
पहलवी	७	पुर्तगाली	६
इतालवी	४	बरमीस	३
रूसी	३	चीनी	३
कोडवा	२	फ़ारसी	४४
हीब्रू	१०	गालिक	१
तिबती	११	जर्मन	११२
इरानी	२	गोंडा	१
तेलुगु	५	उड़िया	२
अरबी	९	जापानी	१
अन्य भाषाएँ	२०६		४७३४

आधी शताब्दी से अधिक, जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने अकेले ही अपनी तपस्या एवं भक्ति से बहुभाषा पुस्तकों के एक बडे से पुस्तकालय के निर्माण में जुटा दिया। उन्होंने इन कितावों को पढ लिया और इनसे एकाकार हो गये। पै की काम करने की अपूर्व शक्ति और तीव्र बुद्धि का यह उत्तम उदाहरण क हा जा सकता है। यह विशेष पृष्ठभूमि गोविन्द पै के तेजस्वी व्यक्तित्व को एक प्रभामंडल से युक्त बनाती है और उनको आदर और सम्मान के उच्च्य पद पर आसीन रहने का गौरव प्रदान करती है ।

घरेलू जीवन

कई भाषाओं के अध्ययन, साहित्य के अनुसंन्धान एवं कविता से संबन्धित मूल्यवान पुस्तकों के संचय के कारण कीर्ति अर्जित करनेवाले श्री. पै का घरेलू जीवन कैसे बीता, इसका परिचय पाठकों को देना उचित ही नहीं आवश्यक भी प्रतीत होता है। बी. ए. की परीक्षा बीच में छोडकर घर लौटे हुए गोविन्द पै को उनके पिताजी के देहान्त के बाद मंजेश्वर के घर में ठहरना पडा। ज्येष्ठपुत्र होने के कारण यही उनका उत्तरदायित्व भी

था। उन्होंने यह उत्तरदायित्व निभाया और लक्ष्मी नाम की कृष्णा बाई से विवाह करके वहीं बस गए। ई. स. १९१० में कृष्णाबाई ने एक लड़की को जन्म दिया। थोड़े दिनों में वे स्वर्गवास को प्राप्त हुईं। ई. स. १९२७ में दमे के रोग से कृष्णाबाई का निधन हुआ। उस समय गोविन्द पै चौंतालीस वर्ष के थे। उन्होंने दूसरी शादी नहीं की। ज्येष्ठ होने के नाते वे अपने छोटे भाइयों एवं उनके बच्चों की देखभाल करते रहे।

कृष्णाबाई साहित्य के क्षेत्र में अपने पति की खूब सहायता करती थीं। उन्होंने मराठी में अच्छा शिक्षण पाया था। उनके प्रोत्साहन से श्री. पै ने मराठी भाषा का गहरा अध्ययन किया। थोड़े समय के लिए श्री पै नौसारी में काका कालेलकार के साथ रहे थे। उस समय कृष्णाबाई ने मराठी के महान पंडित काका कालेलकार की सहायता से मराठी साहित्य को पढ़ने की गोविन्द पै से विनती की। अपनी घरवाली के प्रोत्साहन से उन्होंने 'सैरन्ध्री' नाम के महाकाव्य का एक छोटा सा भाग तैयार किया। आगे चलकर अन्त तक गोविन्द पै अपनी पत्नी की हमेशा याद करते थे। भोर होते ही चींव चींव करनेवाले पक्षियों के साथ वे भी नींद से जागृत होते थे। अपनी दिनचर्या के बाद स्नान करते थे। उसके अनन्तर बाग में जाकर फूलों को इकट्ठा करते थे। अपने कमरे में रखे हुए पत्नी के चित्र के सामने शान्त भाव से प्रार्थना करते थे। 'गिळिविंडु' नाम का अपना पहला कविता संग्रह उन्होंने कृष्णा को समर्पित किया। पत्नी की यादों के सामने अश्रुपूजा करते हुए उन्हें अलग किए हुए विधि को समर्पित करते हुए उन्होंने 'नन्दादीप'(सदा प्रज्वलित दिया) नाम का कविता संग्रह रचा। पत्नी की मृत्यु से उन्हें जो दुःख हुआ उसकी आग से जलाया हुआ यह दिया जीवन भर उनके मन में जलता रहे, इसी आशा से उन्होंने इस कृति का नाम 'नन्दादीप' रखा। 'नन्दादीप' एक अपूर्व रचना थी जिसमें प्रियतम का वियोग रूप बदलकर ईश्वर के प्रति आराधना के रूप में परिवर्तित हुआ। ई. स. १९२८ में गोविन्द पै ने 'गोम्मटजिनस्तुति' की रचना की. यह रचना भी उन्होंने पत्नी की याद के लिए समर्पित की। अपने मायके में कृष्णाबाई का नाम लक्ष्मी था। 'नन्दादीप' की अनेक कविताओं में लक्ष्मी का नाम आया है। पत्नी जब जीवित थीं, उस समय गोविन्द पै कविता के मार्ग में सिंह जैसे आगे बढे। उनकी मृत्यु के बाद थोड़े समय के लिए उन्होंने कविता लिखना छोड दिया और शोध के क्षेत्र में आगे बढ़े। इसके बारे में उन्होंने इस लेखक से इस प्रकार कहा –

' कविता की प्रकृति नाज़ुक एवं कोमल है। वह नवरसों से युक्त होती है। कोई भी कविता की रचना करता है तो स्वभावतः वह आनन्द में रहता है और अपने घरेलू जीवन की याद करता रहता है। इस प्रकार की यादों से बचने के लिए मेरी दृष्टि बदलनी चाहिए। इसी कारण मैंने शोध के क्षेत्र में प्रवेश किया। शोध सत्य का अन्वेषण है। आधे सत्य और थोड़े सत्य की जानकारी यहाँ पर्याप्त नहीं है। सत्य पूरा जानना पड़ता है। इस सत्य को समझने के लिए एकाग्रता की ज़रूरत पड़ती है। मन की कोमलता एवं नवरसों की अनुभूति कम रहती है। घरेलू जीवन की मधुर यादें मन्द पड़ जाती हैं और मन शोध में लगा रहता है।'

अपने पर अंकुश लगाते हुए उन्होंने कितने महान कार्य को शौक से चुन लिया ! ऐसा होते हुए भी कवितारूपी सुन्दर महिला उन्हें छोड़कर नहीं गई। बाद में बहुत अच्छी एवं मनोहर कविताओं का निर्माण उन्होंने किया और वे कन्नड़ भाषा के राष्ट्रकवि बने।

विद्वान कवि

आगे उन्हें कविता लिखने की तीव्र प्रेरणा हुई। वह कैसे? इसका उत्तर नीचे दिया जा रहा है –

इस समय श्री पै अपना अधिकांश समय शोध के लिए गँवाते थे। कवि से भी बढ़कर अनुसन्धाता के रूप में वे प्रसिद्ध हुए। उन्होंने हस्तलिखित ताडपत्र पढ़ना और अध्ययन करना शुरू किया। बुद्ध एवं महावीर के जैसे धर्माचार्यों के बारे में एवं पंप और रन्न जैसे कवियों संबन्धी अनेक लेख तैयार करते हुए उन्होंने पत्रिकाओं में प्रकाशित किए। राष्ट्रकूट, होयशाल, गंग और कदम्ब राजवंशों के संबन्ध में भी उन्होंने लेख लिखे। इसी समय ई. स. १९४० में पै के मित्र पंडरेश्वर गणपति राव ने 'चेंगळणे' नाम का कविता संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह की एक कविता 'पंडितवक्कि' नाम की थी। कविता का सारांश नीचे दिया जा रहा है -

'अरे पक्षी ! तू समय रूपी वन में भूल रूपी कफन ओढ़ कर बैठा हुआ उँघता रह ! तेरी पाँखें छोटी रहीं। तू इतिहास रूपी सूत्र में गुँथे हुए मोती खाता था। सत्य एवं असत्य के वार्तालाप के गिरीदार फलों को तोडता था। फिर भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ। क्यों? मृत्यु तेरे सामने ही खड़ी है। देख ले ! केवल समय के बारे में सोचता हआ तू अब सारहीन वाद

विवाद में पड़ा हुआ है। तू एक अच्छा गायक रहा। न जाने तू कैसे गाना भूल गया और निश्चिन्त रहा? गायन करने की शक्ति के अभाव में हम ऊँचे स्वर में सिसकते रहे हैं। समय हाथ से निकला जा रहा है। अच्छे गायक न होते हुए भी लोग थोड़े बहुत दिखावटी बनकर बड़े गायकों जैसे खड़े रहते हैं। हमारे बाग का यह विद्वान पक्षी क्यों नहीं गाता? अरे ! मधुर सुरवाला कोकिल ! आनन्द से गाता रह और हमारी विनती सुनते हुए आगे बढ़।'

यह विनती और विद्वान पक्षी को दी हुई चेतावनी व्यर्थ नहीं हुई। गोविन्द पै का लयात्मक सुर सुनने की इच्छा रखनेवाले कन्नड़ भाषा के लोगों के अन्तर्मन से पंडरेश्वर के ज़रिए की गई आतुरतापूर्ण विनती सफल रही। इसके बाद वे खूब उत्तम कविताएँ करने लगे और कन्नड़ साहित्य को उन्होंने अपनी कविताओं से संपन्न किया। 'हेब्बेरळु' (अंगूठा) उनका काव्यरूपक और 'वैशाखी', उनके महाकाव्य का एक अंश, दोनों का प्रकाशन हुआ। कई मूल्यवान कथात्मक कविताओं की उन्होंने रचना की। सॉनट (चौदह पंक्तियोंवाला गीत) एवं गीतकाव्य भी उन्होंने तैयार किए। साहित्य जगत में इस महाकवि का सदा स्मरण एवं आदर किया जाने लगा।

देशभक्ति

उन दिनों हमारे देश के प्राण स्वतन्त्रता के प्यासे रहे थे। उन दिनों गूँगे भी बोलने लगे थे।हमारे देश के युवा लोग देश के खातिर त्याग करने के लिए उत्साह के साथ आगे बढ़ते थे। तिलक एवं गाँधी के जैसे श्रेष्ठ लोग हमारे नेता थे। अहिंसा के सत्याग्रही एवं क्रान्तिकारी हजारों की तादाद में हमारी मातृभूमि की स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा लेकर स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेते थे। खूब लोग अस्पृश्यता, खादी और जातीय एकता जैसे सामूहिक कार्यक्रमों में भाग लेते थे। श्री पै ने भी खादी की प्रतिज्ञा ले ली और अन्त तक सजगता के साथ उसका पालन करते रहे।

सांप्रदायिक ऐक्य, अस्पृश्यता को उखाड़ फेंकना आदि विषयों पर उन्होंने कविता की रचना की। 'स्वतन्त्रता या मरण' विषय पर शक्तियुक्त कविताएँ लिखकर उन्होंने लोगों को जागृत किया। इसी उद्देश्य से श्री. पै नौसारी के प्रवास पर जाने को तैयार हुए। अरविन्द घोष की प्रेरणा से बड़ौदा महाराजा की नौकरी करनेवाले देशपांडे ने राष्ट्रीय शिक्षण के लिए एक संस्था स्थापित की थी। अरविन्द घोष अपने जीवन के

उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिकता की ओर बढ़े और महर्षी बन गये। लेकिन प्रारंभकाल में वे रहस्य में क्रान्तिकारी रहे थे। गोविन्द पै ने अपनी मातृभूमि की सेवा के लिए स्वयं समर्पित होने का निश्चय किया और राष्ट्रीय शिक्षण की उस संस्था में सेवा करने लगे।

देशपांडे जी श्री पै को उसी संस्था में नौकरी करनेवाले काका कालेलकार के पास ले गये। उनके बीच मित्रता हुई और अन्त तक वह अविरत चलती रही। दोनों व्यक्ति बडे विद्वान् और देशभक्त थे। गोविन्द पै ने उस समय देश के खातिर क्रान्तिकारी कार्य करने में बड़ी रुचि दिखाई। नये सहभागियों के बीच रहस्य को कैसे खोला जा सकेगा? अच्छे मित्रों से रहस्य कैसे छिपाया जायगा? श्री कालेलकार पहले दुविधा में पड़े। लेकिन बाद में उन्हें मालूम हुआ कि श्री पै पूर्णतः विश्वास करने योग्य हैं और उन्होंने श्री पै को क्रान्तिकारी कार्य के बारे में समझा दिया। उसी संस्था के दूसरे विभाग में काम करनेवाले श्री मोहनलाल पंड्या का गोविन्द पै को परिचय प्राप्त हुआ। इसी बीच घरवाली की रोगावस्था की दुःख की खबर उन्हें मिल गई। उनको नौसारी छोड़कर जाना पड़ा। इस प्रकार क्रान्तिकारी होते हुए भी मातृभूमि के खातिर स्वयं त्याग करने के जो अवसर उन्हें प्राप्त हुए उनको खोना पड़ा। उस समय के बड़े देशभक्त श्री आर. के. प्रभु और श्री एच. वी. कामत से पै के संबन्ध रहे। श्री एच. वी. कामत उनके बन्धु भी रहे थे।

गाँधीजी की लाठी

श्री पै और कालेलकार का परिचय एक ऐतिहासिक घटना थी। राष्ट्रभाषा के प्रसार के संबन्ध में श्री कालेलकार पूरे देश में घूमते रहे। उनके कार्यक्रम के दौरान वे मंगलोर में भी आए और वहाँ पुराने मित्र से मिलने के लिए मंजेश्वर भी आ पहुँचे। एक दिन वे पै के साथ रहे। जब जाने का समय आया तब पै ने उनको एक पुरानी लाठी दे दी। वह पै के पूर्वजों की मूल्यवान संपत्ति थी। ई. स. १९३० में जब महात्मा गाँधी ने दंडी यात्रा प्रारंभ की श्री कालेलकार ने यह लाठी गाँधीजी को दे दी। ऐतिहासिक दंडी यात्रा करते वक्त गाँधीजी ने यही लाठी हाथ में ले ली। दंडीयात्रा की यादगार के रूप में यह मूल्यवान लाठी गाँधीजी की अन्य वस्तुओं के साथ संग्रहालय में आज भी संभाल कर रखी हुई है। जब तक लोग गाँधीजी की और ऐतिहासिक दंडी यात्रा की याद करेंगे तब तक उन्हें

पै की इस मूल्यवान भेंट की याद आती रहेगी। हम सब के लिए यह अभिमान का विषय रहा।

मंगलोर में प्रकाशित 'सुवासिनी' मासिक पत्रिका में गोविन्द पै की पहली कविता प्रकाशित हुई। बोळार विट्ठल राव, बेनगल रामराव, पंजे मंगेश राव जैसे बड़े बड़े साहित्य प्रेमियों ने मिलकर किये हुए प्रयत्नों के फलस्वरूप ई.स.१९०० में जुलाई के महीने में मंगलोर से यह मासिक पत्रिका शुरू हुई थी। पै की तीन पदों की 'सुवासिनी' नाम की कविता उसी वर्ष अगस्त महीने के अंक में छपी। वह कविता उन्होंने उस मासिक पत्रिका के द्वारा आयोजित कविता की प्रतियोगिता के लिए लिखी थी। अपनी कविता के लिए श्री पै को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। कविता का शीर्षक और पत्रिका का नाम एक ही था। फिर भी कविता के भाव तटस्थ रहे। 'सुवासिनी' विवाहित स्त्री का प्रतीक थी। वह स्त्री मातृत्व एवं सुगन्धित फूल का प्रतीक बनकर इसमें आई। ये तीन पद हमारी अपनी माता की याद दिलानेवाले थे और मातृभाषा की सुगन्ध से देश भर में व्याप्त उदार विचारों की अभिव्यक्ति करनेवाले थे। उस समय 'कंद' नाम का जो छन्द प्रौढ़ विचारों को प्रस्तुत करने के लिए प्रयुक्त होता था, पै ने अपने बालकपन में उसी छन्द में कविता लिखी और उसमें सफलता भी प्राप्त की। उनको प्रथम पुरस्कार भी मिल गया जो उनकी कुशलता और निपुणता का प्रमाण है।

पहलौठे की शृंखला

कविता के समान गद्य में भी श्री पै प्रतिभावान रहे थे। श्रीकृष्ण के जीवन से संबन्धित 'रैवतक','कुरुक्षेत्र' और 'प्रभास' नाम के नवीनचन्द्र सेन के तीन बंगाली काव्यों का उन्होंने कन्नड़ भाषा के गद्य में अनुवाद प्रस्तुत किया। इनके छः अध्याय 'स्वदेशाभिमानी' में प्रकाशित हुए। ये ही पै की पहली गद्यकृतियाँ थीं। इसके बाद 'निगळसुत्ता' नाम का बौद्ध धर्म का एक सूत्र उन्होंने पाली से कन्नड़ भाषा में अनूदित किया। यह सूत्र उसी पत्रिका में ई. स. १९११ में प्रकाशित किया गया। ई. स. १९१६ में उन्होंने ग्रीक भाषा का दुःखान्त नाटक लिखनेवाले एस्किलोस (Aeschylus), सोफोक्लेस (Sophocles) और यूरिपिदेस (Euripides) की रचनाओं का अनुवाद किया। ई. स. १९३० में महाभारत के विराटपर्व में आई हुई कीचक की कथा को आधार बनाकर

'सैरन्ध्री' नाम का नाटक शुरू किया। ग्रीक भाषा के शोकान्त नाटक का आधार ग्रहण करते हुए उन्होंने इस नाटक की रचना की। 'वीरद्विपदी' छन्द में जब ५१० पंक्तियां वे लिख चुके तब उनकी अकेली भतीजी की मृत्यु हो गई। उस शोक में यह नाटक अपूर्ण ही रहा।

सॉनेट (चौदह पंक्तियों की कविता) लिखने में पै की बडी रुचि रही थी। यह पाश्चात्य साहित्य में मिलनेवाला एक लोकप्रिय काव्यरूप है। उन्होंने सुन्दर सॉनेटों की रचना की है। 'कवितावतार' ई. स. १९१६ में लिखी गई चौदह पंक्तियों की पहली कविता है। 'कन्नड़ कोगिळे' नाम की साहित्यिक पत्रिका में यह प्रकाशित हुई। यह पत्रिका मंगलोर के पंडित श्री मुळिय थिम्मप्पय्या के संपादन में प्रकाशित होती थी।

फिटज़राल्ड ने प्रख्यात फारसी कवि उमरखैयाम की 'रुबाइयात' कविता का अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद किया। पै ने उसका अनुवाद कन्नड़ भाषा में किया। उसके बाद श्री वी. गुंडप्पा और श्री मट्टि राधाकृष्ण राव ने 'रुबाइयात' का अनुवाद कन्नड़ भाषा में क्रमशः ' उमरण ओसगे' (उमर का आनन्द का वृत्तान्त) और 'पाणपूजे' (मद्य की पूजा) नाम से किया। लेकिन इस प्रख्यात काव्य का सर्वप्रथम कन्नड़ अनुवाद करने का श्रेय श्री पै को ही जाता है।

श्री पै कन्नड़ साहित्य में काव्य की नई नई प्रवृत्तियों के जनक थे। इन भिन्न भिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों के प्रयोग के कारण उन्हें कन्नड़ भाषा का प्रथम कवि कहकर जो मान दिया गया है, वह उचित ही है।

अध्याय - २

कविता - संग्रह

तोतों का झुंड

'गिळिविंडु' (तोतों का झुंड) श्री पै का पहला कविता-संग्रह है। उन्होंने ई. स. १९०० में कविता लिखना शुरू किया। इस पुस्तक में तीस वर्षों की कविताएँ संग्रहीत हैं। यह पुस्तक ई. स. १९३५ में प्रकाशित हुई।

इस संग्रह में छोटी बड़ी सभी प्रकार की ४५ + १ कविताएँ हैं। उमरखैयाम के 'रुबाइयात' के ७५ पद इसमें अनूदित मिलते हैं। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ स्वतन्त्र रही हैं। थोड़ी सी अनूदित भी हैं।

'कहीं से आनेवाले और कहीं जानेवाले तोतों के झुंड के जैसे मेरे मन में ये शब्द थोड़े समय के लिए रहते हैं तो ये मेरे कैसे बनेंगे? उड़ने के बीच में तोते किसी बाग को देखकर थोड़े समय के लिए वहाँ ठहर जाते हैं तो वे उस बाग की संपत्ति कैसे बनेंगे ?

यही 'गिळिविंडु' कविता का मुख्य विषय है। कवि विनयपूर्वक कहते हैं कि लोगों का स्वर कवि का स्वर बनकर गीत में आता है। अपनी प्यारी बहिन के साथ घर के पीछे के आँगन में खेलते समय वे हर एक झुरमुट में खोजते रहते हैं और एक तितली को पकड़ते हैं। वे उसे अपनी छोटी बहन को इनाम के रूप में देते हैं। तितली के पंखों में जो धूल रही है उसे दूर करने से वह डरती है। यह वर्डसवर्थ के 'तितली से' (चिट्टिगे) नाम की अंग्रेज़ी कविता के अनुवाद में वर्णित सादे सरल बालकपन का एक चित्र है। 'ईश्वर कहाँ हैं?' (परमात्मनेल्लिरुवनु) नाम की द्विपदी कविता 'दासरपदगळु' के राग से गाने की है। ईश्वर कौन हैं? , वे कहाँ हैं?, वे कैसे हैं?, प्राचीन काल से ही संसार में ये प्रश्न विचारों के विषय बने हैं। आज कवि यही प्रश्न फिर से पूछते हैं और सरल शैली में दार्शनिक गहराई के साथ वर्णन करते हैं।

'ईश्वर प्रत्येक अणु में रहते हैं, धूल के हर कण में रहते हैं, घास की पत्ती पत्ती में रहते हैं, कण कण में जीते रहते हैं, वृक्ष के हर टुकड़े में रहते हैं। उनका प्रतिबिंब सूरज में चकाचौंध उत्पन्न करता है। मनुष्य उसी ईश्वर का प्रतिबिंब है। नक्षत्र उनकी आँखें हैं और वे उन्हीं के ज़रिए देखते रहते हैं। शीतल हवा के ज़रिए वे श्वास लेते रहे हैं। नीचे पृथ्वी पर वे मन्द मन्द चलते हैं। भिन्न दिशाओं से उठनेवाले हर एक शब्द के बारे में वे

सतर्क हैं। सुगन्धित फूल के रूप में वे मन्दहास करते रहते हैं। कोयल के मधुर स्वर से वे गाते रहते हैं। आँखें खोलकर मनोहर प्रकृति को देखनेवाले को इसका भान होता है।'

'बनक्किगे' एक लंबी कविता है। यह कविता शेली के 'टु ए स्कायलार्क' नाम की कविता का कन्नड़ भाषा में किया गया अनुवाद है। चंडूल पक्षी पृथ्वी से आकाश की ओर उड़ता है और ऊपर आकाश पर मधुर स्वर से गाता रहता है। यह कविता एवं उसमें अन्तर्लीन अर्थ से भी बढ़कर आनन्द देनेवाला है। इस कविता में कवि स्पष्ट करते हैं कि चंडूल पक्षी की आश्चर्यजनक निपुणता किसी भी कवि के लिए प्रेरक बन सकती है। 'हिन्दुस्तान हमारा' उर्दू के प्रसिद्ध कवि इकबाल की कविता का कन्नड़ रूपान्तर है। हमारे स्वतन्त्रता संग्राम के समय करोड़ों लोग देशभक्ति का यह गीत गाते थे।

'हमारा भारतदेश संसार भर में बहुत सुन्दर है। हम जहाँ भी हों हमारा हृदय मातृभूमि के पैरों पर समर्पित रहता है। इस माता का सहारा पाकर सौ सौ नदियाँ बहती हैं। हमारा धर्म दूसरों की हिंसा करना नहीं सिखाता। हम सब भारत माता के बच्चे हैं। अगले जन्म में भी इसी माँ के गर्भ में उत्पन्न होने के लिए हम ईश्वर के अनुग्रह की प्रार्थना करते हैं।'

इस कविता में कवि यही माँगते हैं। देशभक्ति की यह सशक्त भावना स्वतन्त्रता पाने में हमारे देश के लिए सहायक सिद्ध हुई। इस काल में इकबाल एवं टागोर जैसे अनेक कवियों ने प्रत्येक राज्य में देशभक्ति के गीतों से लोगों को जागृत करने के प्रयत्न किए। कन्नड़ भाषा में गोविन्द पै, मलयालम में वळ्ळत्तोळ नारायण मेनोन, तमिल में सुब्रह्मण्य भारती इनमें प्रमुख थे।

'विदाय'(अलविदा) टागोर की कविता का कन्नड़ भाषा में अनुवाद प्रस्तुत करती है। इसमें अपनी माँ से बिछुड़ा हुआ बच्चा कहता है - 'तुम्हारे श्वास के ज़रिए मैं तुम्हारे हृदय की गहराइयों में जाकर श्वास लेता हूँ। तुम जब स्नान करती हो तब मैं छोटी छोटी लहरों के रूप में तुम्हारा आलिंगन करता हूँ। रात को जब तुम सो जाती हो तब पत्तों पर ओसकणों के रूप में मैं नीचे गिरता हूँ और तुम्हारी पैंजनियाँ बनता हूँ। बिजली की आँखों से मैं चमकता रहता हूँ। हमेशा चन्द्रमा की अमृतकिरणों के रूप में रहता हूँ। सपनों में तुम्हें दुलार करता हूँ। तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारी आँखों की पुतली बनकर तुम्हारे स्तनों को चूसते हुए गोद में

बैठकर सदा समय तुम्हारे साथ रहूँगा। मेरी प्यारी माँ ! तुमको मेरा नमस्कार !'

माता को छोड़कर रहनेवाले बच्चे की प्यारी प्यारी भावनाओं का इस कविता में सुन्दरता के साथ चित्रण हुआ है। दूसरी कविता है - 'होलेयनारु'(शूद्र कौन?) अस्पृश्यता की समस्या को लेकर लिखी गई इस कविता में देशभक्ति का प्रवाह भी देखा जा सकता है।

'जो कोई दूसरे का रहस्य चोरी चोरी सुनता है, पति पत्नी को अलग करता है, दूसरों की निन्दा करता है, जानवरों को सताता है, मादकद्रव्यों का उपयोग करता है, जूआ खेलता है, दूसरों के धन एवं स्त्री की इच्छा करता है, दूसरों को शिक्षा नहीं देता, पापी रहता है, दूसरों का ऋण नहीं चुकाता, अपने वचन को नहीं रखता, अपने हित में ही जुटा रहता है, राष्ट्रनिर्माण में सहायता नहीं करता, मातृभूमि के साथ विश्वासघात करता है, स्वार्थी बनकर राष्ट्रहित करना भूल जाता है, देशभक्ति से दूर रहता है, वही शूद्र है। उनकी कोई जात नहीं होती। शूद्र गाँव के बाहर नहीं रहता ।जन्म से कोई शूद्र नहीं बनता।'

'तुर्किय परवागि देवरोडने प्रार्थने'(तुर्की के नाम पर ईश्वर से प्रार्थना) तभी लिखी गई जब इटली ने गरीब तुर्की देश के ट्रिपोळी पर आक्रमण किया। इस संदर्भ में हमारे वीरों ने खिलाफत संग्राम में जो सहायता की थी उसे हम याद करते हैं।

'हे ईश्वर, गरीबों की सदा रक्षा करें। मार्गभ्रष्ट लोगों की, राजनीति में नये नये आए हुए लोगों की और युद्धक्षेत्र में अनुभवहीन व्यक्तियों की रक्षा करें। यह युद्ध समाप्त करते हुए दुष्ट लोगों का नाश करें। स्नेह की वर्षा करें। हमारी पृथ्वी एवं पानी रक्तपात से दूषित न हो। हमारी रक्षा करें'

उपनिषद के काल से लेकर गाया जानेवाला शांतिमंत्र इस कविता में प्रतिध्वनित हुआ है। 'कविता' शीर्षक से लिखी गई कविता में मन, विचार एवं कल्पना, तीनों का संगम देखा जा सकता है। श्री पै के मत में कविता मन का कमल होती है। वह दुःखरूपी सागर का रेतीला तट, गीतों की फसल, मनन करनेवाले मन का माणिक्य, प्रेमी का खान[illegible] और जीवनरूपी संग्राम की तुरही होती है और इस प्रकार की अनेक [illegible]ताओं का निर्माण करनेवाले कवि स्वतन्त्रता का अमृत पीनेवाला भ्रमर होता है।' कविधर्म के बारे में पै कहते हैं - कवि को निर्भय होकर दूसरों के भले के

लिए सतत काम करते रहना चाहिए। 'जो प्रकृति की सुन्दरता का आस्वादन करता है वह ईश्वर को देखता है। ऊपर आकाश ईश्वर के साम्राज्य का ध्वज है और सूर्यप्रकाश की तुरही ईश्वर की महानता की घोषणा करती है। कवियों की रानी, रात तारों का अपना हार उतारकर, अमृत का दिया जलाकर ईश्वर की क्रीड़ा गाती रहती है। दुःख से रोनेवाली हवा में, बहनेवाली नदी की आवाज़ में, सागर के हाथ के दर्पण में और हर एक प्रदेश में ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव होता है। मुझे मालूम नहीं है कि किस प्रकार तुम्हारी आराधना करनी है? तोतली भाषा में अपनी माँ को बुलानेवाले बच्चे के समान मैं भी तुम्हारे नाम की महिमा तोतली बोली में गाता रहता हूँ।'

'विश्वांजलि'(विश्वव्यापी समर्पण) नाम की कविता में भक्ति की जो सरलता है वह देखने योग्य है। 'हळेय नाण्य'(पुराना सिक्का) एक लंबी कविता है। उसकी निश्शब्दता का नकाब दूर किए बिना पुराना सिक्का आँख मिचौनी खेलता रहता है। कोई भी मनुष्य शंका कर सकता है कि धूल एवं मैल से भरा पुराना सिक्का सुन्दर कैसे हो सकता है। कवि कहते हैं - सौन्दर्य जो दिखाई पड़ता है, वह मोहक होता है। जो दिखाई नहीं पड़ता वह ज़्यादा आनन्द प्रदान करता है। वे पूछते हैं - आँखों के परे और सपनों के परे जो सौन्दर्य है वह क्या अर्थहीन होता है ? इस प्रकार पुराना सिक्का इतिहास के शोध में निष्णात पै को जागृत करता है।

जब क्रौंच मिथुन पर क्रूर शिकारी ने अस्त्र चलाया तब वाल्मीकि के हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। ज्ञान की देवी, वाणी की वीणा का सुर बन्द हुआ और अश्रुगीत सामने आए. इस प्रसंग का वर्णन 'कवितावतार' (कविता का जन्म) नाम की चौदह पंक्तियों की कविता में हुआ है। 'भारतभाग्यविधाता'(भारत के भाग्य का निर्माता) पै का एक करुणापूर्ण गीत है। भारत के भाग्य के निर्माता को संबोधित करते हुए कवि उनसे विनती करते हैं कि स्वतन्त्रता की इच्छा करनेवाले हमें दया का दूध दे दें। हमारे पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। फिर भी हम तुमसे स्वतन्त्रता के अमृत की याचना करते हैं। हम दरिद्र हैं, तुम्हें धन कैसे देंगे? कवि कहते हैं - हम अश्रुओं से निर्मित पादवलयों से उनके पैरों की शोभा बढ़ाते हैं। 'राष्ट्रीय शिक्षण सप्ताहद करे' (राष्ट्रीय शैक्षणिक आह्वान का सप्ताह) देश के प्रति भक्ति दिखाने का और एक गीत है। भारत की जनता को पढ़ाने के लिए ब्रिटिशों द्वारा स्थापित अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षण संस्था एवं राष्ट्रीय विद्यालयों को बन्द करने का समय। कविता में बताया गया है

कि एक बार दूसरों द्वारा स्वाद चखी हुई भाषा का हम स्वाद नहीं लेंगे. इस कविता में मातृभाषा के प्रति गहरा प्रेम प्रकट हुआ है। 'पातरगित्तिगे' (तितली के प्रति) चौदह पंक्तियों में लिखी गई कविता है। तितली को देखकर कवि अपने शृंगार और प्रेम की याद करते हैं और वियोग की पीडा का अनुभव करते हैं।

'केळिसदे करे'(मेरी पुकार क्यों नहीं सुनते?) दूसरा एक सुन्दर भावगीत है। दुलार के साथ हृदय में पाली हुई प्यार की वस्तु अब कवि के पास नहीं है। परन्तु वह बहुत दूर पर है। उसे पास ही रखने की वे इच्छा करते हैं। वे ईश्वर या उनके हृदय में स्थित देवी को संबोधन करते हुए पुकारते रहते हैं। वह वस्तु कवि के सामने नहीं , इसलिए पुकार सुननेवाला भी कोई नहीं है। सामने रखे हुए दर्पण के अभाव में आँख स्वयं नहीं देख सकती। बच्चे को गर्भाशय में जन्म देते समय माता उसके मुख के सौन्दर्य को देख नहीं सकती। यह कविता एक सुन्दर उदाहरण के साथ समाप्त होती है। वह इस प्रकार है - जीवनरूपी पतंग की डोरी जब टूटती है तब वह पथ से विचलित होकर या तो अंधकार से युक्त वन में पहुँच जाती है या प्रकाश की भूमि पर रहनेवाले तुम्हारे वासस्थान पर पहुँच जाती है।

ईसा और कृष्ण, दोनों धार्मिक व्यक्तित्व लिए हुए हैं। 'येसुकृष्ण' नाम की कविता में उनके जीवन की घटनाओं की तुलना की गई है। हिन्दू और ईसाइयों के पवित्र धर्मग्रंथों के आधार पर सिद्ध किया गया है कि दोनों का जन्म, बालपन, जीवन, शक्तिहीन लोगों की सेवा, धर्म की स्थापना सब कुछ समानता लिए हुए है। कृष्ण से बढ़कर ईसा श्रेष्ठ हैं वाली ईसाई धर्मप्रचारकों की संकुचित मनोवृत्ति एवं कवि गोविन्द पै के विशाल मानसिक भाव , दोनों का परिचय इस कविता में होता है। 'नम्बलेन्तु'(कैसे विश्वास किया जा सकता है?) कविता में उन्होंने अपना आश्चर्य व्यक्त किया है कि पुराने समय में जब श्रीकृष्ण यदुवंश में जन्मे थे उस समय उनकी लीलाओं की जो कल्पना की गई वैसी कल्पना उसकी पुनरावृत्ति के बिना आज का मनुष्य कैसे कर सकता है?

'महात्मर उपवास' (गाँधीजी का अनशन) गाँधीजी के संबन्ध में लिखी गई कविता है। ई. स. १९३४ में गाँधीजी ने इक्कीस दिनें का उपवास किया था। यह कविता उस समय लिखी गई थी। इसमें कवि कहते हैं -

'तपस्वी शुकदेव ने परीक्षित राजा को श्रीमद्भागवत पढ़ाया। श्री बुद्ध ने उरुवेल के पीपल के वृक्ष के नीचे उपवास किया। ईसा ने जोरदान नदी के किनारे उपवास किया। मुहम्मद ने हीरा पर्वत की गुहा में

उपवास किया और महात्मा गाँधी आज उपवास कर रहे हैं। ये सब संसार के कल्याण के लिए उपवास करनेवाले महान एवं दैवी व्यक्तित्व से युक्त मनुष्य हैं। हर युग में यही शक्ति संसार में जागृति पैदा करती है। यह मूल सार्वजनिक तत्वों की पूर्णता के लिए होता है। यह उपवास समाप्त हो जायगा और भारत के सौभाग्यरूपी मनोहर बेल के रूप में फैल जायगा।'

सत्याग्रह की यागाग्नि में अपने को समर्पित करनेवाले स्वयंसेवकों के रूप में भारत के जनसमूह की रोमांचक कथा हमारे प्राणों में सिहरन पैदा करती है। यह स्मरण होना चाहिए कि कवि के शब्द भविष्य की सूचना देनेवाले बन गये। तुळुनाड पर कवि का विलक्षण प्रेम था। इतिहास से संबन्धित अपने शोधलेख में जहाँ जहाँ मौका मिलता था वहाँ वे दक्षिण कर्नाटक याने तुळुनाड से नाता जोडते थे। कवि पूरी मनुष्यजात, मातृभूमि एवं कन्नड देश से प्यार करते थे और उनके माता पिता की भी माता, तौळव माता से वे अत्यधिक प्रेम करते थे।

इस कविता में तुळुनाड के बारे में वे कहते हैं - 'जय ! जय ! तौळव माते ! तुम मेरे माता पिता की भी माता हो। इस पृथ्वी पर स्वर्ग की शीतल छाया हो। परशुराम ने जब कुल्हड़ फेंका तब सागर के गर्भ से तुम्हारा जन्म हुआ। भारत माता की गोद में तुम विश्राम करती थीं। सह्याद्रिरूपी वीणा तुम बजाती थीं। तुमने अक्षतों की, सूर्य एवं चन्द्र की किरणों की वर्षा की और सब कहीं थंड बरसाई। तुम नूतन ऋतुओं के नये स्वरमेल गाती रहती थीं। आकाश एवं सागर तुम्हारी सेवा करते थे। तुम्हीं सत्यपुत्रों की, भैरवों की, बंगों की और अजिलों की ननिहाल थीं। तुम्हारा मायका तौळवों का ननिहाल था। तुम सभी लोगों की रक्षा करनेवाली थीं और तुम्हारे मन्दिर सात्विक गुणों के द्वार थे। सद्गुण तुम्हारी नदियों के रूप में बहते थे। बहुत मन्दिर एवं महान शिल्प यहाँ देखने को मिलते हैं। शिल्पकला यहाँ अवरुद्ध स्वप्नों की भाँति रहती थी। सब कहीं व्याप्त हरी भरी प्रकृति तुम्हारे लंबे लंबे केशों जैसी शोभित होती थी। पक्षी, मृग, तितलियाँ, सब जीवन का संगीत गाते रहते थे। हिन्दू, जैन, मुस्लिम और ईसाई यहाँ पर एक ही परिवार के सदस्य बनकर रहते थे। ईश्वर इन सबके पिता थे। हम सब की तुम माता हो। माते ! जिस प्रकार सरोवर कमलों को हृदय से लगाता है उसी प्रकार प्राचीन काल से ही तुम हमें हृदय से लगाती थीं और तुम्हारे हृदय के पालने में संभाल कर रखती थीं। तुम्हारे गर्भाशय में जन्म लेकर यह कविता पुष्प मुझे मिल गया। मैं भाग्यवान हूँ। इस पुष्प

की सुगन्ध तुम्हारे ही पैरों पर समर्पित करता हूँ। इसे स्वीकार करो। वह धूल और कचरे में पड़कर नष्ट न होने पाये। तुम्हें छोड़कर जब कभी मैं जाऊँगा उस दिन तुम्हारे ही गर्भ से जन्म लेने का अनुग्रह तुम अपने इस पुत्र को दे दो।'

कवि ने कितना मनोहर धन्यवाद प्रस्तुत किया है ! कैसी अपूर्व भावना है उनकी !

'चातक', (वर्षाऋतु का पक्षी) चौदह पंक्तियों की और एक कविता है। पक्षी के शरीर का, उसके स्वर का और आवास का शोध करते हुए कवि थक गये। जब कवि सोचते हैं कि वह उड़नेवाला एक पक्षी है और उसकी भावना काल्पनिक है तब वह पक्षी उत्तर देता है - 'मेरे बारे में बाहर से इतना बड़ा शोध मत कीजिए। मैं बाहर का पक्षी नहीं हूँ। जब तुम्हारे विचारों में संघर्ष और सपनों में चमक आती है, उस समय मैं तुम्हारे हृदय में प्रवेश करते हुए तुम्हारे कानों में मधुर स्वर में चींव चींव करता रहूँगा।'

'एदेदरनितैदुतैदित कालम्' (पचीस वर्षों के बाद प्राणों को नष्ट करनेवाला समय आ गया) नाम की चौदह पंक्तियों वाली कविता अपनी मरी हुई पत्नी को आधार बनाकर श्री पै ने लिखी है। कवि अपनी पत्नी की याद में आँसू बहाते हैं -

'तुम्हारे माता पिता ने मेरे साथ तुम्हारी शादी करा दी। आज इस विवाह के पचीस वर्ष बीत गए। मेरे जीवन में अंधकार ही अंधकार है। मैं तुम्हें सन्तोष नहीं दे सका फिर भी मुझे तुमसे केवल सन्तोष ही मिला। मुझसे विवाह करते हुए तुम्हारे नसीब में केवल दुःख ही लिखा था। मैं तुम्हारी सुन्दरता का आनन्द लेकर अपनी वासना की पूर्ति करता रहा। लेकिन मैंने नहीं जाना कि तुम्हारे कलेजे का मूल्य क्या है। अब तुम मेरे कलेजे में स्थान लेकर मुझे प्यार दे दो। तुम्हारे प्यार के लिए मैं अपना जीवन ही अर्पित करता हूँ। मेरे घर एवं हृदय में स्थान ले लो। तुम्हारे केशों की वेणी पर मेरे अश्रुकणरूपी फूलों को मैं सजाता हूँ। मेरे कलेजे से चुना हुआ यह फूल तुम्हारे केशों में लगाओ।'

'मरेते' (मैं भूल गया) प्रेम एवं आध्यात्मिकता का मिश्रित रूप प्रस्तुत करनेवाली चौदह पंक्तियोंवाली (सॉनेट) कविता है।

'जीवन के घोंसले में ये अंडे रखते हुए मरण कब अदृश्य हुआ, मालूम नहीं। मेरे इच्छा के पंख पसारकर आकाश में उड़ते समय मैं तुम्हें

भूल गया। तुम मुझे पुनः पुनः भटकने के लिए प्रेरित करती हो। निरन्तर बहनेवाले आँसू मेरे कलेजे और आँखों में देखे जा सकते हैं। तुम्हारी आँखों की नाजुक पलकें खोलकर एक बार मुझे देख लो।'

'श्री विद्यारण्यर अडिदावरे गळल्लि'(श्री विद्यारण्य के चरणकमलों पर) पुरानी कन्नड़ में चार पंक्तियों में रची हुई कविता है। पन्द्रह चरणोंवाली यह कविता श्री विद्यारण्य की पहली पुण्यतिथि के स्मरण के रूप में रची गई है। कवि उन महान तपस्वी की प्रशंसा इस प्रकार करते हैं -

'श्री विद्यारण्य कर्नाटक राज्य के निर्माता हैं। नास्तिकता के रोग के लिए ये वैद्य रहे थे। वेदान्त के मार्ग पर वे काफी आगे बढ गए थे। वैदिक धर्म की उन्होंने रक्षा की। वे असंस्कृत लोगों के द्वारा फैलाए गए अंधकार को दूर करनेवाले सूर्य थे। उनकी मातृभाषा कन्नड थी। फिर भी अपने भाई सायण से मिलकर उन्होंने वेदों की सविस्तार टीका तैयार की। परम तत्व के ज्ञान की सहायता से उन्होंने धर्म का ह्रास रोक दिया। उन्होंने सैनिकों जैसा शौर्य लेकर नास्तिक सेना से युद्ध किया। हमारा जन्म भारत देश में हुआ, यह भाग्य की बात है। उन्होंने हमारे देश के भले के लिए बहुत प्रयत्न किया। आज कन्याकुमारी से हिमालय तक उनके जैसा कोई ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। उनके जैसा कोई होता तो हमारा देश इस प्रकार करुणा का मोहताज नहीं होता। 'हमारे लिए आपके इस घर को, भारत की इस पवित्र भूमि को मत भूलिएगा। हमें अनुग्रह प्रदान करने के लिए आपको छोड़कर और कौन हो सकता है ?' इसलिए जब तक कर्नाटक, हिन्दू धर्म और भारत देश रहेंगे तब तक विद्यारण्य का स्मरण हम करते रहेंगे।

'नौघाट पर' और एक भावनापूर्ण कविता है। बडे सबेरे एक आदमी नौका से नदी के उस पार जाता है। वह नौघाट पर घूमते हुए आवश्यक वस्तुओं को खरीदता है। फिर लौटना चाहता है। 'मेरी पत्नी मेरे पहले ही नौघाट पर पहुँची। मेरे साथ वहाँ घूमने लगी। फिर थोड़े समय पहले लौट गई। मैं घर नहीं लौटा तो उसे अच्छा न लगेगा। अरे, सागर के स्वामी ! तुम पहले ही निश्चित समय को टाल कर क्यों आ गए? मुझे जल्दी उस पार ले जाओ। हाय, हाय ! उसका विलाप क्या तुम सुनते नहीं?' मनुष्य की आत्मा ईश्वर से यही माँगती है। नदी के दोनों तट दो लोक हैं। इहलोक और परलोक। नौका हमारा क्षणिक जीवन है। इस

नौका से हर कोई अपना घर लौटता है। यहाँ पर सब लोग एक साथ रहते हैं। कविता का यह रूपक बहुत ही मनोहर है।

'आत्मानं विद्धि' चौदह पंक्तियों की और एक (सॉनेट) कविता है। अपनी सत्ता को पहचाने बिना मनुष्य दूसरे को नहीं पहचान सकता। आत्मज्ञान के लिए ब्रह्मचर्य बहुत आवश्यक है। यही इस कविता का प्रतिपाद्य है। कवि ईश्वर से ब्रह्मचर्य की भीख माँगते हैं। 'युगादीयनेनपु' (युगादि की याद) नाम की कविता युगादि और उस दिन इस संसार को छोड़कर चली गई अपनी जीवनसंगिनी का स्मरण दिलाती है। कवि अन्तिम युगादि का स्मरण करते हैं जब वह कवि की आँखों को आनन्द प्रदान करती थी। उस आघात की याद आज भी वे करते हैं और विलाप करते रहते हैं। वे कहते हैं कि उसके संयोग के दिन उन दोनों के लिए उत्सव के समान थे। वधू जिस प्रकार विवाह मण्डप में प्रवेश करती है उसी प्रकार उनकी जीवन संगिनी ने चिता में प्रवेश किया। इस घटना की वे याद करते हैं। वे सोचते हैं कि बच्चे के मरने के बादं पालने पर जो घटती है वह महत्वपूर्ण नहीं है और अपने खोखले जीवन के भाग्य को कोसते हुए वे विलाप करते रहते हैं।

'बाले निन्नय तम्मनेल्लि'(बालिके, तुम्हारा भाई कहाँ है?) एक लंबी कविता है। बड़ी बहन और छोटा भाई दोनों बच्चे हैं। छोटा भाई मरता है। कवि बालिका से पूछते हैं कि उसका भाई कहाँ है? वह सोचती है कि उसका भाई मरा नहीं है और कवि से कहती है कि पिछले दिन उसका भाई उसके साथ था। वह कहती है कि कल रात वह उससे खेलने आया था। तब से लेकर सपने के समान वह उसे दिखाई नहीं पड़ता। फिर भी उसकी यादें जैसी की तैसी हैं। उसकी माँ रोती रहती है। वह माँ से भाई के साथ आनन्द से रहने की इच्छा प्रकट करती है। इसके बदले आभार स्वरूप वह अपने कंगन माँ को समर्पित करने की इच्छा करती है। यह इच्छा भी व्यर्थ जाती है। कल के द्वार से चोरी चोरी देखते हुए उसने इच्छाओं की टोकरी खोज निकाली। वह खाली थी। उस सरल बच्ची के अशान्त मन का वर्णन कवि ने इस कविता में हृदयस्पर्शी ढंग से किया है।

'क्व क्व', मरणानन्तर क्या होता है? कवि इस कविता में इसी प्रश्न पर विचार करते हैं। प्राचीन काल से ही यह प्रश्न हर एक चिन्तक के पीछे पड़ा हुआ है। यमराज से नचिकेता के द्वारा किए गए प्रश्न और अमूल्य वस्तुओं के लाभ की कथा कथोपनिषद में हम देखते हैं।

मरणानन्तर क्या होता है? वह रास्ता कैसा है? कहाँ तक है? वहाँ जानेवाले मनुष्य वहीं रहते हैं या उस स्थान को भूल जाते हैं? अलग हुए लोग फिर से मिल जाते हैं क्या? इस प्रकार मरी हुई आत्मा से संबन्धित दुःखों की यादें और आध्यात्मिक विचारों का प्रतिबिंब इस कविता में मिलता है।

'कोळुगुळद मनवि' (संग्राम क्षेत्र की विनती) पै की एक उत्तम कविता है। जर्मन कवि थियोडोर कॉर्नर की प्रेरणा से यह कविता अपनी सत्ता से शक्ति लेकर स्वतन्त्र रूप में लिखी गई है। हमारे स्वतन्त्रता संग्राम की जो शुरूआत हुई उस समय पश्चिमी तट से प्रतिध्वनित संग्राम का यही भेरीनाद है। यह राष्ट्र के शूरों का गीत है। संग्राम क्षेत्र में जानेवाला हर सैनिक अपनी मातृभूमि के खातिर 'करो या मरो' की शक्ति देने के लिए भगवान से प्रार्थना करता है।

'संग्राम शुरू हुआ। मेघ गर्जन के समान तोप से गोलियाँ बरसीं। तुरही आवाज़ करने लगी। जीवित तोप जैसे सैनिक आगे बढ़ रहा है। संग्राम दूसरे देश को अधीन करने के लिए नहीं, मातृभूमि को दासता से मुक्त करने के खातिर किया जा रहा है। सैनिक नेकी से युद्ध करने के लिए तैयार है। उसे ईश्वर की दया चाहिए। जब तक शरीर में प्राण है तब तक वह संग्राम करता रहेगा। उसके हाथ में तलवार शोभित है। संग्राम करना उसका प्रमुख कर्तव्य है। ईश्वर के नाम पर उसने अपनी तलवार बाहर निकाली। वह विजयी होता है या संग्राम क्षेत्र में मर जाता है तो तलवार एक ही रहती है।' 'तुमने मुझे जन्म दिया। तुम्ही उसे वापस ले सकते हो। तुम्हारी जैसी इच्छा हो वैसे ही जीने या मरने का आशीर्वाद मुझे दे दो। दुःख से भरी हुई इस मातृभूमि पर रहने की मेरी इच्छा नहीं है। मेरी सांसारिक इच्छाओं का अन्तिम संस्कार मैंने किया । यदि मैं मरूँ तो मुझे स्वर्ग की इच्छा नहीं है। अपनी मातृभूमि पर ही मुझे पुनर्जन्म मिल जाय।'

शौर्य की कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति ! कितना महान देशप्रेम ! कविता का आदर्श, शब्दों की गठन, हर पंक्ति के बीच में एवं अन्त में लय, चार पंक्तियों की कविता में अन्तिम पंक्ति और दूसरी चार पंक्तियों में पहली पंक्ति की पुनरावृत्ति, सुन्दर भावना, संग्राम की चेतना जगानेवाला छंद, सब मिलाकर यह कविता अत्यन्त स्फूर्तिदायक रही है।

'पंडरपुरदल्लि' (पंडरपुर में) पंडरपुर के विठोबा के बारे में लिखा भक्तिगीत है। भाग्य से कवि पंडरपुर पहुँचे और पंडरीनाथ को

देखकर उन्होंने पूर्णत्व की भावना अनुभव की। तुकाराम के , नामदेव के जैसे बड़े बड़े भक्त जहाँ पर पवित्र दृष्टि पाकर चले गए वह प्रदेश सच्चे अर्थों में बहुत पवित्र है। वहाँ पर उन्होंने अपना सारा पाप, पुण्य और बाकी जीवन परब्रह्म को अर्पित किया।

'पालुमारिके' (दूध की बिक्री) एक लंबी कविता है। एक दूधवाली नदी के उस पार जाना चाहती है। नाव के आने का समय नहीं हुआ था। उसने दूध में पानी मिलाकर बरतन को भर दिया। फिर नाव आ गई। वह नाव पर चढ़ी और नाव चलने लगी। उसका मुख आनन्द से भरा था। उसका कर्णफूल यकायक पानी में गिर गया। उसे बड़ा दुःख हुआ। पास ही बैठे हुए मज़ाक करनेवाले किसी व्यक्ति ने उससे कहा - ' तुम चिन्ता क्यों करती हो? पहले जैसा काम तुम कर चुकी हो फिर वही दुहराती क्यों नहीं? तुम्हारी उम्र अभी छोटी है। यहाँ पर पानी के कई स्रोत हैं। सोना भी सुलभ है। पानी तो दूध में ही मिलाया जा सकता है, मक्खन या घी में नहीं. पानी का भाग पानी में गया। बाकी अंश दूध का है। जो काम तुमने किया है उसकी उचित पगार लिए बिना तुम कैसे जा सकती हो?'

'कन्नडिगर ताई'(कन्नड़ लोगों की माता) पै की एक लोकप्रिय एवं प्रख्यात कविता है। उसके शब्दों का संगीत, गौरवपूर्ण अर्थ, मनमोहक ताल, शब्दों एवं छन्दों का माधुर्य देखने योग्य है। कविता का गद्य में रूपान्तर नीचे दिया गया है -

'कन्नड़ लोगों की माते, तुम्हारा मुखडा एक बार दिखाओ तो । तुम्हीं ने हमें जन्म दिया। हमको आशीर्वाद दो। हे माते ! तुम्हारे बच्चों का रक्षण तुम्हें करना चाहिए। तुम्हारे बच्चों ने जो गलतियाँ की हैं वे सब तुमने चुपचाप सही हैं। हमेशा तुमने प्यार से हमें पाला और पोसा। तुम हमारा सच्चा जीवन हो। हम तुम्हें कभी नहीं भूलेंगे। हमारा देह, मन और शब्द कन्नड़ मात्र हैं। इस प्रदेश में फलों और डोंडों से भरे वृक्ष अनेक हैं। फूलों और पत्तों से भरी हुई लताएँ हैं। यहाँ पर हवा लहरों और पर्वतों से होकर बहती है। तरह तरह के पक्षी, जानवर और सरीसृप यहाँ पर रहते हैं। इस प्रदेश में अनेक नदियाँ, नगर, और पर्वत रहे हैं। यह प्रदेश देखने में एसा लगता है कि यहाँ पर दूध और मधु का स्वर्ग ही भूमि पर उतर आया है। रामायण और महाभारत के काल से ही कर्नाटक देश प्रसिद्ध रहा है। महान शालीवाहन, चालुक्य, राष्ट्रकूट, गंग, कदंब, होयशाला, कलचुरी और विजयनगर के राजाओं के ज़रिए यह प्रदेश बहुत ही महत्व का रहा। जैन,

माध्व, शैव संप्रदाय के आचार्यों ने इस प्रदेश का महत्व बढ़ाया। पंप, रन्न, जण्ण, षडक्षरी और मुद्दण के ज़रिए कर्नाटक देश को महत्व मिला। हलेबीडु, बेलूर, बेळगोळा और कारकळ के शिल्पसौन्दर्य के कारण कर्नाटक का महत्व और भी बढ़ गया है। कन्नड़ बहुत ही पुरानी भाषा है। जिस प्रकार कस्तूरी मृग कस्तूरी की सुगन्ध नहीं जानता उसी प्रकार कन्नड़ लोग कन्नड़ भाषा की सुगन्ध से परिचित नहीं हैं। कन्नड़ लोगों की माते, हमारे मन में नई प्रेरणा जगा दो और कन्नड़ भाषा की ताजा सुगन्ध संसार में भर दो।'

इस कविता का गौरवपूर्ण अर्थ, सुरलहरी और लयात्मकता कन्नड़ जनसमूह ने सहर्ष स्वीकार किया है।

'बेकु बेड' (मुझे चाहिए और नहीं भी) एक लंबी कविता है। इस कविता का रूपान्तर नीचे दिया जा रहा है -

इच्छाओं की पृष्ठभूमि पर अभावग्रस्त दरिद्रता का अर्थ निहित है। मन की ऐसी दरिद्रता का स्वागत तुम क्यों कर रहे हो? उसी प्रकार धनी होकर साथ रहनेवाला अहंभाव 'मुझे नहीं चाहिए' वाली पृष्ठभूमि पर रहनेवाला ही होता है । 'चाहिए और नहीं चाहिए' वाले नकली विचार यदि छोड़ दें तो मनुष्य शान्त होकर जी सकता है। हमारे द्वारा पिया जानेवाला जल, हमारे चारों ओर रहनेवाली हवा, मन का धैर्य, पृथ्वी पर का वास, नई नई भावनाएँ, सदा सुखी जीवन, सुन्दर शरीर आदि की माँग क्या कोई करता है? बिना माँगे ही यह सब मिलता है। फिर भी यह रोना और घिघियाना क्यों?

'हेंगसु' (महिला) चौदह पंक्तियोंवाला एक सॉनेट है। चैतन्य देव के एक प्रसिद्ध शिष्य रूप- गोस्वामी ने स्त्री होने के नाते मीराबाई को मिलने से इनकार किया। उस समय मीराबाई ने उनसे पूछा -' एक महिला का मुख देखकर उनका सन्यास चला जाता है तो वह कैसी प्रतिज्ञा है? स्त्री पुरुष की एकता को न माननेवाले गोसाईंजी ईश्वर से किस बात की इच्छा रख सकेंगे? राधा कौन है, यह क्या गोसाईंजी भूल गए? राधा के बिना श्रीकृष्ण किसको मिलता है?'

'सफल' और एक भावगीत है। यह कविता सब लोगों के समान हक से जीने का वादा करनेवाली कविभावना का सफलता के साथ अंकन करती है। नक्षत्रों ने जुगनू से पूछा - 'हमारे प्रकाश से तुम अपने को प्रकाशित करते हो न?' इस प्रकार उन्होंने जुगनू की हँसी उडाई। गर्जन

करनेवाली लहरें ही झींगुरों को तुच्छ समझती थीं - 'तुम हमारे ही गीत गाते रहते हो?' कहकर उन्होंने उन्हें नीचा दिखाने का प्रयास किया । जुलाई महीने में एक दिन पानी बरस रहा था। पर्वत ऊँघ रहे थे। तराई से यात्री चौड़े रास्ते से होकर चल रहे थे। नक्षत्र शोभित नहीं थे। लहरें गर्जन नहीं करती थीं। यात्री ने प्रकाश फैलानेवाले जुगनुओं को देखा और झींगुरों की आवाज़ सुनी। उसने बड़ी उम्मीद के साथ कहा कि उन्होंने उसका मार्ग स्पष्ट रूप से दिखाया और झींगुरों को गाते हुए सुना। वह आगे बढ़ा। संसार में नक्षत्रों का ही प्रकाश नहीं है और लहरों का एक ही गीत नहीं। जुगनू का प्रकाश भी सच्चे अर्थों में प्रकाश ही है और झींगुरों का गाना सच्चा संगीत। संसार में धनी एवं बड़े लोगों को ही ऊँचा स्थान प्राप्त होता है।'

'महाकवि कुमारव्यासनिगें'(महाकवि कुमारव्यास को) नामक कविता में कुमारव्यास के प्रिय छन्द 'भामिनी षट्पदी' में तैयार किए गए २१ श्लोक मिलते हैं।

'कुमारव्यास कवियों के भी कवि हैं। वे संजय की दृष्टि रखनेवाले कवि हैं जिन्होंने महाभारत की कथा वर्णनात्मक ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत की जैसे संजय कह रहे हैं। पुराने ज़माने में सभी कवियों ने कन्नड़ माता के दोनों स्तनों का दूध पूरा चूस लिया। उस समय तीसरा स्तन अंकुरित हुआ और कुमारव्यास ने उस स्तन का दूध पी लिया। इस प्रकार सुन्दर साहित्य की देन से वे अनुगृहीत हुए।'

'पंप, रन्न, लक्ष्मीश, हर कवि ने कन्नड़ भाषा के सौन्दर्य एवं शोभा का वर्णन अपने अपने साहित्य में अपने अपने प्रदेश के संदर्भ में किया है। परन्तु तुम्हीं ने कन्नड़ भाषा की सच्ची शोभा एवं सौन्दर्य सारे कर्नाटक में फैलाया। तुम्हीं ने और लक्ष्मीश ने कन्नड़ साहित्य के गर्भगृह में श्रीकृष्ण को प्रतिष्ठित किया है। जितने समय तक कन्नड़ भाषा जीवित रहेगी उतने समय तक तुम्हारा नाम भी रहेगा और लोग महाभारत की कथा सुनते रहेंगे।'

कवि कुमारव्यास को कितनी सुन्दर श्रद्धांजली है !

'सुम्मने केन्ननु विधिये कडिसुवे' (हे ईश्वर ! तुम यों ही मुझे त्रास क्यों देते हो?) चौदह पंक्तियोंवाली और एक कविता(सॉनेट) है।

भाग्य हठपूर्वक कवि की इच्छा के अनुसार उन्हें कुछ देने से हिचकता है और जिस वस्तु की इच्छा कवि नहीं करते उस वस्तु को कवि

पर लादता है। यह उन्हें पीड़ा देता है। जिस दिन से भाग्य ने उनकी प्रेमिका को छीन लिया है वह दिन उन्हें पसन्द नहीं है। उसके बिना वे कल का सूर्योदय देखना नहीं चाहते। आज भी वे कल के दिन की यादों में ही रहते हैं जिस समय वे जीवित थीं। वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यदि हो सके तो कल का दिन उन्हें फिर से प्रदान करें।

'बल्लुदे लते फलं तन्न'(लता उसके फल के बारे में सोचती है क्या?) पै के सुन्दर भावगीतों में एक है।

'फल मीठा है या कड़ुआ लता इसके बारे में नहीं सोचती। उसके जानकार यदि फल मीठा है तो उसे स्वीकार करते हैं और कड़ुआ है तो उसे नकारते हैं। कोई भी वह फल नहीं खाता तो भी लता के लिए कभी वह फल भारी नहीं होता। कोई उसे तोड़ता नहीं है तो वह अपने आप लता के नीचे ज़मीन पर पड़ेगा और उसके लिए खाद बनेगा। भविष्य में उसकी फसल और भी अच्छी होगी। कोई भी उस फल को खा लेगा, ऐसा विश्वास लता करती है तो इसमें नुकसान क्या है? भविष्य में लोग उस फल को नकारते हैं तो लता उस पर दुःख क्यों करे? लता का यह फल क्या प्रकृति की देन नहीं है? कोई भी उस फल की इच्छा नहीं करता तो भी पृथ्वी के केशों के पवित्र अक्षतों के समान हवा उसे फूँक फूँक कर नीचे डाल देगी। क्या लता के लिए इतना बस नहीं है? हाँ, इस प्रकार की इच्छा लता के लिए बहुत है। आज भविष्य में या संपूर्ण जीवन में ही सही किसी भी व्यक्ति की सफलता में दूसरे लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते हैं तो क्या हुआ? जिसने सफलता प्राप्त की है उसके लिए यही बड़े महत्व की बात है न?

आज का, कल का या भविष्य का मनुष्य कोई भी कविता पसन्द करने में यदि हिचकता है तो भी कवि को अपनी उम्मीद बड़े महत्व की होती है न? यह विश्वास उनके लिए बहुत है न?

'जीवन दी मधुमासम्'(जीवन का वसन्त ऋतु) कवि के हृदय का रोदन है।

'जीवन का वसन्त ऋतु चला गया। हमारे घर की शोभा बढ़ानेवाला प्यारा तोता उड़ गया। वसन्त ऋतु के बीच ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ और मेरा हृदय जलकर भस्म हो गया। वसन्त ऋतु का अन्त हुआ। फिर एक बार वह आनन्द मिल सकता है? जो शरीर नष्ट हुआ है वह फिर एक बार वापस लाया जा सकता है? एक बार फसल काटी गई तो फिर कैसे उसे पाया जा सकता है। वर्षा और एक बार आएगी क्या ? शरीर छोड़ने पर भी प्रेम जीवित रहता है। प्रेम शाश्वत है न?'

जीवन के मन्दिर में सदा प्रेम का दिया प्रकाशित हो तो वही बहुत है। कवि यही इच्छा करते हैं।

'बार्दिला' (अमर) कवि और उनकी कृति की प्रशंसा करनेवाली चौदह पंक्तियों की कविता (सॉनेट) है। यह कविता पुराने अक्षरवृत्त में लिखी है और एक विद्वत्तापूर्ण कविता है। फूल, खुशी से गानेवाले पक्षी, मुर्गे, हरे भरे शीतल वन, शक्तिमान योद्धा, राजा और रानी आज नहीं हैं। कवि की कविता मात्र रह गई है। वही अमर है। 'मैं', 'मेरा' इस प्रकार सोचनेवाले मनुष्य हमेशा के लिए अदृश्य हुए। वे अब दिखाई नहीं पड़ते। जिस रास्ते से आए उसीसे लौटे। लेकिन कवि एवं उनकी रचना चिरस्थायी रही। वह दिव्य है।

'जय जय' (विजय) देशभक्ति को चित्रित करनेवाला एक गीत है। इसका विषय भारत की स्वतन्त्रता की गहरी इच्छा है। कवि समर्पण करते हुए कहते हैं - 'हमारा भारत एक मनोहर देश है। उसके पैरों पर लहरों की बजनेवाली पायल है। हरे रंग की साड़ी है, नदियों के हार हैं और बर्फ की वेणी है। इस देश में भाग्य का सूर्योदय कब होगा? हमारा खोया हुआ स्वातन्त्र्य कब हमें वापस मिल जायगा? हे, ईश्वर ! हमारी खोई हुई स्वतन्त्रता हमें वापस दे दें'

'कवि मत्तु विमर्शक' (कवि और समीक्षक) नाम की कविता में दोनों के संबन्धों का विवरण मिलता है। जो मनुष्य कविता लिख नहीं सकता और पढ़ नहीं सकता वह कवि के हृदय की धड़कन कैसे मालूम कर सकता है? बाँझ प्रसव पीड़ा क्या जाने? जिस प्रकार अर्थ शब्द को प्रकाशित करता है , दृष्टि आँखों को विस्तार देती है, भावना आवाज़ को मधुर करती है, तट नदी को सीधा करता है उसी प्रकार समीक्षक के शब्द कवि की रचना को स्पष्ट करनेवाले होने चाहिए। 'उंटु' (है) चार पंक्तियों के पदों की कविता है। इसमें कवि समय के देवता काल से पूछते हैं कि काल की पहुँच के बाहर का और हमारी सामर्थ्य की सीमा में रहनेवाला कुछ है क्या? काल इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप में देते हैं। वे कहते हैं कि कवि की प्रतिभा के संसार में जन्म लेनेवाली कविता ऐसी ही एक चीज़ है। 'एल्लि' (कहाँ) भी चार पंक्तियोंवाली कविता है । रजताद्रि और क्षीरसागर वहीं पर है जहाँ सभी जीवों को प्यार करनेवाले, दूसरों को पीड़ा न पहुँचानेवाले सभी धर्मों में एक ईश्वर को देखनेवाले और अपना जीवन मातृभूमि के लिए अर्पित करनेवाले रहते हैं ।

उमर खयाम के फारसी भाषा में लिखे प्रसिद्ध काव्य 'रुबाइयात' का फिट्ज़राल्ड ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया। पहले संस्करण को आधार मानकर श्री पै ने ७५ पदों का अनुवाद कन्नड़ भाषा में 'उमर खयाम' नाम से तैयार किया।यह उमर खयाम के 'रुबाइयात' का कन्नड़ भाषा में पहला अनुवाद था। इसमें शराब, मधु , द्राक्षा, मद्यपात्र, बालटी, प्रियतम आदि शब्द भक्ति, ईश्वरी ज्ञान, मनुष्य का हृदय, समाधि, अकेलापन, सदसद्विवेकबुद्धि, पवित्र मार्गदर्शन आदि के अर्थ ध्वनित करते हैं।

उमर खयाम बीसवीं सदी में जीवित थे। 'रुबाय' अन्त्यानुप्रास के साथ लिखी गई चार पंक्तियोंवाले पदों से युक्त कविता है। 'रुबाइयात' 'रुबाय' शब्द का बहुवचन है। पै ने अंग्रेज़ी में एक कविता का निर्माण किया जिसमें उन्होंने सन्तोष के साथ कहा है कि उमर खयाम के गीतों ने किस प्रकार उनका हृदय आन्दोलित कर दिया? अनुवाद में जो अच्छा है वह उमर का है और दोष सब अपने हैं, इस प्रकार कुछ छिपाये बिना ही उन्होंने स्पष्ट कहा है। आध्यात्मिकता और भौतिकता का संयोग दिखानेवाले फारसी कवि के इस महान साहित्यिक ग्रंथ ने दिखा दिया है कि कविता का यथार्थ उद्देश्य आध्यात्मिकता रही है । संसार भर के भाषा पंडितों ने सुन्दर भाषा में इस ग्रंथ की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत किया है । कन्नड़, मलयालम और दूसरी भाषाओं में यह ग्रंथ प्रसिद्ध हुआ है। पै की प्रौढ़ काव्यकुशलता और विद्वत्तापूर्ण कल्पना का एक उत्तम उदाहरण 'उमर खयाम' प्रस्तुत करता है।

ऊपर कहे हुए 'गिळिविंडु' संग्रह का यह संक्षिप्त विवरण है।

स्नेहददे बट्टलल्लि बेये नन्दादीप

पहले ही कहा जा चुका है कि पत्नी की मृत्यु को लेकर श्री पै का दुःख ईश्वर की प्रार्थना में रूपान्तरित हुआ और 'नन्दादीप' नाम की कविता में प्रकट हुआ। ई. स. १९२८ में उन्होंने 'नन्दादीप'(चिरन्तन दिया) नाम से एक कविता की रचना शुरू की। जीवन में रोज़ घर में संभाल कर रखा जानेवाला दिया ही नन्दादीप है। वह कभी बुझाया नहीं जाता। उसी प्रकार कवि अपने जीवन में अन्त तक लिखते ही रहे। इन कविताओं का प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद ही हुआ। हृदय को छूनेवाली इन कविताओं के कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ नीचे दिये जा रहे हैं –

'अब तक तुम मेरे द्वार पर नहीं आए। मैंने तुमको बुलाया नहीं। फिर तुम्हारा स्मरण किए बिना एक भी दिन खतम नहीं होता। तुम्हारी

याद करने से तुमने मुझे रोका भी नहीं। बच्चा खेल के बीच अपनी भूख को भूलता है। फिर भी उसकी माता उसे स्तनपान कराए बिना छोड़ेगी क्या? मेरे दिन खतम हुए। तुम्हारे प्रकाश भरे मुख को मैं कैसे देखूँगा? मेरे प्यार भरे सरोवर में चन्द्रमा के समान शोभित रहनेवाली मेरी लक्ष्मी को तुमने क्यों छीन लिया? अब ही सही मेरे हृदय में आ जाओ। प्रेम करनेवाले मेरे कलेजेरूपी बरतन में यादों का खाना तैयार रखा है। मेरा मन प्रकाश का अमर दिया बनता है। यह दिया मैंने अपने जीवन के टूटे हुए गर्भगृह में संभालकर रखा है। तुम दयावंत हो और आँखों के आँसू को देखकर तुम्हारा हृदय पिघलता है। मैं तुम्हें कहाँ खोजूँगा? अब मैं आँखों से आँसू बहाता हूँ। अब ही सही मेरे पास आ जाओ।'

'तुम्हारे आँगन के कोने में बैठकर विश्राम करने के लिए थोड़ा स्थान मिले तो मैं तृप्त हो जाऊँगा। मुझे कोई भी नहीं देखता तो कोई फरक नहीं पड़ता। तुम्हारे राजदरबार में तुम्हारे सामने खड़े होने की योग्यता मुझ में नहीं है। मुझे संगीत भी नहीं आता। मेरी वीणा नहीं, बाँसुरी भी नहीं। मेरे पास केवल यही तन्तुवाद्य है। इस को बजाने के लिए मुझे कोई बख्शीश नहीं चाहिए। तुम्हारे आँगन में मेरा बन्दापन मात्र रहे।

ग्रीष्म का एक दिन। धूप तेज़ थी। कार्तिक का महीना गर्मी से तप रहा था। दिन खतम हुआ, रात आ गई, मेघगर्जन हो रहा थ, बिजली चमक रही थी, वृक्ष पर पक्षी शोर मचा रहे थे और कीचड़ में मेंढ़क टर्र टर्र कर रहे थे। घर के पास ही आम के वृक्ष पर हज़रों जुगनू दिवाली के दियों के समान अपना नन्हा सा प्रकाश फैलाते थे। जुगनुओं ने अकस्मात् अपनी शीतकिरणें फैलाईं मानो अपनी कीटों की प्रकृति को छोड़कर सन्तोष के साथ तुम्हें मान दे रहे हों। जुगनुओं का उत्साह मेरे मन में नहीं है। मेरे मन में खुशी की गर्मी भर दो और जुगनुओं के जैसे तुम्हारे सामने खड़े होने की शक्ति देने के लिए तुम्हारे प्रेम को उदार बनाओ।'

' मेरे जीवन के बाग में लगाए गए झाड़ से छिपे छिपे फूल क्यों तोड़ते हो? आज मुझे तृप्त करने के लिए उन फूलों की सुगन्ध मात्र जहाँ तहाँ मिलती है। मधु जैसे मधुर मेरी लक्ष्मी को फिर मैं कहाँ से लाऊँ? अन्त में मैं भी अपने बाग का फूल तोड़कर ले जानेवाले विधि के मुख की छाया को देखता रहूँगा।'

'यह रिसनेवाला मिट्टी का घड़ा फेंक क्यों नहीं देते ? अपने बाग के अनेक फूल तुमने प्रेम से अपने केशों पर सजाए हैं। फिर भी इस

एकमात्र फूल को मुरझाने के लिए क्यों छोड़ा? तुम्हारी बाँसुरी से केवल दुःख के ही स्वर क्यों सुनाई पड़ रहे हैं? तुम मुझे यहाँ तक क्यों ले आए हो? टूटा फूटा जीवन बिताने के लिए तुमने मुझे अनुमति दे रखी है। यह तुम्हारा प्यार है या प्रतिकार?'

'ऐसा सोचते हुए कि जो कुछ होता है वह सब भले के लिए है, मैंने तुम्हारे पवित्र नाम का आश्रय ग्रहण किया। किसी भी हालत में रोऊँगा नहीं, ऐसा सोचकर मैं अपना हृदय कठोर बनाता हूँ। लेकिन वह मेंढ़क रात भर रोता ही रहता है। जब तालाब का पानी बाँध तोड़कर बहता है तब वह कीचड़ से मिलकर गन्दा हो जाता है। जब वर्षा आती है तब पानी शुद्ध हो जाता है। मेरे मन को शान्ति नहीं मिलती। अपनी वासनापूर्ण इच्छा को छोड़े बिना शान्ति नहीं मिलने की।'

'तुम्हारा तन्तुवाद्य दो तारों का है। तुमने उस पर गाना क्यों छोड़ दिया? एक ही तार के सहारे उसे बजाते हुए तुम अपस्वर क्यों लाते हो? एक तटवाली नदी कहीं देखी है? एक तार पर बजाया जानेवाला अपस्वर मधुर नहीं होता । इसमें अच्छे सुर नहीं आते तो उसे तोड़ देना चाहिए और दूसरे तार को नये सिरे से जोड़ना चाहिए।'

'हे, मरण ! तुम देर क्यों करते हो? मुझे नदी के उस पार जाना है। लंगर ढ़ीला कर दो और पतवार चलाते रहो। नीचे लहरें तट से टकराती रही हैं और ऊपर से पानी का प्रवाह गिर रहा है। इससे क्यों डरें? मरण हमारे सामने दिन रात नृत्य करता रहता है।'

'ऐसा कोई घटिया काम नहीं है जिसे मैंने न किया हो। यद्यपि मैं निकृष्ट और तुच्छ हूँ फिर भी मुझे जन्म देनेवाले ईश्वर महान हैं। अन्त में एक बार उसके पास जाना ही पड़ता है। नक्षत्र सीमा तोड़कर जाता है तो भी टूटकर पृथ्वी पर नहीं गिरता। वह आकाश पर शोभित रहता है। मैं मट्ठा जैसा हूँ। दूध जैसा स्वादिष्ट नहीं। '

'मैं गन्ने की पोई की गाँठ जैसा हूँ। उसके रस जैसा मधुर नहीं हूँ। उनकी महानता मुझमें नहीं है, फिर भी मैं उन्हींका अंश हूँ। उन्हीं में मुझे लय होना है।'

'तुम्हारे प्रकाश के मार्ग से भ्रष्ट होकर भी साँझ के समय तुम्हारे घोंसले में आए बिना अच्छा नहीं लगता। बेसर का मोती उससे अलग होकर सागर में पड़ता है और शुक्ति उसे स्वीकार नहीं करती तो भी वह सागर ही में पड़ा रहता है। मैं भटका हुआ हूँ, दुःखी हूँ, पापी हूँ, फिर भी अन्त में तुमसे एकाकार हुए बिना नहीं रह सकता। गन्दे कीचड़ पर फैले

हुए चन्द्र किरण क्या चन्द्रमा में वापस नहीं जाते?'

'जैसे मुझे सिखाया गया वैसे मैं गाता हूँ। लेकिन मैं दावा नहीं करता कि गीत मेरे हैं। लहरें सागर की हैं, सागर लहरों का नहीं। कविता के ज़रिए मेरा हृदय जब पवित्र हो गया है और मेरा मन पाप करना पसन्द नहीं करता तब मुझे चिन्ता नहीं होती और मैं शान्त रहता हूँ। उस समय तुम मेरे पास आओगे क्या?'

'मैं जब उदास होता हूँ तो तुम सन्तुष्ट नहीं होते, इसकी मुझे जानकारी है। इसलिए अनावश्यक रूप से मैं तुम्हें दोष नहीं देना चाहता। जब अश्रुओं का वेतन मुझे मिलता है तब मैं शिकायत नहीं करता कि यह मेरा नसीब है। जब मुझे कम वेतनं मिलता है तब सन्तोष के साथ मैं उसे ग्रहण करता हूँ। जिस प्रकार जलकर राख बनी हुई रस्सी अपने रूप को नहीं छोड़ती उसी प्रकार अन्त तक तुम अपने प्रेम से मुझे आश्वासन दे दो।'

'मेरा दुःख मात्र अपना नहीं है। मुझे उसकी खबर होने के पहले ही तुम उसे जान जाते हो। तुम भी मेरे जैसे दुःखी हो। जब खिलौना टूट जाता है तब बच्चा सहज ही उदास हो जाता है। जिस शिल्पी ने उसे बनाया है उसका दुःख उससे भी ज़्यादा है । वह उसे फिर से आकार प्रदान नहीं कर सकता। जब दोनों आँखों से आँसू टपकते हैं तब एक आँख दूसरी को आश्वासन देती है, वैसे ही मैं तुमसे आश्वासन चाहता हूँ।'

'मेरे हृदयरूपी शराब की दूकान के द्वार तोड़कर उस मधुर लक्ष्मी को मेरे जीवन में स्थान दिया। तुमने मेरे मुख पर एक मुखौटा डाल दिया और मैं तुम्हें भूल गया। फिर तुम दिखाई नहीं पड़े। तुम कहाँ छिपे थे? मृत्यु के दूत पीछे का द्वार तोड़कर भीतर आए। मेरे हृदय के मद्य को पी गए और आगे का द्वार निकाल फेंककर चले गए। इन परिस्थितियों में बाकी जो दुःख रहा मैं सिर नवाकर उसे तुम्हारे सामने समर्पीत करने के लिए अपनी टूटी हुई दूकान के सामने खड़ा हूँ। तुम दिखाई नहीं पड़ते'।

'मैं तुम्हारी छाया का अनुसरण कर रहा था। वह दृष्टि से परे न हो जाय इसका मैंने प्रयत्न किया। फिर भी यादों से दूर जानेवाले सपने के समान वह अदृश्य हो गई। पीड़ा से तड़पता हुआ दिल, नम्र मन और निस्तेज दृष्टि लेकर मैं दुःखों के घाट कर खड़ा हूँ। लेकिन तुम अभी तक यहाँ नहीं पहुँचे। जिस घाट से होकर मैंने अपना प्रयाण शुरू किया है वह घाट और मेरी नाव दोनों तुम्हारे नहीं हैं। मुझे तुम्हारे साथ ही वह घाट पार करना था। लेकिन तुम्हारे ही सामने मेरे जीवन की नाव डूब रही है। दुःख

को छोड़कर मुझको तुम्हारी छाया का फिर से अनुसरण करना है।'

'थोड़े समय के लिए सभी काम बन्द करो। जागृत होकर सुनने का प्रयत्न करो। वह आ रहा है। ज़रूर वह आता है। देखने के पहले ही सागर का गर्जन सुनाई पड़ता है न? तुम उसका साथ छोड़ दो तो भी तुम्हारे बगैर वह जीवित नहीं रह सकता। क्या आँखों के बिना दृष्टि रह सकती है? देखो तो! वह आ रहा है। जब तुम आँखों से आँसू झड़ रहे हो तब वह उतरकर जाता है। 'हम भूल जाते हैं कि यह जीवन एक संग्राम है। हम सोचते हैं कि जीवन सन्तोष से भरा हुआ है। हम अपने शस्त्र तोड़कर भाग्य को सौंपते हुए स्वयं बंधन में पड़ जाते हैं। हम युद्ध नहीं करते तो शस्त्र किसलिए? फिर सुरक्षितत्व कहाँ है? सोच लो, तुम नायक और सेना हो और आगे बढ़ो।' इसी प्रकार बत्ती जलाकर मैंने घर के कोने कोने में अपनी रानी को ढूँढ़ा। तब मैंने ईश्वर के किले की ओर जानेवाली राह देख ली। वहाँ समानता का महान सागर ही था। अगणित समान नक्षत्र मैंने वहाँ पर देख लिए। वहाँ की स्त्रियाँ मेरी रानी के समान थीं। मुझे लगा कि मेरे प्यार ने एक सामान्य रूप ले लिया है। जहाँ पर चन्द्रमा, रात और राह नहीं थी जहाँ तुम्हारी छाया मैंने देखी। इस कल्पना का आनन्द पाने का एक ही उपाय है और वह है सन्यास।'

'अकाल में ग्रीष्म ऋतु आ पहुँची। फिर हवा नहीं, हरियाली नहीं, छाया नहीं, चमक नहीं, मेघ नहीं, गर्जन नहीं, कुछ भी नहीं। आँखों में आँसू की एक बूँद भी नहीं। मेरा मन उदास हुआ। पुकार नहीं है, उछाल नहीं है, शब्द भी नहीं है। मैं सुस्त रहा। यह अवस्था बड़े दुःख की है। मुझ पर तुम्हारी दया की वर्षा कर दो।'

'हो सकता है कि सांसारिक सुखों कि बाँबी में चिन्तारूपी सर्प फण पसार कर खड़ा है। इस प्रकार बहुत दिन निराशा में ही बीते। इस बन्धन से मुझे मुक्ति दो। स्वाति की वर्षा की बूँद जिस प्रकार मोती बनता है उसी प्रकार मेरी निराशा के धुएँ की सर्पिल राह सीधे तुम्हारी ओर जाती रहे'।

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्ष्यिष्यामि मा शुच', यह जो तुमने कहा था उसे मैंने सुना है। इसके बाद जीवन में मुझे किसी का भय न रहा। जानते हुए या अनजान में जो पाप मैंने किया है उससे भरा हुआ मेरा मन तुम्हें पुकारता रहता है। तुम्हारे पास पहुँचने की राह मुझे दिखा दो।

'तुम मेरे इन्द्रियों पर पूर्णतः व्याप्त रहे हो। यह जानते हुए भी

तुम्हारे संपर्क के बिना मैं दुःखी हूँ। फूल की सुगन्ध जैसे, तार के मधुर स्वरों के जैसे, आँखों की दृष्टि जैसे तुम मेरे हृदय में वास करते हो तो भी जिस प्रकार फूल अपनी सुगन्ध ग्रहण नहीं करता, तार अपना स्वर नहीं सुनता, आँखें अपनी दृष्टि नहीं देखतीं उसी प्रकार मेरे हृदय में तुम्हारे रहते हुए भी मैं तुम्हें नहीं समझता।'

'जिस प्रकार चाँदनी और चन्द्रमा अलग नहीं उसी प्रकार तुम और मैं अलग नहीं। आज मैं यहाँ हूँ। कल समय के देवता, काल जीवन के विकासक्रम में कहीं भी उठाकर ले जा सकते हैं। तुम और मैं दोनों अशान्त हैं। चाँदनी की गति चन्द्रमा से भिन्न रहती है। यद्यपि चँदनी कमलों से भरे सरोवर पर छा जाती है और कीचड़ में सनी हुई उसकी जड़ों तक पहुँचती है फिर भी वह अपनी शोभा नहीं छोड़ती। मैली कहकर चन्द्रमा चाँदनी से दूर नहीं रहता। उसी प्रकार तुम भी मुझे न छोड़ो।'

'हाँ, मुझे मालूम नहीं है कि इस प्रकार मैं क्यों बोलता हूँ और कहता हूँ। मैं नहीं जानता कि तुम मुझे इस प्रकार बोलने और गाने की प्रेरणा क्यों देते हो? कोई भी ज़ोर से खिलौना घुमा घुमा कर फेंक देता है तो सहज ही वह चीख मारता है। मैं दूसरों का समय नष्ट करने के लिए नहीं बोलता। भाषा के प्रति मेरा जो ऋण है, उसे चुकाने का प्रयत्न करता हूँ. लहरें बार बार उठती रहती हैं। सागर के ऋण को चुकाने की शक्ती उनमें नहीं है।'

'आश्रय खोजते खोजते एक भिखारी मेरे पीछे पड़ गया। मैं उसकी दृष्टि से दूर जाने के लिए भाग खड़ा हुआ। फिर भी वह मुझे नहीं भूला। मुझे लगा कि बड़ी बड़ी आँखों से वह मुझे बुला रहा है। वहुत समय के लिए कई जगहों पर मुझे उसके साथ झगड़ा करना पड़ा। सब कहीं अन्धकार फैला था। फिर भी झगड़ने की मेरी इच्छा पूर्ण न हुई। रास्ता भी दिखाई न पड़ा। मैंने उसे देखा। अन्धकार में वह दिए के जैसा लगा। दूध पीनेवाले बच्चों को जिस प्रकार माता चूमती रहती है उसी प्रकार मेरे मुख को चूमते हुए उसने कहा -'जब तुमने मुझे भगाया तब तुमने स्वयं को ही भगाया। जितना अधिक तुम मुझे भगाओगे उतना ही मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा। जब से तुमने सुख खोजना प्रारंभ किया तब से तुम रास्ता भूल गये। अब मैं ही अन्धकार में तुम्हारे पास आया हूँ।'

'आज से मैं तुम्हारा ही रहूँगा। तुम्हारे बारे में सोचना और कल्पना करना, यही मेरा ध्येय है। तुमने जो गीत गाने को मुझसे कहा था

वह गीत मैं इनाम के रूप में हाथ में ले आया हूँ। तुम मेरे हृदय को शान्त करने की अमृत की बौछार हो। बन्द खिड़की के बाहर से अन्दर आने के लिए उतावली करनेवाली हवा के समान मेरे अन्दर समाने के लिए बार बार प्रयत्न कर रहे हो। जिस प्रकार बैल को अपने चारों ओर का कोल्हू दिखाई नहीं पड़ता उसी प्रकार तुम मेरे समीप होते हुए भी मैं तुम्हें नहीं जानता। जिस प्रकार पानी नाव की रक्षा करता है उसी प्रकार तुम भी मेरी रक्षा करो।'

'आकाश पर हमेशा गतिशील नक्षत्र अस्तमय के बगैर सूर्य में विलीन नहीं होता। उसी प्रकार मेरा जीवन मरण के बगैर तुम में विलीन नहीं हो सकता। मरण शान्ति देता है और जीवन के उद्देश्य को पूर्ण करता है। तुम्हारा प्रकाश सदा जलनेवाले दिए के समान चमकता रहता है। मैं तुम्हारे प्रकाश की ओर पीठ करके दीवार को एकटक देखता रहता हूँ और छाया के साथ खेलता हूँ। सुख के समय मरण आता है और मैं तुम्हारे साथ एकाकार हो जाता हूँ।'

'स्वर्ग और नरक कहाँ हैं? तुम जहाँ हो वहीं स्वर्ग है और तुम जहाँ नहीं हो वहीं नरक। तुम पूरे विश्व में फैले हुए हो। प्रत्येक वस्तु स्वर्ग है और नरक कहीं भी नहीं है। तुम्हारी ओर मेरे मन का अग्रसर होना स्वर्ग और तुम्हारी ओर से पीछे हटना नरक है। मन ही स्वर्ग और नरक को बनाता है। मन का ऊपर उठना और नीचे आना स्वर्ग एवं नरक है। तुम्हारे साथ संयोग होने की अदमनीय इच्छा स्वर्ग है। तुम्हें देख पाने की अनिश्चितता ही नरक है।'

'मृत्यु के पहले तुम्हें देख पाऊँगा या नहीं, इसकी जानकारी मुझे नहीं है। मैं तुमसे मिलने की गहरी इच्छा लिए हुए हूँ। आज नहीं तो भविष्य में किसी भी समय मुझे तुमसे मिलना ही होगा।मेरे जीवन के अन्त में मुझे तुमसे एकाकार होना पड़ेगा। इस जीवन में ही कदापि मैं तुमसे मिल सकता हूँ। जैसे चन्द्रमा सूर्य में मिल जाने के पहले सूर्य को देखता रहता है वैसे ही मैं तुम्हें देखता रहूँगा।'

'मुझे मालूम नहीं है कि वह दिन कब आएगा। लेकिन इस बात का मुझे निश्चय है कि वह दिन आयगा ही। मेरे दाह संस्कार की आग जब ठंडी हो जायगी तब तक पृथ्वी माता दुःखपूर्ण निश्वास लेती रहेगी। उसके बाद चारों ओर उसके दूसरे बच्चों को देखकर उसे आश्वासन मिल जायगा। हर दिन जन्म एवं मरण के कारण वह अशुद्ध हो जाती है। कितने दिन वह

शोक करेगी? कोई मेरे लिए क्षण भर शोक करेगा तो उसके उपरान्त वेणी पर लगाये गये पिछले दिन के फूल के समान मैं उन की यादों से दूर हो जाऊँगा। नया प्रेम पुराने दुःखों का नुकसान भर देता है।'

'ये शब्द मेरे नहीं हैं। ये तुम्हारे हैं। तुम्हीं इन शब्दों को कहने की प्रेरणा मुझे देते हो। इन शब्दों को कहने की प्रेर"गा देनेवाले तुमको देखने को मैं उत्सुक हूँ। यह दुःख भी मेरा नहीं है। मैं अपना अकेलापन दूर करने के लिए इन दुःखों को गूँथ रहा हूँ। वह मुझे छोड़कर चली गई। वह लौटेगी नहीं। मैं अधीर हो जाता हूँ कि वह नहीं लौटेगी। मैं अपने पंख पसारता हूँ, लोहे के रहे। पर खरोंचता हूँ, उस पर हथौड़े से मारता हूँ और चीखता हूँ। अपनी चोंच से मैं परदा फाड़कर उड़ने का यत्न करता हूँ। मैं भाग्य का परदा फाड़ फेंकने में सफल हो जाऊँगा क्या?'

'तुम्हें मेरा अपना बनाने के लिए मुझे बख्शिश के रूप में क्या देना पड़ेगा? मैं तुम्हें क्या दूँ? तुमने मुझे कुछ नहीं दिया तो भी मेरा अपना क्या है? मेरा यहाँ पर कुछ भी नहीं है। सब कुछ तुम्हारा ही है। तुम्हारी वस्तु तुम्हीं को बख्शिश के रूप में देना उचित है क्या? जनक एवं भीष्म जैसे तुम एक वर हो। हमारे अकेलेपन को दूर करने के लिए मेरी बेटी की शादी तुमसे करनी है। मेरी प्रियतमा जब मुझे छोड़कर चली गई उस समय जिस प्रकार त्रिसन्ध्या रात को जन्म देती है उसी प्रकार उसने दुःखरूपी बच्चे को जन्म दिया और उसे मेरे मन के घर में बसाया। मैं ही उसकी माता हूँ और पिता भी। दुःख की इस कुमारी को तुम्हें समर्पित करते हुए मैं अपने दुःखों से छूट पाऊँगा'।

'रात के आने के पहले तुमसे मिलने के लिए मैं घर से बाहर कैसे आऊँगा? मुझे बहुत कुछ करना है। मुझे विश्राम नहीं है। अब तक सूर्यास्त नहीं हुआ। लेकिन तुम मेरी प्रतीक्षा कर रहे हो। कितना समय मैं तुम्हें प्रतीक्षा में रखूँगा?'

'घर के कारागार में होते हुए भी मैंने तुम्हें अपने हृदय में रखा है। मुझे दुःख देनेवाला सूर्य अस्त हो गया। रात रूपी यवनिका सामने आई। थोड़े समय की प्रतीक्षा करो। दिये का जीवन भी जल्दी ही खतम हो जायगा। तब द्वार खोलकर मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा।'

'दिन ढल गया और साँझ चली गई। रात फैलने लगी और चमगीदड़ उड़ते हुए आगे बढ़े। मैंने दिया जलाया, द्वार पर रखा और तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा। कहीं मैंने वह रूप देख लिया। उसका मधुर उत्साह एवं आनन्द मेरे मन में आया। मैंने वीणा बजाई। उसके स्वर दुःख से मुझे

छुटकारा नहीं दे सके। मैं आकाश की ओर देखने लगा। अन्धकार तेज़ी से फैल रहा था। यकायक एक बिजली चमकी। मैंने कोई रूप देख लिया। एक आवाज़ सुनी। मेरी प्रियतमा आ गई है क्या? केशों को सज़ाने और आभूषण पहनाने के लिए मैं दौड़ पड़ा। दर्पण के सामने बैठ गया। काल किसीका रास्ता नहीं देखता। मैं उठा और बाहर आया। वीणा की तन्त्रियाँ टूट गईं। तेल खतम हुआ। सब कहीं अन्धकार फैल गया।'

'हवा में अपने आप मन्द स्वर उत्पन्न करनेवाला किन्नरी वाद्य इन प्राणों को त्रास दे रहा है। नीरस एवं मौन वाद्ययंत्र स्वरों के लगाने से तुम्हारे सुर में सुर मिलाकर गाता रहता है। जब धर्मरूपी हथकड़ियाँ टूट जाती हैं तब मुझे तुम्हारे प्रेमरूपी बंधन की आवश्यकता पड़ती है।'

'कपड़े से मेरी आँखें बाँधकर तुम मुझे आकाश पर उड़ने के लिए छोड़ देते हो। यह चूक मेरी या तुम्हारी? बकरा मारी (दुर्देवता) को वलि जाने के लिए सिर नवाता है और रोता रहता है । बकरे का पोषण और विक्री उसकी अपनी चूक है या उसकी रक्षा करनेवाले की? मैंने खूब पाप किया है। मन पाप करने के लिए हड़वड़ी करता रहता है। उसको अपने बुरे व्यवहार के कारण पश्चात्ताप होता है। फिर वह उसी रास्ते से चलता रहता है। तुमने मेरे पूरे जीवन में हरियाली देकर मुझ पर मोहिनी डाली। मैं उस हरियाली को खाऊँ या उपवास करूँ? मैंने क्या तुमसे जन्म लेने की माँग की थी? मैं बार बार तुमसे विनती करता हूँ । मेरी जो गलती है उसे मुझे समझा दो। नहीं तो मेरे जीवन को नष्ट करने के पाप के लिए मैं तुम्हीं को गुनहगार ठहराऊँगा। तुम्हीं पानी हो और तुम्हीं जाल। मछली का जीवन और मृत्यु तुम्हारे ही हाथों में रहा है।'

'ऐसा लगता है कि कलेजे का स्वर तन्त्रियों ने पकड़ रखा है। वह मधुर स्वर उत्पन्न नहीं करता। तुम कहाँ गये? कब आओगे? मैं तुम्हारी राह देखता हुआ द्वार पर खड़ा हूँ। तुम्हारे आने की सन्तोषजनक खबर मेघगर्जन ने दे दी। बिजली चमकी और उसके प्रकाश में घर का रास्ता दिखाई पड़ा। सभी लोग आ गए, लेकिन तुम अब भी नहीं पहुँचे। मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ। जब हमारी आँखें मिल गईं तब मैं लज्जित हुआ। बाहू पसारकर मुझे आलिंगन कर दो।'

श्री गोविन्द पै का पत्नी के प्रति प्रेम गहरा था। वह पवित्र और सरल था। उसी पवित्रता से उन्होंने सशक्त एवं महान भक्तिकाव्य की रचना की और 'नन्दादीप' भी जलाया। इस प्रकार वे कन्नड़ साहित्य में प्रकाश

लाए। घरवाली के वियोग के कारण उत्पन्न दुःख ईश्वर के स्मरण में रूपान्तरित हुआ और उनके प्राण पवित्र बन गए। वियोग के इस तीव्र दुःख ने आत्मिक समाधि के लिए आवश्यक गहराई प्रदान की। उनके द्वारा प्रयोग में लाए गए छन्द और अलंकार विशेषकर, उपमा, रूपक आदि बिलकुल नये हैं। अस्पष्ट रूप में प्रयुक्त छन्द पाश्चात्य छन्दों जैसे लगते हैं। अधिकांश छन्द स्वतन्त्र हैं और उनके अपने ही हैं। इन छन्दों के ज़रिए उन्होंने कन्नड़ छन्दों के निश्चल पानी में प्रवाह उत्पन्न किया।

शब्दों के कुशल प्रयोग में, अर्थ के विस्तार में, नये नये बिंबों के प्रयोग में और तेजपूर्ण विचारों एवं विषयों के वर्णन में 'नन्दादीप' कन्नड़ साहत्य की एक शाश्वत रचना है। टागोर की 'गीतांजली' जैसी इस रचना को संसार का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुरस्कार मिलना उचित ही है।

राष्ट्रकवि का 'हृदयरंग'

'हृदयरंग'(हृदयरूपी रंगमंच) श्री पै के ४४ कविताओं का संकलन है। इस संग्रह का प्रकाशन सन् १९६१ में हुआ। इसमें उम्मीद भरे भावगीत, लंबी कविताएँ, कथाकाव्य और २४ चौदह पंक्तियोंवाले सॉनेट रहे हैं। हमारे स्वतन्त्रता संग्राम से संबन्धित देशभक्ति की कविताएँ, वेद, पुराण, इतिहास संबन्धि वर्णनात्मक कविताएँ और राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विषयों से संबन्धित कविताएँ भी इस संग्रह में हैं। यह संग्रह कवि के तरह तरह के भावों और रुचियों को दिखानेवाला प्रत्यक्ष प्रमाण है। दूसरे विश्वमहायुद्ध में अमेरिका ने जापान के सबसे बड़े बन्दरगाह, हिरोषिमा में अणुबम का प्रयोग किया और नाश फैलाया। लाखों लोग मर गए। इस विध्वंस को लेकर कवि को जो झटका लगा वह 'अणुबांबु' नाम की कविता में व्यक्त हुआ। कवि प्रश्न करते हैं - ' अणुबम का प्रयोग हुआ तो युद्ध समाप्त होगा क्या? यह अन्तिम युद्ध नहीं होगा । अरे मनुष्य ! दूसरों को पैरों के नीचे दबा कर रखते हुए संसार में हुकूमत चलाने की तुम इच्छा करते हो ! तुम भी मरणाधीन और नाशवंत हो। तुम्हारा नाश तुम्हारे ही अस्त्रों से हो जायगा।'

बेनेगल रामराव ने 'कन्नडवनुळि देनगे अन्यजीवनविल्ल'(कन्नड़ को छोड़कर मेरा दूसरा जीवन नहीं है) नाम की कविता प्रकाशित की। श्री रामराव कर्नाटक देश के परम भक्त थे। उसी समय पै ने 'भारत मातेय महिमा'(भारतमाता का गौरव एवं महत्व) नाम की कविता लिखी। उस

कविता की पहली पंक्ति 'भारतवनुळियुत्त ननगे जीवनवेत्ता' ?(भारत देश को छोड़कर मेरा जीवन कैसा?) थी। पै का कन्नड़ भाषा के प्रति जो प्रेम था वह संकुचित न होकर भारत देश के प्रति उनके प्रेम का पूरक बन कर आया है।

'किसी महिला को विधवा हुए एक महीना बीत गया। वह दूसरे के घर में जाकर घरेलू काम करते हुए जीवन बिताती थी। एक दिन वह अपने छः वर्ष के और आठ वर्ष के, दोनों बच्चों को घर पर छोड़कर पास ही के तालाब में वस्त्र धोने चली गई। छोटे बच्चे को वह साथ ले गई। पासवाले एक वृक्ष के कोटर में किसी पक्षी को पकड़ने के प्रयत्न में एक साँप ने उसके बेटों को काट लिया। किसी आदमी ने दुःख की यह खबर उसको पहुँचा दी। सबसे छोटे बच्चे को तालाब के पास ही छोड़कर वह हड़बड़ाकर घर लौटी। उसके दोनों बच्चे मर चुके थे। बहुत समय तक वहीं बैठकर वह रोने लगी। वहाँ आए हुए लोगों ने उसे आश्वासन देने का प्रयत्न किया। लेकिन कोई भी उसके मरे हुए बच्चों को लौटा नहीं सका। अकस्मात् तालाब के पास छोड़े हुए उसके बच्चे की याद उसे आ गई और वह उस ओर दौड़ पड़ी। वहाँ पर उसने देखा कि बच्चे की निर्जीव देह तालाब में तैर रही है।' उस दिन के बाद वह न हँसी, नहीं रोई।

'यह असीम दुःख वह किससे कहे? कैसे हँसे? रोने से क्या लाभ? "अन्दिनिन्दाके नक्किल्ला अत्तिल्ला' (उस दिन के बाद वह न हँसी, नहीं रोई।) चौदह पंक्तियोंवाली यह कविता खामोशी की महत्त्वपूर्ण साहित्य रचना है।

'इन्निनिसु नी महात्मा बदुकबेकित्तु' (हे महात्मा, तुम्हें थोड़े समय और जीवित रहना था।) चौदह पंक्तियोंवाला एक सॉनेट है।

भारत की आज की स्थिति तूफान में आगे पीछे डोलनेवाले जहाज़ के समान है। तुम्हारा जैसा महान नाविक ही उसको बन्दरगाह तक पहुँचाने में सफल हो सकता है। हिमालय के समान महान तुम्हारा ईश्वर प्रेम, सागर जैसा तुम्हारा मानव प्रेम और सूर्य जैसी तुम्हारी आत्मशक्ति आज तक हमारी रक्षा करती रही। इसलिए हम विनती करते हैं कि - 'हे महात्मा, थोडे समय के लिए और जीते रहो। भारत को तुम्हारी ज़रूरत है'। यह कविता वड्र्सवर्थ ने मिल्टन की मृत्यु के बाद उन पर लिखी अंग्रेज़ी सॉनेट जैसी है। इसमें कहा गया है -'मिल्टन, तुम्हें जीना चाहिए। इस समय इंग्लैंड को तुम्हारी ज़रूरत है।' श्री पै की कन्नड़ कविता इसका नकल नहीं है। यह अत्यन्त हृदयावर्जक बनी है। 'उडुपी के कृष्ण' नाम की

कविता में कवि कहते हैं - 'इस युद्ध में कौन विजयी बनेगा? वे कहते हैं - 'दूसरों के देश को अपने शासन के अधीन लाने के लिए कोई भी युद्ध करता है और दूसरों को युद्ध करने की प्रेरणा देता है तो वह मनुष्य साहसी नहीं है।' साहस की निशानी मात्र विजय प्राप्त करने में नहीं। मातृभूमि के लिए युद्ध करते हुए जो अपनी जान दे देता है वही साहसी है। 'हे श्रीकृष्ण, प्राचीन काल में तुमने भारत की रक्षा की। अब तुम मौन क्यों हो? यह देश तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। तुमने जो कहा था कि धर्म के नाश पर तुम्हीं उसकी रक्षा के लिए अवतार लेते हो, उसे तुम क्या भूल गए? तुम्हारे भारत की स्वतन्त्रता के लिए जल्दी से कुछ करना चाहिए।' वर्णनात्मक काव्य 'एण्णेय बट्टलु' (तेल का कटोरा) भक्ति के सहज गुणों का वर्णन करता है। नारद मुनि अपनी 'महती' नाम की बीन बजाकर ईश्वर के पास पहुँचे। ईश्वर ने उनसे पूछा - 'हे नारद, रामगौड़ नाम के गरीब किसान को तुम क्या जानते हो?' नारद ने कहा - 'गरीब गौड़ और मेरे बीच में बड़ा ही अन्तर है। वह तुम्हारे पवित्र नाम का उच्चारणं केवल दिन में दो बार करता है। लेकिन मैं तुम्हारा नाम रात दिन बराबर लेता रहता हूँ।' ईश्वर ने उन्हें तेल से भरा एक खुला कटोरा दे दिया और उससे एक बूँद भी बिना गिराए उसे लेकर नगर भर में घूम आने को कहा। नारद ने वैसा ही किया। लौटे हुए नारद से ईश्वर ने पूछा- 'तुम्हारी चाल में कितनी बार तुमने ईश्वर का स्मरण किया ?' ' मैं इसके बारे में सोच रहा था कि कटोरे का तेल चुए बिना किस प्रकार लौटा जा सकता है?' ईश्वर ने उनसे कहा - ' गौड़ अपने घर और खेत में निरन्तर काम करता रहता है। फिर भी दिन में दो बार वह मेरा स्मरण करता है। तुम दोनों में ज़्यादा भक्ति किसकी है?

'ऐरडु वर' (दो वर) चौदह पंक्तियों वाला और एक सॉनेट है। दशरथ ने कैकेई को दो वर दिये थे। वस्तुतः मातृभूमि की और अपने धर्म की रक्षा करने के लिए हर एक मनुष्य को दो वरों की आवश्यकता पड़ती है। 'तुम्हें जागृत होना है और हमारे देश की एकता और धर्म की सहायता करनी है।' कवि सशक्त रूप में इस प्रकार कहते हैं। दूसरी कविता 'कालीय मर्दन' परंपरागत छन्द में लिखी है। वह श्रीकृष्ण संबन्धी है। हर श्लोक में प्रारंभिक तुक रहती है। कवि ने अपने बालपन में, कविता के प्रारंभ काल में इसका निर्माण किया होगा।

भारत में जिस समय 'क्विट इंडिया' की हलचल शुरू हुई उस समय सुभाष बोस ने भारत के बाहर 'जयहिन्द' का नारा शुरू किया।

'जयहिन्द गीता' नाम की कविता इस विजय के नारे से संबद्ध वीरभावना का प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है। 'कोडुविय ओळिथे कोडु' (देने की इच्छा है तो उत्तम वस्तु दे दो) नाम की कविता यथार्थ स्वतन्त्रता की कवि की जो इच्छा है उसका वर्णन करती है। कवि कहते हैं - 'सौ वर्षों तक गुलामी के नरक में पड़कर यातना सहनेवाले भारत को तुम्हीं ने स्वतन्त्रता प्रदान की। फिर तुम हमें छोड़कर चले गए। समानता एवं भाईचारा नहीं रहा। खाने के लिए खाना नहीं, पहनने के लिए वस्त्र नहीं। मनुष्य की प्यास बुझाने के लिए जो पानी दिया जा रहा है वह नमकीन है।' केशवसुत की 'तुत्तूरी' (तुरही) नाम की मराठी कविता से प्रेरणा लेकर श्री पै ने 'तुतूरी' नाम की कविता लिखी। यह गीत नये जीवन और नई उम्मीद को लेकर हर एक मनुष्य को देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करने का प्रोत्साहन देता है। बन्धन तोड़कर हमें प्रगति के मार्ग से आगे जाना है। पुराने और नये के बीच युद्ध नहीं चलना है। सरल हरिजनों को दुरदुराना नहीं चाहिए। कहीं का भी धर्म श्रेष्ठ या गौण नहीं है। हमें स्वदेशी, खादी, सत्याग्रह आदि में रुचि होनी चाहिए ।

'जगुलिद नक्षत्र' (टूटा हुआ नक्षत्र) नाम की कविता टागोर की कविता का आधार लेकर लिखी गई है। अनन्त नील आकाश पर शोभित एक नक्षत्र गहरे सागर में पड़ गया और शान्त हो गया। सभी नक्षत्र इसे देखकर हँसने लगे। अपना प्रकाश दिखाने की आशा से रहित स्वयं को भूलने की उसने इच्छा की। टूटे हुए नक्षत्र के समान कवि अगाध अन्धकारमय अनन्तता में शान्ति का आनन्द लेने की इच्छा करता है। शब्दों के माधुर्य से, पदों की सरलता से, अर्थ की शक्ति और छन्दों की मनोहारिता से 'मीन्चुळ्ळि' (रामचिरैया) पै की उत्तम कविताओं में एक है। कवि रामचिरैये के बारे में पूछते हैं -

'हे छोटे छोटे रामचिरैया, तुम रंगों का एक चलता बेल लगते हो। तुम्हारी माता इन्द्रधनु है क्या? तुम्हारे नीले, हरे, पीले और लाल रंग की चमक उसकी है न? सदा तरुण रहनेवाली वसुमती की नवरत्नों से बनी नाक की बेसर के समान तुम सदा शोभित रहे हो। तुम उड़ते हो, चमकते हो, गाते हो और डुबकियाँ लगाते हो। तुम्हारे मन में चिन्ता किस बात की?' युवा कविता यहाँ मानो मोहक नाच नाचती हुई दिखाई देती है।

'श्री गोम्मट जिन स्तुति' नाम की कविता श्री गोविन्द पै ने ई. स. १९२८ में लिखी। यह कविता उनकी घरवाली कृष्णाबाई की यादों के लिए समर्पित है। पै की कल्पना शक्ति, प्रफुल्लित प्रतिभा, व्यापक दृष्टि, जैन

तत्वों का गहरा अध्ययन आदि का यह सर्वोत्तम उदाहरण है। भरत एवं बाहुबली की जैनपुराण की कथा इस कविता में संक्षिप्त रूप में वर्णन की गई है। कन्नड़ भाषा में पंडित बनने की इच्छा करनेवाले मनुष्य को पंप, रन्न, जण्ण आदि का सर्वोत्कृष्ट साहित्य पढ़ना पड़ता है और जैन धर्म के प्रमुख तत्वों को पचाना पड़ता है। श्री पै का पांडित्य अनुपम है। इनके बराबर दूसरा कोई नहीं है। जिनदेव के बारे में उन्होंने जो लिखा वह किसी जैन कवि की उत्तम रचना के बराबर रहा है। बुद्ध और ईसा के बारे में भी उनके द्वारा लिखी गई कविताएँ इसी सत्य को प्रकट करती हैं। 'श्री गोम्मट जिन स्तुति' ऊँचे दर्जे की पांडित्यपूर्ण रचना है।

'तुरीय' तमिलनाडु के वैष्णव सन्त, आलवारों से संबन्धित एक कविता है। वर्षा और तूफान का एक दिन। पोय्गय्याळवार, पूयत्ताळवार और पैय्याळवार वर्षा एवं तूफान से अपने को बचाने के लिए किसी घर के आँगन में खड़े रहते हैं। सभी ओर अन्धकार व्याप्त था और वे एक दूसरे को देख न सके। अकस्मात् उनको लगा कि कोई उन्हें धकेल रहा है। योगशक्ति के बल पर उन्हें मालूम हुआ कि वह चौथा(तुरीय) ईश्वर ही है। तुरन्त उन्होंने ईश्वर की स्तुति की। वह ३०० पदों का काव्य, 'तिरुवन्दादि' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भारत-विभाजन के समय नौखाली में जघन्य और भयंकर अत्याचार हुए। निर्दयता के साथ मनुष्यों की मार काट हुई। कुठार भोंकना, तोप से गोलियाँ चलाना, बलात्कार करना, आग लगाना, जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन करना आदि भयंकर पातक किए जाने लगे। इस पर आँखों में आग लेकर ईश्वर ने अपना विरोध दिखाया या न दिखाया हो, प्रकृति को क्रोध आया हो या न आया हो, भारत के लिए उन दिनों जो संकट आए वह किसी भी हालत में भुलाया नहीं जा सकता। 'नौखाली' कविता का प्रमुख विषय यही है। हिरोषिमा के भयंकर संकट संबन्धी एक कविता भी पै ने लिखी। 'लाख भर मनुष्य अणुबम के उस भयानक संकट में पड़कर मर गए। कहा जाता है कि बम विस्फोट के उपरान्त महीनों भर उन मनुष्यों की छायायें देखने को मिलती थीं। ऐसा भी कहा जाता है कि बम विस्फोट में मरे हुए मनुष्यों के हरे भरे जीवित शरीर हवा में हिलते चलते थे। कवि इस परिस्थिति की तुलना घंटी बजने के बाद प्रतिध्वनित होनेवाले शब्दतरंगों से करते हैं।

'तेंकाफ्रिकद हळ्ळि'(दक्षिण आफ्रिका का एक गाँव) ईश्वर के अनुग्रह का वर्णन करनेवाला और एक वर्णनात्मक काव्य है।

'एक युवक ने आकर ईसाई पादरी के घर के द्वार खटखटाए। पादरी बाहर आ गए। युवक ने उनसे कहा कि पासवाले गाँव की एक बुढ़िया मरणासन्न है। उनका अंतिम संस्कार करने की उन्होंने माँग की। उसके कहे अनुसार पादरी घोड़े पर चढ़कर उस गाँव को चले और उन्होंने वहाँ जाकर एक बुढ़िया का अन्तिम संस्कार किया। बुढ़िया को आश्चर्य हुआ। उसने पादरी से कहा कि वह घर में अकेली रहती है। उसने पूछा कि पादरी को खबर किसने की? दिवार पर लटके हुए चित्र की ओर संकेत करते हुए पादरी ने कहा कि उसीने उन्हें खबर कर दी। बुढ़िया ने कहा - 'वह मेरा बेटा है। पिछले साल वह मर गया।'

'पश्चात्ताप' और एक वर्णनात्मक कविता है।

एक बार कवि ने धुएँ के रंग का एक छोटा सा साँप देखा। तुरन्त उन्होंने उस पर पत्थर फेंके। वह मर गया। उन्होंने उसे जलाया। साँप ने उन्हें काटा नहीं, फूत्कार नहीं किया, मैं नहीं जानता था कि वह विषैला है या नहीं। उसे जीवित मार दिया इसके बारे में कवि को दुःख था। कविता के अन्त में वे साँप को अनुग्रह देने और अपने को माफ करने के लिए ईश्वर से याचना करते हैं। मन की शान्ति के लिए भी वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

श्री बेळूर चेन्नकेश्वर मन्दिर के ग्रानाइट पत्थर से बने हुए मनोहर गोपुर पर असंख्य मनमोहक चित्रों का नक्काशी काम मिलता है। गोपुर के एक भाग में एक बन्दर द्वारा किसी स्त्री की साड़ी को पकड़कर खींचने का एक सुन्दर चित्र मिलता है। 'बेळूरिना मंगा' (बेळूर का बन्दर) नाम की कविता इसी नक्काशी काम को आधार बनाकर लिखी गई कविता है।

'तुम्हें फल देने से इनकार किया, इसलिए तुम उसे पीड़ित करते हो क्या? वे फल उसने किसके लिए रख दिये हैं? उसने उन्हें किसको देने का निश्चय कर लिया है? कितने उत्साह के साथ लोग उन चित्रों को देखते हैं। कदाचित् हो सकता है कि दूसरों को देने से इनकार करते हुए वह और किसी की राह देख रही हो। इसी खींचतान में कविता आगे बढ़ती है। अन्त में कवि बन्दर को उपदेश देते हैं –'वहाँ उसी स्थिति में खड़े हो जाओ, भयभीत मत हो।'

'बेलूरिना चेळु' (बेलूर का बिच्छू) चौदह पंक्तियों का सॉनेट है। बेलूर का दूसरा नक्काशी काम एक सुन्दर स्त्री का है। वह स्त्री अपनी साड़ी पर लगे हुए बिच्छू को पटकती हुई दूर करने का प्रयत्न करती है। कवि उससे पूछते हैं –'बिच्छू को पटक देने का पहला प्रयत्न जब तुमने किया, तब से लेकर आज तक तुम बढ़ी नहीं। तुम्हारी अवस्था में कोई

फरक नहीं आया। अनेक लोग उत्सुक होकर एकाग्र दृष्टि से तुम्हारी ओर देखते हैं। तो भी तुमने अब तक अपनी नग्नता को दूर करने का प्रयत्न नहीं किया। तुम्हें लज्जा नहीं आती क्या? इस क्षण में हमने निश्चय किया कि हम तुम्हारी ओर नहीं देखेंगे। दूसरे क्षण में तुम्हें देखने की इच्छा होती है। हम तुमसे बातें करते हैं तो भी तुम हमसे कुछ नहीं बोलतीं। साड़ी पर के बिच्छू को पटकते वक्त हमारी ओर पीठ क्यों नहीं करती? तुम इतनी अधिक परेशान हो? संसार के बारे में तुम सब कुछ भूल गई हो? क्या तुम हैरान हो? जो भी हो तुम उसी अवस्था में रहो । लोग अपनी प्यासी आखों से हमेशा तुम्हारे सौन्दर्य का आनन्द लूटते रहें।

'हे ईश्वर तुम हिन्दुओं को भाग्य का अनुग्रह कब देंगे?' नाम की कविता में कवि ईश्वर से पूछते हैं –' जीवन के पहले अरुणोदय से लेकर तुम हमारे भारत देश की रक्षा करते आये हो। लेकिन आज तुमने हमें गुलामीपन में क्यों धकेल दिया है? पिछले सौ वर्षों से हम इस दासता में पड़े हुए हैं। आज तक हम स्वतन्त्र नहीं हुए। हम भी मनुष्य हैं। हमें भी मनुष्य बनकर जीना है न? हमारे भाग्य के द्वार तुम कब खोलोगे? हमारा रोना तुम सुनते हो या नहीं? सुनो या न सुनो हम प्रार्थना करते ही रहेंगे। हे ईश्वर तुम हिन्दुओं को भाग्य का अनुग्रह कब देंगे?'

'क्विट इंडिया' नाम कि कविता भारत के स्वतन्त्रता संग्राम की पवित्र गायत्री है। कविता के विचार नीचे दिए गए हैं।

'आज तक तुमने हम पर शासन चलाया। अब खुशी खुशी बाहर जाओ। हम तुम्हारी सभी पुरानी गलतियों के भूलने के लिए तैयार हैं। आगे यहाँ पर तुम्हें कुछ करना नहीं है। हे गान्धीजी, तुम्हीं ने 'क्विट इंडिया' के शब्द भारत के कलेजे पर बिजली के अक्षरों में सजाए।' इस प्रकार कवि ने अपनी कविता में उस काल का देश का नारा ऊँचे स्वर से गाया। ई. स. १९२० में असहकारिता आन्दोलन के समय से लेकर श्री पै प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में भारत की स्वतन्त्रता के लिए संग्राम करते थे। इसलिए इस बात में सन्देह नहीं कि 'क्विट इंडिया' के नारे ने उनकी उम्मीद बढ़ाने का काम किया। जैसे भी हो भारत स्वतन्त्र हुआ। उसके उपरान्त देश की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। आय कम हुई, व्यय बढ़ गया। उस समय गोवा स्वतन्त्र भारत का भाग न बना। कश्मीर की स्थिति आलेचनात्मक रही। हमारी कीर्ति बाहर से प्रज्ज्वलित एवं प्रकाशित रही थी। भीतर से वह गरम एवं जलते हुए तुषाराग्नि जैसी थी। सर्वत्र अशान्ति

फैली थी। कवि यह सोचकर भयभीत होते हैं कि हमारे देश पर और भी दुर्भाग्य आ जाएगा। 'मनेवरतें'(घर का कारोबार) नाम की कविता का यही सारांश रहा। ईश्वर ने जो दिया उस घर की रक्षा करने और उसका कारोबार सँभालने में सहायता देने के लिए कवि ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

बंगाल के अकाल के कारण २५,००,००० और रोग के कारण १०,००,००० लोग मर गए। यह खबर जिस समय कवि ने सुनी उसी समय उन्होंने एक कविता लिखी जिसका नाम था - '३५,००,०००'. यह शोकगीत इस प्रकार है। हे ईश्वर ! हमारे बंगाल में कितने गरीब लोग मर गए। हे ईश्वर ! दूसरों के उद्धत पापों के कारण तुम गरीबों को दंड क्यों देते हो? जिस गुलामीपन को हम रोज़ सह रहे हें वह क्या पर्याप्त नहीं है कि तुमने हमको भोगने के लिए यह दुःख दे दिया है? हमारा जन्म इसीलिए हुआ है क्या? हमारे पास खाना है, फिर भी हम भूखे हैं। हम जी रहे हैं, फिर भी हमारे भाग्य में मरण ही लिखा है। दूसरा विश्वमहायुद्ध हमारा नहीं है। गान्धीजी और हमारे दूसरे नेताओं ने स्पष्ट रूप में कहा है कि वह राजेशाही का है। यही नहीं ब्रिटन देश ने भारत को भी संग्राम में घसीट लिया है। यह अकाल उसी युद्ध का परिणाम है और हमारे सौ लाख लोग इसमें मर गए हैं।

'राहु वण्णु थोळा जिसि केतु वण्णु तन्टे' (तुम्हीं ने राहु को भगाया और केतु को अन्दर प्रवेश दिया।) नाम की कविता में कवि हमारे देश की स्थिति पर शोक प्रकट करते हैं।

'हमने जिस स्वतन्त्रता को खोया तुमने वह हमें प्रदान की। लेकिन क्या तुम हमारी आज की स्थिति के बारे में सुनना चाहते हो? हमने राहु को भगाया और केतु को अन्दर प्रवेश दिया। कश्मीर और गोवा आज हमारे हाथ में नहीं हैं। हमारी माता का शरीर टुकड़े कर दिया गया। सुख और शान्ति कहीं भी नहीं है। कर का भार कष्टदायक बोझ बन गया है। व्यय तो ज़्यादा है, कर्ज का बोझ अलग। हमारे देश में स्वर्णयुग का अरुणोदय होगा, यह सोचकर हम आनन्दित हुए। लेकिन हुआ क्या? तुमने राहु को भगाकर केतु को अन्दर प्रवेश दिया।'

'श्री मातृभूमीश्वराष्टक' नाम की कविता आठ पदों की है। यह हमारी मातृभूमि के स्वामी से संबन्धित है। यह कविता अक्षरगणवृत्त में पुरानी कन्नड़ शैली में लिखी गई है। कवि का उत्कट देशप्रेम इस कविता में प्रतिबिंबित हुआ है। हमारी मातृभूमि के स्वामी से कवि इन शब्दों में विनती करते हैं –'मुझे कीर्ति नहीं चाहिए। दूसरों पर शासन चलाने की इच्छा भी

नहीं हैं। मैं संपत्ति एवं लंबी आयु भी नहीं माँगता. मोक्ष भी मुझे नहीं चाहिए। मेरी मातृभूमि के स्वामी, आनेवाले जन्म में इसी देश में हिन्दू बनकर मुझे जन्म लेने का अनुग्रह दे दो। तुमने स्वतन्त्रता दी है और मैं अनुगृहीत हुआ। लेकिन एकता और शान्ति के बिना स्वतन्त्रता किस काम की? सोच लीजिए कि कोई मनुष्य बहुत समय तक घूमते हुए आ रहा है। वह थक जाता है। उसको गुड़ का टुकड़ा देने से काम चलेगा क्या? पानी देना है न? हमारे देश को शान्ति एवं एकता का विशेष अनुग्रह दे दो।'

'यशोदेय जोगुळ' (यशोदा का पालना गीत) श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ा को लेकर लिखी गई कविता है। श्रीकृष्ण को पालने में डालकर यशोदा कृष्ण के अवतार से संबन्धित पालने के गीत एक के बाद एक करके गाती रहती है। गाते वक्त श्रीराम के युद्धक्षेत्र में रावण के सामने आने का सन्दर्भ आता है। श्रीकृष्ण तुरन्त पालने से उठते हैं, क्रोध में आकर आँखें खोलते हैं और चीख उठते हैं – ' वह पापी कहाँ गया? मैं तुरन्त उसे जीवित ही मार दूँगा। भाई लक्ष्मण, मेरा धनुष एवं बाण तैयार करो।' इस प्रकार दिव्य बच्चे के रूप में श्रीकृष्ण अपना पिछला जन्म याद करते हैं। यह घटना दूसरे संस्कृत ग्रन्थों में भी वर्णित है। कन्नड़ काव्य 'जगन्नाथ विजय' में भी इसका वर्णन है। श्री पै ने यह कविता हिन्दी के महान कवि सन्त सूरदास को प्रणाम करते हुए लिखी है। अन्य भारतीय भाषाओं में भी दूसरे कवियों ने इस मनोहर घटना का वर्णन किया है।

'भस्मासुर' (आग का राक्षस) इस संग्रह की एक कविता है। कविता में इस प्रकार कहा गया है –

'वृकासुर घोर तपस्या करता है और शिव का अनुग्रह पाता है। 'वृकासुर जिसके सिर पर हाथ रखता है वह जलकर भस्म हो जाय' इसी अनुग्रह को पाने के लिए वह तपस्या करता है। शिव तुरन्त ही उसे वर भी देते हैं। वर की परीक्षा करने के लिए वह अपना हाथ शिवजी के सर पर रखने का आग्रह करता है। उसे लगता है कि अपने को वर दिए हुए शिव को जीते जी मार डालना उचित नहीं है। उसी समय शिव वेष बदलकर आते हैं और वृकासुर से कहते हैं कि शिव ने उन्हें धोखा दिया है। वर की सत्यता की परीक्षा के लिए अपना हाथ अपने ही सर पर रखने का आदेश उसे देते हैं। भस्मासुर वैसे ही करता है और जलकर भस्म हो जाता है।

'हगलु कनसु' (दिवास्वप्न) नीचे दी हुई कथा का चित्रण करनेवाली एक कविता है।

'दिन का अन्तिम याम। मूसलधार वर्षा हुई और समुद्र पानी से

भर गया। समुद्र में शिला पर कोई खड़ा है। पीपल के पत्ते पर तैरता हुआ एक शरीर उनके पास आया। खड़ी हुई आकृति ने बच्चे को देख लिया। इतना स्पष्ट हो गया कि शिला पर खड़े रहनेवाले महर्षी अरविन्द थे। अरविन्द ने बच्चे को हाथ में लिया और तुरन्त उसे लेकर वे अदृश्य हो गये।' हमारे पुराने विचारों के अनुसार पीपल के पत्ते पर खेलनेवाला बच्चा ईश्वर का ही रूप दिखाता है। इस कविता में यह स्पष्ट होता है कि श्री अरविन्द एक भक्तिवंत मनुष्य थे। इस पंक्ति में अरविन्द के प्रति कवि का आदर व्यक्त होता है।

'राहु वण्णु थोळा जिसि केतु वण्णु तन्टे' का भाव 'हन्नोन्दनेय वर्षदा होस्तिलळ्ळि' जैसी कविता में व्यक्त होता है। इस कविता के ज़रिए यह दुःखसत्य सामने आ जाता है कि हम स्वतन्त्र होकर भी सन्तुष्ट नहीं हैं। अन्त में कवि हमारी गलती ठीक करने के लिए और भारत की रक्षा करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

'भिक्षुवू पक्षियू' (भिक्षु और पक्षी) नाम की कविता में वर्णित कथा इस प्रकार है –

तिष्य बुद्ध का शिष्य है। वह कोसल देश की श्रावस्ती में भिक्षा लेकर जीवन बिताता था। हर दिन वह किसी सुनार के घर पर भिक्षा लेने जाता था। हमेशा के जैसे भिक्षु एक दिन उसके घर भिक्षा लेने गया। उसी समय कोसल राजा ने छेद करवाने के लिए एक रत्न देकर अपने नौकर को वहाँ भेजा। दोनों एक ही समय पर वहाँ पहुँच गए। सुनार मांस काट रहा था। उसने रत्न उसी हाथ में ले लिया और नीचे रख दिया। छेद करने की औजार ले आने के लिए वह अन्दर चला गया। सुनार के घर के क्रौंच पक्षी खून में आवृत उस रत्न को मांस समझकर निगल गया। सुनार जब बाहर आया तो वहाँ रत्न नहीं था। उसे लगा कि भिक्षु ने उसकी चोरी की। वह क्रोध से तिलमिला उठा और उसने भिक्षु को सिर पैर बाँधकर लाठी से मारना शुरू किया। सिर से खून बहने लगा। क्रौंच पक्षी खून चूसने के लिए उड़कर आ गया। सिर के घाव से निकलनेवाला खून वह चूस रहा था, फिर भी भिक्षु शान्त एवं चुप खड़े थे। क्रुद्ध सुनार उसे हटाने के लिए लाठी से मारता था। वह मर गया। भिक्षु ने पूछा कि क्या वह मर गया? क्रोध में आकर सुनार ने भिक्षु को भी जीते जी मार डालने की धमकी दी। भिक्षु ने कहा –'साहब, उस पक्षी ने मांस का टुकडा समझकर रत्न को निगल लिया। वह जीवित रहता तो मैं इस रहस्य को नहीं खोलता।' सुनार ने

पक्षी का पेट फाड़कर रत्न बाहर निकाला और अपने पाप का प्रायश्चित्त करने लगा। दुःख के अश्रु गिराकर उसने दोनों हाथों से अपनी छाती पीटी और भिक्षु को मुक्त किया। सुनार ने भिक्षु के पैरों पर पड़कर साष्टांग नमस्कार किया और उसके पैरों की धूल अपने माथे पर लगाई। उसने कहा - 'हे भदन्त ! मैंने अनजान में जो पाप किया उसके लिए क्षमा करें। उस पाप के कारण मुझे कितना दण्ड भोगना पड़ेगा? तुम्हारी छाया के समान मैं तुम्हारे पीछे पीछे आऊँगा।

इस प्रकार पै ने बुद्ध से संबन्धित अनेक कहानियाँ और लेख लिखे। 'मातंगी' बुद्ध की कथा पर आधारित एक वर्णनात्मक कविता है। कविता का प्रतिपाद्य नीचे दिया गया है।

बुद्ध के प्यारे शिष्य आनन्द किसी गाँव से भिक्षा लेकर पासवाले दूसरे गाँव में जा रहे थे। वे हरिजनों की बस्ती से होकर जा रहे थे। उन्हें प्यास लगी। एक हरिजन युवती कुएँ से पानी निकाल रही थी। उन्होंने उससे पूछा - 'बहिन ! इन हाथों में थोड़ा पानी उँडेल दो।' उसने कहा - 'आप श्रेष्ठ जाति के हैं । मैं जातिविहीन हूँ। मेरे हाथ से आप पानी पियेंगे तो आप अपवित्र हो जायेंगे।' भिक्षु ने कहा कि जाति के संबन्ध में वैसी भावना आधार रहित है। उसका दिया हुआ पानी पीकर वे चले गये। जाने के पहले बुद्ध के संबन्ध में उन्होंने बहुत कुछ कहा और कहा कि वे बुद्ध के शिष्य हैं। आनन्द की ओर देखती हुई उस युवती को लगा कि वह कोई सपना देख रही है। कुटिया में लौटने में जो देर हुई उसके बारे में माँ ने पूछा तो उसने आनन्द को पानी पिलाने का वृत्तान्त और बुद्ध के संबन्ध में उनका कथन माँ को कह सुनाया। बुद्ध से मिलने की इच्छा भी उसने माँ के सामने व्यक्त की। जब माँ ने अनुमति दे दी तब वह बुद्ध के पास चली गई और उनके सामने उसने साष्टांग नमस्कार किया। बुद्ध उसके व्यवहार से सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उसे धर्मोपदेश दिया। उन उपदेशों में विश्वास करते हुए वह एक भिक्षुणी बन गई।

'वनमहोत्सव' नाम की कविता में श्री पै ने वन के उपयोग एवं महत्व के संबन्ध में बताया है। वे कहते हैं कि वन वेदों और उपनिषदों का पालना है । सामगान करनेवाले वैष्णव धर्म एवं संस्कृति का यह ननिहाल है। सभी लोगों को चाहिए कि वे वृक्ष लगाएँ । ये वृक्ष उद्योग से संबन्धित, वर्षा से संबन्धित एवं संसार में थंड उत्पन्न करनेवाले होने चाहिए।

'श्वपचननु जातेगो लादे दिवकेरवेनेन्तु'(मेरे साथ जातिविहीन को लिए बिना मैं स्वर्ग तक कैसे जाऊँगा?) नाम की चौदह पंक्तियों की

कविता हरिश्चन्द्र के जीवन की असाधारण घटनाओं से संबन्धित है।

यज्ञ करने के बाद हरिश्चन्द्र ने समस्त राज्य विश्वामित्र को दिया। फिर भी वे कर्ज से मुक्त नहीं हुए। वे काशी चले गये और उन्होंने पत्नी और बच्चों को भी बेच दिया। अन्त में उन्होंने स्वयं अपने को भी जातिविहीन व्यक्ति के हाथों बेच दिया। उसका सेवक बनकर हरिश्चन्द्र श्मशान की रक्षा करते थे। सत्य के मार्ग पर चलने के लिए उन्होंने ये सारे कष्ट शान्त होकर सह लिए। उनकी पत्नी चन्द्रमती और पुत्र एक ब्राह्मण के घर सेवकाई करते थे। उनका पुत्र रोहिताश्व लकड़ी काटने के लिए वन में चला गया। वहाँ साँप के काटने से वह मर गया। इस अवस्था में चन्द्रमती स्वतन्त्र नहीं थी। ब्राह्मण के घर का काम खतम करके उनकी अनुमति से अपने पुत्र का शव लेकर वह श्मशान में पहुँची। वृक्ष के नीचे पड़ी हुई सूखी डालियाँ इकट्ठी करके उसने चिता तैयार की। चन्द्रमती ने अपने पुत्र को अन्तिम चुंबन किया। वह ज़ोर ज़ोर से रोने लगी। कर्तव्यनिरत हरिश्चन्द्र ने यह रोदन सुन लिया। तुरन्त गर्जन करते हुए कहने लगे - ' शव को लेकर चोर के जैसे कौन आया है? शुल्क दिये बिना किसी को भी जलाने की अनुमति नहीं मिलेगी। चिता को आग देने से सावधान रहें।' चन्द्रमती ने विनती की - 'शरीर पर पहने हुए इन कपड़ों के अलावा मेरे पास देने के लिए कुछ भी नहीं है।' हरिश्चन्द्र ने कहा - 'शव की ओर से दिये जानेवाले तण्डुलों से मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ। लेकिन शवदाह के लिए दिया जानेवाला वस्त्र देना ही पड़ेगा। मैं सत्य एवं धर्म से नहीं हटूँगा। मेरे स्वामी को धोखा नहीं दूँगा।' चन्द्रमती ने अपनी साड़ी फाड़कर टुकड़े किए और हरिश्चन्द्र को दे दिया। स्वर्ग के देवों ने हरिश्चन्द्र के सत्यपालन के कट्टर व्रत को उम्मीद एवं आश्चर्य के साथ देखा। वे अपने अपने रथ पर चढ़कर उनके पास पहुँचे और कहने लगे - 'हे हरिश्चन्द्र, पाप से भरी हुई यह पृथ्वी तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम ऋषितुल्य धार्मिकता से युक्त मनुष्य हो। हमारे साथ स्वर्ग पर आ जाओ।' सत्यधर्मी हरिश्चन्द्र ने चीत्कार के साथ कहा - 'जातिविहीन मेरे स्वामी को छोड़कर मैं अकेला स्वर्ग पर कैसे आ सकूँगा?'

यों तो हरिश्चन्द्र की कथा सबको मालूम है । कवि ने चौदह पंक्तियों के सॉनेट में हृदयस्पर्शी ढंग से इसका वर्णन किया है। श्री पै ने यह कविता उनके ७७ वें वर्ष की अवस्था में लिखी। उसका प्रकाशन 'नवयुग' नामक कन्नड़ भाषा की पत्रिका में हुआ। पत्रिका में कविता लिखने की

तारीख दी है। इस ढ़लती उम्र में महान साहित्यिक कुशलता, तेज़ बुद्धिमत्ता और विचारों की गहराई को देखते हुए इस लेखक ने उनकी प्रशंसा करते हुए एक पत्र लिखा। पै ने तुरन्त उसका उत्तर देते हुए २३, अगस्त १९५९ में अपनी वायलेट स्याही में एक पत्र लिखा। पत्र में उन्होंने कहा - 'केशीराजा के 'शब्दमणिदर्पण' का १२९ वें १३०-वें सूत्र का 'नित्तुरामंजय्या' की व्याख्या में द्वितीया विभक्ति के उदाहरण के रूप में दिया हुआ वाक्य 'कविगे कविमुनिवम्'(एक कवि दूसरे कवि से ईर्ष्या करता है) को तुमने असत्य सिद्ध किया । ईश्वर तुम्हारा भला करें। तुम्हें लंबी आयु एवं आरोग्य प्रदान करें और तुम्हारे काव्य की सदा रक्षा करें ....'

सधन्यवाद,

गोविन्द पै

श्री पै पत्र ऐसे ही लिखा करते थे। पत्र लेखन में उनकी विद्वत्ता, प्रेम तथा विशेष रुचि इसके उत्तम उदाहरण हैं।

'वेळे'(समय) नाम की कविता 'अच्छा समय बहुत कम ही आता है' वाली कहावत का उत्तर कहा जा सकता है।

'प्रतिदिन अवसर तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हें बुलाते रहते हैं। उठो, संग्राम करो और विजय प्राप्त करो। कल के बारे में सोचकर रोओ मत। कीचड़ में फँसते हुए भी जो कोई वहाँ से निकलने का प्रयत्न करता है उसे मैं शक्ति प्रदान करता हूँ। सूर्योदय से हर एक मनुष्य दूसरा जन्म लेता है। यही प्रकृति की व्यवस्था है। अन्तिम बुलावे के आने तक मैं तुम्हें विजय प्राप्त करने के लिए सहायता देता हूँ।' ये वाक्य प्रयत्न करनेवाले को जीवन में आशा रखने का महत्वपूर्ण आश्वासन प्रदान करते हैं।

'शूद्रर्षि कवश' नाम की सुन्दर कविता ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण और कौशीतकी ब्राह्मण में दी गई एक कथा का वर्णन करती है।

कवश लूश का बेटा था। उसकी माता चाकरी करती थी। ऋग्वेद में और ऐतरेय ब्राह्मण में उसका नाम अयलूष है। गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज और वसिष्ठ जैसे महान तपस्वियों ने वेदों के मन्त्रों को समझकर ऋग्वेद का मध्यमाष्टक तैयार किया । इसी कारण से ये तपस्वी मध्यम नाम से प्रसिद्ध हुए। एक बार जब वे सरस्वती नदी के तट पर सोमयाग कर रहे थे तब कवश वहीं पहुँच गये और उनके

बीच बैठ गए। उन्हें देखकर वे क्रोध से तिलमिला उठे और उन्होंने उन्हें जुआरी और कमीना कहकर गालियाँ दीं। इसके बाद उन्होंने उन्हें नदीतट से दूर एक रेगिस्तान में भगाया। वहाँ पर असह्य प्यास के कारण उन्होंने आपोनापत्रीय सूक्त की रचना की और बड़ी उम्मीद के साथ प्रार्थना की। सरस्वती नदी बहती हुई उनके पास आई और उसने उनकी प्यास बुझाई। यह खबर तपस्वियों के लिए आश्चर्यजनक रही और कवश के पास जाकर उन्होंने अपने किए पर पश्चात्ताप व्यक्त किया। वे कवश के पास आए और क्षमायाचना की और कवश को वे अपने साथ याग के स्थान पर ले गए। फिर उनके हाथों यथाविधि याग संपन्न कराया।

जातिप्रथा समस्त मनुष्य जाति के लिए एक कलंक है। वह भारतीय संस्कृति का एक अविभाज्य घटक नहीं है तथापि उच्च कुल में जन्मे लोग उनके उच्च दर्जे के बड़प्पन को दिखाते रहे। इस बड़प्पन का शक्तियुक्त विरोध किया गया और मनुष्य के गुण जन्म से नहीं कर्म से होते हैं वाला हितकारी तथ्य स्थापित हुआ। इस प्रकार योग्य एवं गुणवान मनुष्य का आदर किया जाने लगा। पुराने समय से लेकर वेदों के काल से आज तक यह बात देखी गई। कवि ने अपनी कविता में इस बात को व्यक्त किया है।

'सकु' (बस है) एक मनोहर प्रेमगीत है।

प्रेमदेवते, पास आ जाओ। मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ. मुझे कबूल करो। प्रेम भरी आँखों को लेकर तुम आ जाओ। जिस प्रकार चान्दनी एवं चन्द्रमा, दृष्टि एवं आँखें हैं, उसी प्रकार मैं तुमसे अलग नहीं होता तो मुझे पूरा सन्तोष है। यह अद्वितीयता दो द्वारों की एक सिटकनी के समान और दो स्तनों के एक दूध के समान, एक कलेजे के दो पंखों के समान, एक अर्द्धचन्द्र के दो पक्षों के समान है तो मुझे बड़ा आनन्द है। जब मैं तुम्हारे हृदय के प्रेम की मूल्यवान संपत्ति को लूटने का प्रयत्न करता हूँ तब तुम मुझे अपने वशीभूत करनेवाले बाहुओं के प्रेमालिंगन में रखते हो तो मुझे बहुत सन्तोष है। जीवन के अन्त में मरण हम दोनों को एक ही समय उसकी अन्तिम शान्ति के आवास में ले जाता है तो मुझे पूरा सन्तोष है। एक बार हम दोनों सोने के कमरे में एक ही समय गहन निद्रा की विश्रान्ति में आँखें मूँद लेते हैं तो मुझे बड़ा आनन्द है। फिर एक बार इस पृथ्वी पर आते समय हमारे प्राण एक नासिका के दो श्वासों के समान गतिशील रहते हैं तो मुझे पूरा सन्तोष है। जिस समय हमारा सांसारिक दुःख खतम हो जाता है और गंगा और जमुना के जैसे हम एक होकर प्रेम के सागर में

विलीन हो जाते हैं तो मुझे पूरा सन्तोष है।

'वासवदत्ते' नाम के वर्णनात्मक काव्य का सारांश नीचे दिया गया है।

मथुरा नगरी में वासवदत्ता नाम की एक वारांगना रहती थी। सौन्दर्य के लिए वह अद्वितीय रही थी। वह बड़े उत्साह एवं उमंग से रहती थी और उसके पास आनेवाले हर एक मनुष्य से वह सौ वराह वसूल करती थी। एक दिन उसने बुद्ध के शिष्य, उपगुप्त को देख लिया। उसके प्रति उसका प्रेम जाग उठा। दूतों को भेजकर उसने उपगुप्त को उसके घर पर आमंत्रित किया। उपगुप्त ने उत्तर दिया कि उसके घर जाने का समय अभी नहीं आया। एक संपन्न व्यक्ति वासवदत्ता से प्रेम करने लगा और उसने व्यक्तिगत रूप से उसे अपनी रखैल बनाया। थोड़े समय के बाद और एक संपन्न व्यक्ति मथुरापुरी में आ पहुँचा। वासवदत्ता को लगा कि वह अपने जार से भी बढ़कर संपन्न है। वह भी वासवदत्ता के सौन्दर्य पर मोहित हुआ। उसने शक्ति के अनुसार उसे प्रेम दिया। एक दूसरे की जानकारी के बिना वह तरह तरह के खेल खेलने लगी। लेकिन यह अधिक समय तक नहीं रहा। जहाँ दही है वहाँ मट्ठे से क्या लाभ? उसने पहले प्रेमी को उखाड़ फेंका। खबर चारों ओर फैल गई। लोग कहानियाँ बुनने लगे। विषय प्रकाश में आ गया। राजा ने वासवदत्ता को कठोर दंड देने का हुक्म दिया - 'अपना यौवन, सौन्दर्य एवं संपत्ति के कारण वह खूब घमंड करने लगी और अपना विवेक ही खो बैठी। उसने यह घोर हत्या की। इसलिए उसका सौन्दर्य नष्ट किया जाना चाहिए। उसे अपंग बनाना चाहिए। उसके कान, नाक, हाथ और पैर काटे जाने चाहिए और उसका शरीर श्मशान में फेंक देना चाहिए। राजा के सैनिकों ने इस आदेश का अक्षरशः पालन किया। मथुरा के सौन्दर्य की राणी श्मशान में ऐसे दुःख में पड़ गई कि उसका वर्णन करना असंभव है। चलने के लिए उसके पैर नहीं थे। पकड़ने के लिए हाथ नहीं थे। उसका शरीर टुकड़े टुकड़े किया गया। फिर भी उसके प्राण नहीं चले गए। उसके सेवक दुःखों में पड़ी अपनी मालकिन से मिलने आए। वे उसके व्रणों पर झुंड़ों में बैठकर मौज करनेवाले मक्खियों को भगाने लगे। दिन के समय वे कौओं को भगाते थे और रात के समय सियारों को। इसके अलावा कीटों एवं मक्खियों के कष्ट कुछ कम नहीं थे। इस प्रकार आठ दिन बीत गए। मनोहर एवं आकर्षक शरीर सड़ने एवं दुर्गन्ध फैलाने लगा। लेकिन अब भी उस शरीर में प्राण विद्यमान थे। आधी रात का समय था। कोई व्यक्ति उस जगह पर धीरे धीरे चलता हुआ आ रहा था। उसे भगिनी कहकर संबोधित करनेवाला कोई शब्द सुनने को

मिला। वासवदत्ता ने उसे पहचाना। वह उपगुप्त था। उसने उनसे कहा - 'बहुत लोग मेरा भोग करते हुए मुझे बाहर फेंककर चले गए। तुम अब किसलिए आये हो? मुझे जब भूख रही थी उस समय तुमने मुझे आवश्यक खाना नहीं दिया। अब मुझे भूख नहीं है। अब खाना मिल भी जाय तो किसलिए? उपगुप्त ने कहा - 'मैंने कहा था कि उचित समय पर आ जाऊँगा। आज समय आ गया है और मैं पहुँच गया।' करुणा का कितना सुन्दर और हृदयावर्जक चित्र !

यह कथा बौद्ध साहित्य से ली गई है। मलयालम भाषा के महान कवि कुमारनाशान ने इसी कथा के आधार पर 'करुणा' नाम की एक मनोहर कविता लिखी है। 'चंडालभिक्षुकी' उनकी और एक कविता है जिसे उन्होंने श्री पै की 'मातंगी' कविता के मूल को आधार बना कर लिखा है। दोनों समकालीन कवि थे और दोनों समान कथाओं को आधार बनाकर वर्णनात्मक काव्य लिखते थे। यह परस्पर संबद्ध नहीं, केवल संयोग से ही हुआ है। यह इसी बात का प्रमाण है कि हमारे देश के कवि बौद्ध, जैन और ईसाई धर्मों से संबन्धित कथाओं को आधार बनाकर उत्कृष्ट कविताएँ लिखते आए हैं। श्री पै के साथ ही मलयालम भाषा में राष्ट्रकवि की पदवी प्राप्त श्री वळ्ळत्तोळ नारायण मेनोन मलयालम के दूसरे महान कवि हैं। इस प्रसंग में यह स्मरण करने योग्य है कि श्री पै ने 'गोलगोथा' महाकाव्य लिखा और वळ्ळत्तोळ ने 'मग्दलन मरियम' नाम का मनोहर काव्य लिखा। यह इस बात का सच्चा प्रमाण है कि महान लोग साधारणतः समान विचारों के रहते हैं ।

'हळ्ळिय हुडुगी' (गाँव की लड़की) तळिक्कोट्टे संग्राम के बाद जो घटना घटी उसके वृत्तान्त को आधार बनाकर लिखी हुई कविता है।

सूर्योदय के पहले किसी गाँव पर पड़ोसी गाँव के बदमाशों ने आक्रमण किया। उन्होंने घरों एवं मन्दिरों को तोड़ना शुरू किया। स्त्रियों से इन्होंने छेड़ छाड़ की और उन्हें जीवित ही जलाया। इस विजय पर वे सन्तुष्ट हुए। गाँव के मुखिया ने घंटी बजाने का आदेश दिया। सभी गाँववालों को इसकी सूचना दी गई।

गाँव के लोगों ने मुँह तक पहुँचा हुआ कौर त्याग दिया और हाथ में जो आया उसी अस्त्र को लेकर शत्रु से लड़ाई करने चल पड़े। अपने एक सिर के स्थान पर दुश्मनों के ग्यारह सिर उन्होंने काट दिये। दिन के संग्राम के बाद जब वे घर लौटते थे तब एक लड़की अपने घर में बैठकर राह चलनेवाले लोगों को देख रही थी। उसको किसी व्यक्ति से कुछ खबर पूछनी

थी। फिर भी वह अपना प्रश्न नहीं पूछती थी। सब लोग चले गए फिर भी वह आँखों से आँसू बहाती हुई वहाँ बैठ गई। विजयनगर का नाश जिन्होंने किया उन लोगों की पताका हवा में फहराती हुई उसने देख ली। पैदल चलनेवाले कई व्यक्तियों ने उसे देखा। उसके पति अपने शरीर की रक्षा करने के लिए संग्रामक्षेत्र से भाग गए और अपने दुश्मन को गाँव की स्वतन्त्रता बेच दी । ऐसा कहकर वे उस पर व्यंग्य कसने लगे।

यह उसने सुन लिया। यकायक उसने चीख मारी। वह अपने को ही भूल गई। उसे लगा कि उस पर मार पड़ी है। भूतकाल के जीवन का चित्र उसके सामने स्पष्ट हुआ। वह चुपचाप रोने लगी। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। उसे लगा कि वह घोर सपना देखकर नींद से जाग उठी हो। वह उठ खड़ी हुई । घर के अन्दर गई। दराँती हाथ में ली और कपड़ों के अन्दर कमर से उसे बाँध दिया। वह बाहर आई। तुलसी को कुंकुम लगाया, दिया जलाया और तुलसी की प्रदक्षिणा की । अपनी गाय को और बछड़े को उसने प्यार दिया। उन्हें घास और पानी दिया । फिर धनुष से जिस प्रकार तीर छोड़ा जाता है उसी प्रकार संग्रामक्षेत्र की ओर चल पड़ी। उसकी माँ ने उसे आदेश दिया - 'इतना अविवेक मत दिखाओ। पुत्रों और नातियों को जन्म देकर घर एवं परिवार के भले के लिए कुछ करो।' फण फैलाई हुई नागिन के समान क्रोध में आकर वह चीख उठी – 'क्या? पुत्र और नाती? नाक जिसका नहीं है वह नथ कैसे पहनेगा? मैंने एक डरपोक से शादी कर ली। वही बहुत है। उसके लिए मैं पुत्रों को जन्म क्यों दूँ? मैं यह दराँती लेकर तैयार हुई हूँ। संग्राम किए बगैर मैं नहीं लौटूँगी। मेरे पति ने जो विश्वासघात किया उसे मैं खून से धोऊँगी। हे धर्म, तुम मेरे पिता हो। हे पृथ्वी, तुम मेरी माता हो। तुम्हारा ऋण मैं चुकाऊँगी। मैं मरूँगी, नहीं तो मारूँगी।' इस प्रकार कहती हुई वह संग्रामक्षेत्र की ओर दौड़ पड़ी।

राह में उसने एक घर से किसी मनुष्य का दीन रोदन सुना। कोई पुरुष किसी स्त्री के साथ हातापाई कर रहा था। वह भीतर चली गई। एक गर्भिणी स्त्री की पीठ पर कोई पुरुष अपना भार डाल रहा था। एक बैल के समान या किसी तगड़े वानर के समान वह बलपूर्वक उस पर ज़ोर डाल रहा था। नीचे पड़ी हुई वह विलाप कर रही थी। उसे लगा कि वह स्त्री उनकी शत्रु है। उसका पराक्रम और विवेक जाग गया। वह आगे कूद पड़ी और दराँती से उस पुरुष के सिर पर मारा। उस आघात में वह पीछे की ओर लुढ़कता हुआ गिर पड़ा और मर गया। वह पराक्रमी लड़की उस स्त्री को

जो पीड़ा की शिकार बनी थी, अपनी माँ के पास ले गई और उसने कहा - 'हे माँ, इस लड़की को तुम्हारी बेटी के समान पालना। हे ईश्वर ! हे धर्म ! हे माते ! मैं तुम्हारे पैरों पड़कर नमन करती हूँ । एक बार चूम लो, उसका पालन करो। कल का सूर्य मैं देख नहीं पाऊँगी। मैं एक डरपोक की पत्नी के रूप में जीने की इच्छा नहीं रखती। दूसरे दिन जब सूर्योदय हुआ तब यह खबर सारे गाँव में फैल गई। गाँव के लोग उस पराक्रमी लड़की की मत्यु पर बहुत रोये। उन्होंने उसे अपनी लक्ष्मी माना और भाग्यदेवता का दर्जा दिया। उसकी मृत्यु पर शोक मनाया गया। गाँव के मन्दिर के सामने मुखिया ने एक 'मास्ती' पत्थर लगाया। उसके कपड़ों में बाँधी हुई दराँती का खून उन्होंने पोंछ लिया और वह दराँती मन्दिर में पूजा के लिए रखी गई।

शौर्य, करुणा, देशभक्ति, धार्मिकता से युक्त स्वाभिमान जगानेवाली हृदयस्पर्शी कितनी सुन्दर कहानी ! कवि के हाथों की लेखनी मात्र फूल नहीं, धार से युक्त तलवार भी है।

'हुळ्ळु कडिग'(घास काटने की कैंची) बौद्ध कथा को आधार बनाकर लिखी हुई और एक कविता है।

सुमन एक गृहस्थ है। अन्नभार उसका सेवक। उसका काम अपने मालिक के जानवरों के लिए घास काटना और इकट्ठा करना। एक दिन अपने आँगन के पास ही वह घास काट रहा था। वहाँ घूमते हुए भिक्षा लेनेवाले किसी श्रमण को उसने देखा। अन्नभार ने घास काटना बन्द किया और भिक्षु को नमस्कार करते हुए उसके पैरों की धूल अपने माथे पर लगाई। जब तक भिक्षा लेकर वह आयगा तब तक प्रतीक्षा करने के लिए उसने भिक्षु से प्रार्थना की। अपने लिए रखा हुआ हाथ भर खाना उसने भिक्षु को दे दिया। सन्तोष के साथ खाना खाकर भिक्षु ने डकार लिया। अन्नभार को बड़ी खुशी हुई। भिक्षु उठकर चलने को हुआ । अन्नभार उसके पीछे गया और पैरों पर गिरकर कहने लगा कि संसार के कीचड़ में पड़कर दुःख भोगनेवाले उसकी, सहायता की जाये। भिक्षु ने अन्नभार को पवित्र सत्य की धार्मिक शिक्षा प्रदान की।

सुमन की बेटी ऊपर की मंजिल से यह घटना देख रही थी। उसने आकर पिताजी से कहा – 'जब बुद्ध यहाँ आए हमारे नौकर ने उसे खाना देकर धर्म का धन कमाया। प्रतिदिन आप उदार मन से दरिद्रों को जो दान देते हैं , लगता है कि वह उसके हाथ भर खाने से कम महत्व का ही है। उसने जो धर्म का पवित्र धन कमाया, एक नौकर को भेजकर उसका अंश आपको भी देने के लिए कहें।' सुमन ने अन्नभार से कहा कि बुद्ध को

खाना देकर उसके द्वारा कमाये गये धर्म के धन का एक अंश उन्हें भी मिलना चाहिए। यह सुनकर अन्नभार उत्तेजित हुआ। उसने कहा –'वह कौन? भिक्षु सच्चे अर्थों में बुद्ध थे? मुझे मालूम नहीं था। वे बुद्ध थे, इसकी जानकारी मुझे होती तो मैं उन्हें मेरे हाथ भर खाने के साथ साथ मेरी पत्नी और बच्चों का भाग भी देता ! मैं कितना बेवकूफ निकला? मेरे मालिक, बाकी अंश भी उन्हें देना चाहिए। बुद्ध के पास मुझे भेज दें। जिस धर्म के धन का मैंने अर्जन किया है उसका एक अंश आपको भी देने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। लेकिन मैं इस विषय में बुद्ध का उपदेश भी ले लूँगा'। अन्नभार सीधे चला गया। राह में बुद्ध से मिला और बाकी खाना भी उन्हें दे दिया। बुद्ध सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उसको अनुग्रह दिया। बड़ी तृप्ति के साथ अन्नभार ने बुद्ध से पूछा - 'हे प्रभो, आपके अनुग्रह के रूप में जो धर्म का धन मैंने कमाया है उसका एक अंश मैं दूसरों को भी दे दूँ क्या?' बुद्ध ने कहा - 'सूर्यप्रकाश, वर्षा, हवा एवं चान्दनी का आस्वादन करने के लिए क्या तुम्हें किसी की अनुमति की ज़रूरत है? जिस प्रकार एक दिये से दूसरा दिया जलाया जाता है वैसे ही तुम्हारे द्वारा अर्जित धर्म के धन का एक अंश तुम्हारे मालिक को देकर उनकी आत्मा को भी प्रकाश का मार्ग दिखा दो।' यह सुनकर अन्नभार अपने मालिक के पास लौटा और उसने कहा – 'प्रभो ! बुद्धदेव ने अनुमति दे दी। धर्म के धन का अपना अंश स्वीकार करने के लिए मैं आपसे विनती करता हूँ।' सुमन को बड़ा सन्तोष हुआ। उसने अन्नभार को आलिंगन किया। उसने कहा –'यह ऋण मैं कैसे चुकाऊँगा? गुलामी से मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ। आज से तुम मेरे सेवक नहीं हो। मैं तुम्हें जितना चाहो उतना सोना दे देता हूँ। अन्नभार ने उत्तर दिया - 'मूल्यरहित धर्म का मैं मोल कैसे लूँगा? मैं आपको धर्म का अंश मुफ्त में देता हूँ। बदले में मैं कुछ नहीं चाहता। आप यदि मुझे सोना देंगे तो भी मैं आपकी नौकरी से मुक्त नहीं हूँगा। मैं आपका नौकर ही हूँ। धन का लोभ छोड़ने का उपदेश बुद्ध ने मुझको दिया है। केंचुए को मक्खन मिलाया हुआ भात किसलिए? प्रभो ! अपनी कुटिया और हँसिया ही मेरे लिए बहुत हैं।'

शिष्टता एवं विनयशीलता से युक्त यह आचरण बुद्ध के शिष्यों जैसे पवित्र आत्माओं की ही संपत्ति है। अगली कविता 'बरिदे' (अर्थहीनता से) इस प्रकार कहती है :

'तुम एक बड़े दूकानदार हो। सूर्य और चन्द्र तुम्हारे वज़न और माप हैं। फिर हड्डियों से भरे उस तराज़ू से तुम क्या करोगे? तुम अनन्त

आकाश पर रहनेवाले जानवरों के रक्षक हो। चिकनी मिट्टी की बनी इस गाय को दुहते हुए तुम्हें दूध कैसे मिलेगा? तुम जीवन की बाँसुरी बजाते हो। तुम आँसुओं की जलतरंग क्यों बजाते हो? द्रुतगति से चक्रानुक्रमण करनेवाले इस पृथ्वीरूपी खिलौने को लेकर तुम खेल रहे हो। तुम्हें अहंकाररूपी रस्सी की क्या ज़रूरत है? मैं तो लोभ के संग्राम में निरन्तर लगा हुआ हूँ। इसलिए मेरे कलेजे का काँटा उखाड़ फेंकनेवाले तुम्हारा मैं ऋणी हूँ। दुःख के साथी, प्यार के सागर, मृत आग्रहों के टीले से मुझे धक्का देकर नीचे गिरा दो और सौन्दर्य के भूलभुलैये से बचने की शक्ति मुझे प्रदान करो।

भूत, वर्तमान और भविष्य, ये समय की तीन अवस्थाएँ हैं। सब लोग इनसे अवगत हैं। इस संग्रह की 'नाल्कनेयकाल'(काल की चौथी अवस्था) नाम की अन्तिम कविता में श्री पै काल की सदा वर्तमान अवस्था के बारे में कहते हैं। यह अवस्था तीनों अवस्थाओं से परे होती है और आत्मा से संबन्धित रही है। यहाँ पर इस बात का स्मरण होना चाहिए कि 'तुरीय' नाम की पहली कविता में ईश्वर को चौथे व्यक्ति के रूप में दिखाया गया है।

जिस समय स्थावर और जंगम के विभिन्न आकारों के ज़रिए कीटाणु से लेकर मनुष्य तक अनेक योनियों में भ्रमण करनेवाली अवस्था 'भूतकाल' है। मैं कौन हूँ? यहाँ क्यों आया? मैं यहाँ स्वयं आया या किसीने मुझे यहाँ भेजा?मुझे कहाँ जाना है? आदि प्रश्नों में हम उलझे रहते हैं। इनसे मुक्त होने के लिए आतुरता के साथ हम इच्छुक रहते हैं। लेकिन वैसा नहीं कर पाते। यही स्थिति 'वर्तमान' है। अनेक जन्मों से चलनेवाला हमारा भ्रमण अपनी गति को धीरे धीरे खो देता है और जिस प्रकार सूर्य की किरणें सूर्य में ही विलीन हो जाती हैं उसी प्रकार हम जिस जगह से आए हैं उसी जगह पर लौट जाते हैं। इसीको 'भविष्य' कहा जाता है। इन अवस्थाओं के परे जो चेतना रहती है जिसमें 'मैं' और 'वह' याने अन्य सभी की जानकारी होती है, जिसके कारण 'मैं' और दूसरा सब कुछ अलग अलग रहते हुए भी एक ही होता है। यही चौथी अवस्था है।'

यही हृदयरंग की समाप्ति है। इस संग्रह की खूब कविताएँ देशभक्ति की हैं। पै ने स्वतन्त्रता संग्राम को अपने आँखों से देखा था और उन्होंने विस्तार से उसे गाया भी है। उस संग्राम से उन्हें प्रेरणा भी मिली।

स्वातन्त्र्य के मिलने के बाद भी हमारे देश में समता, शान्ति और एकता का अभाव देखकर वे बहुत ही अस्वस्थ रहे। ई. स. १९४७ में हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। हमारी मातृभूमि के दो टुकडे किए गए और इस कारण से अन्तिम समय तक वे दुःख में ही रहे। हमारी स्वतन्त्रता के बाद थोड़े समय के लिए गोवा स्वतन्त्र भारत का भाग नहीं रहा। वह अभी हाल में ही हमारे हाथ में आया है। गोवा भारत का भाग नहीं रहा, इसका उन्हें बड़ा दुःख था। अनेक कविताओं में उन्होंने इसे स्प्ट किया है। पै के पूर्वज जो गौड़ सारस्वत ह्राह्मण थे, वे गोवा में रहते थे। जब फिरंगियों ने गोवा पर आक्रमण किया तब वे ब्राह्मण सागर के तट से होकर दक्षिण पश्चिम प्रदेश में गये। अपने मान एवं धर्म की रक्षा करने के लिए वे वहीं रहे। आज भी उनके मूल मन्दिर गोवा में ही है। इसलिए गोवा को फिरंगियों के हाथों से मुक्त करने की पै बहुत इच्छा करते थे। उनकी यह इच्छा हाल में ही पूर्ण हुई। इस लेखक ने अपनी रचना 'पुनर्नवा' जब प्रकाशित की उस समय एक प्रति पै को भी भेज दी। पै ने उसे पढ़कर इस प्रकार लिखा –

'तुम्हारी 'पुनर्नवा'(नई युवती) मैंने पढ़ी। मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। पूरे संग्रह में यह और वह कहकर नाम के बिना 'गोवेयकरे'(गोवा की पुकार) कविता सभी कविताओं में श्रेष्ठ रही है। इस कविता को पढ़ते हुए मैं आश्चर्यचकित हो गया। कन्नड़ भाषा में देशभक्ति की कविताओं का संग्रह प्रकाशित करने की तैयारी हुई तो कम से कम एक या दो पृष्ठ निस्सन्देह तुम्हारे 'गोवेयकरे' कविता के लिए अलग से रखने होंगे।

सधन्यवाद,

गोविन्द पै

पै मनुष्यत्व को मानते थे। उनकी कविता में यह भावना स्पष्टतः प्रतिबिंबित हुई है। 'अणुबम', 'हिरोशिमा','पैंतीस हज़ार','शूद्रर्षि कवश', 'हुळ्ळु कडिग', 'वासवदत्ता', 'अन्दिनिन्दाके नक्किल्ला अत्तिल्ला', 'मातंगी', 'पश्चात्ताप' आदि सत्यता के साक्षी रहे हैं। इनकी विश्वव्यापी करुणा और मनुष्यत्व की अभिव्यक्ति इनकी कविताएँ करती हैं। यह उनकी उदार भावना ही रही थी कि सभी धर्म, जातियाँ और समाज समान हैं।

नये छन्द में कविता लिखने के साथ साथ परम्परागत वृत्तों मे भी वे कविताएँ लिखते थे। अपनी अनेक कविताओं में उन्होंने

'द्वितीयाक्षरप्रास' के नियमों को तोड़ दिया। थोड़ी कविताओं में वे इसका अनुसरण भी करते रहे। अन्त्यानुप्रास में उनकी विशेष रुचि थी। संस्कृत एवं पुरानी कन्नड़ भाषा में पंडित रहने के कारण उनको शब्दों की कमी महसूस नहीं हुई। यही नहीं नये शब्दों का निर्माण करने की आदत भी उनकी थी। अलंकार उनकी कविता में सब कहीं व्याप्त रहे हैं। सभी कविताएँ मौलिकता की छाप लेकर आती हैं।

अध्याय -३

खण्डकाव्य (खण्डकाव्यगळु)

महान आत्माओं का देहावसान

संसार के चार महान तेजस्वी आत्माओं के देहावसान से संबन्धित चार खण्डकाव्य श्री पै ने तैयार किए –'गोलगोथा' ईसा के अन्तिम दिन को लेकर, 'वैशाखी' बुद्धदेव के अन्तिम दिन को लेकर, 'प्रभास' श्रीकृष्ण के अन्तिम दिन को लेकर और 'देहली' गान्धीजी के अन्तिम दिन को लेकर लिखे गए। पहले दोनों पूर्ण हुए। लेकिन बाद के दोनों अपूर्ण रहे। सभी काव्य पूर्ण हो या अपूर्ण, भाषा, वर्णन, अलंकार एवं अभिव्यक्ति को लेकर अपने उत्तम गुणों से हृदयावर्जक शक्ति लेकर काव्यकला के सारतत्व से भरे हुए हैं। ये उत्तम एवं सुन्दर काव्य कन्नड़ साहित्य के इतिहास में चमकते रहे हैं।

ईसा का अन्तिम दिन - 'गोलगोथा'

'गोलगोथा' खण्डकाव्य ई. स. १९३७ में लिखा गया। कन्नड़ भाषा के खूब कवियों ने हिन्दू पुराणों की कथाओं का, विशेषतः जैनों और शैवों की धार्मिक कथाओं का आधार लेकर काव्यनिर्माण किया। फिर भी संसार के महान धार्मिक ग्रन्थ, बैबिल को आधार बनाकर काव्यनिर्माण करनेवाले कवियों के बीच श्री गोविन्द पै सर्वप्रथम हैं। कन्नड़ भाषा में इस विषय पर लिखा गया पहला खण्डकाव्य है 'गोलगोथा'।

'गोलगोथा' ३७७ पंक्तियों का काव्य है। अंग्रेज़ी की प्रासरहित कविता के समान 'सरलरागले' में इस छन्द को रखा जा सकता है। फिर भी कवि स्वयं इस छन्द का नाम 'झंपे' कहते हैं। प्रत्येक पंक्ति में पाँच मात्राओं के चार गण रहते हैं। अन्तिम पंक्ति के अन्तिम चरण में अन्तिम गुरु के साथ चार मात्राएँ होती हैं। यह कवितापाठ करते समय विश्राम के लिए रखा गया है। यह 'झंपे' के साथ निष्ठा रखता है। इसलिए कवि के अनुसार इस छन्द का नाम 'झंपे' माना जाय तो उचित होगा।

यहूदी पुरोहित अपने गहन धार्मिक अन्तर के कारण ईसा पर असूयालु थे। ईसा का जीवन ही नष्ट करने की इच्छा उनको थी। इसलिए वे ईसा को चौकसी के लिए ले गये, वैसे ही जैसे कि मेघों का समूह सूर्य को बाँध लेता है और उसे रात के सुपुर्द कर देता है। कायफसान ने हुकुमनामा दिया कि ईसा दोषी हैं। लेकिन यहूदियों के लिए मृत्युदण्ड का नियम नहीं

था। इसलिए उन्होंने ईसा को पिलातो के सुपुर्द किया। उन्होंने फरियाद की कि ईसा देशद्रोही हैं। पिलातो ने ईसा में कोई अपराध नहीं देखा। यही नहीं यहूदियों के लिए वे उत्सव के दिन थे। उनके धर्म में ऐसे समय एक गुनहगार को मुक्त करने का नियम रहा था। पिलातो ने यहूदियों से पूछा कि निरपराधी ईसा को मुक्त करना है या बरबस को हत्या का अपराधी मानना है? तब एक बड़े ही समूह ने चीख मारी कि ईसा को फाँसी पर चढ़ा देना है। पिलातो की पत्नी को सपने के ज़रिए सन्देश मिला कि ईसा निरपराधी हैं। उन्होंने पिलातो से इस सन्देश के बारे में कहा। फिर भी यहूदियों की भावना को ठेस पहुँचाने पर अतीतकाल में उनको दी गई सूचना की याद करते हुए उन्होंने ईसा को जीते जी मार डालने का हुक्म दिया। निरपराधी ईसा की हत्या का उत्तरदायी पिलातो नहीं है, इस प्रकार उन्होंने जब कहा तब यहूदियों के समूह ने चीख मारते हुए कहा कि 'उसका उत्तरदायित्व हम लेते हैं। हमारे बच्चे भी यह उत्तरदायित्व निभाएँगे।' तब पिलातो ने सैनिकों को ईसा को मार डालने का हुक्म चालू करने का आदेश दिया।

सैनिकों ने ईसा को लाल वस्त्र पहनाए और उनके सिर पर काँटों का किरीट रख दिया। दायें हाथ में एक चाबुक दिया और वे उन पर व्यंग्य करते हुए उनके सामने घुटनों पर खड़े हुए। फिर उनके मुख पर थूक दिया और चाबुक से मारा। नगर के बाहर खोपडियों के टीले पर गेलगोथा तक उन्हें चलना पड़ा। वहाँ तक पहुँचकर उनके हाथों और पैरों में कील ठोंक दिये गये और दो चोरों के साथ उन्हें क्रूस पर चढ़ाया गया। उन्होंने चुपचाप शान्ति के साथ यह दुःख सह लिया और ईश्वर से प्रार्थना की –'स्वर्ग के मेरे पिताजी, उन्हें माफ करें। वे स्वयं नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं।' तभी सब ओर अन्धकार छा गया। ईसा ने अपनी आत्मा को ईश्वर को समर्पित कर दिया और मृत्युरूपी वृक्ष के नाशरहित फल के समान क्रूस पर लटकने लगे।

'पृथ्वी थर्रा गई। इस दृश्य को देखकर लोगों को बड़ा दुःख हुआ। ईसा की शिष्या मग्दलन मरियम क्रूस के मध्य में दृष्टि गड़ाकर दूर पर बैठी थी। पूर्वी दिशा में पूर्णचन्द्र उदित हुआ।'

सत्य एवं सात्विकता के लिए अपने जीवन का त्याग करनेवाले एक महान एवं ख्यातिप्राप्त मनुष्य का सुखपूर्ण अन्त गोविन्द पै ने हृदयस्पर्शी ढंग से वर्णित किया। ईसा के चार शिष्यों के द्वारा कही गई उनके उपदेशों की कथा, यहूदियों को उत्तेजित करनेवाली असूया, पिलातो

का सन्देह, ईसा की सहनशीलता और मग्दलन मरियम का निस्वार्थ प्रेम आदि का विवरण 'गोलगोथा' खण्डकाव्य में दिया गया है। यह वर्णन कभी कभी हमारे हृदय में भय भी उत्पन्न करता है। कवि की यह कुशलता प्रशंसा के योग्य है। इसी कारण 'गोलगोथा' कन्नड़ साहित्य में कभी मन्द न पड़नेवाली तेजपूर्ण नवीनता से युक्त एक अमर ग्रंथ बन गया।

पहला ही वाक्य, 'तीसरी बार मुर्गे ने बाँग दी और ईसा के जीवन के नाश की इच्छा करनेवाले यहूदियों की सदसद्विवेकबुद्धि के समान वह चुप रहा', समस्त काव्य की सर्वाधिक दुःखपूर्ण घटना की सूचना देता है मानो यह प्रकृति की ही प्रतिक्रिया हो। 'संसार का ऋण इस दिन चुकाया जायगा, इस प्रकार सोचकर शीतल हवा बहने लगी।' 'दैवपुत्र उस दिन स्वर्ग लौटेंगे, इस जानकारी से मानो पक्षी गाते थे।' 'दुर्भाग्य के उस दिन सूर्योदय कैसे होगा, इसके बारे में उदयसूर्य सोच रहा था।' उस महान आत्मा के पास पहुँची हुई मृत्यु को लेकर पृथ्वी कितने गहरे रूप में दुःख का अनुभव कर रही थी, इसका वर्णन ये पंक्तियाँ करती हैं। जिस समय ईसा को क्रूस पर चढ़ाया गया तब प्रकृति की दशा क्या हुई, इसका वर्णन नीचे दिया गया है–

'दोपहर का समय। आकाश पर सूर्य का पता तक नहीं था। प्रलय मेघों के जैसे अन्धकार आकाश पर फैल गया।' ये पंक्तियाँ आनेवाली दुःखपूर्ण घटना की पूर्वसूचना देनेवाली हैं।

ईसा की आत्मा ईश्वर में कैसे विलीन हो गई, इसका सुन्दरता के साथ हृदयावर्जक रूप में वर्णन इस प्रकार हुआ है –

'जिस प्रकार हरिण का बच्चा पर्वत के ऊपर से बुलानेवाली अपनी माता के पास कूद कूद कर दौड़ता है, जिस प्रकार चंडूल पक्षी पकी हुई फसल के पास उड़ता हुआ आता है, जिस प्रकार रात का दिया सूर्योदय पर सूर्य में विलीन हो जाता है, जिस प्रकार बिजली कशाघात करती हुई आकाश से होकर दिगन्त में व्याप्त हो जाती है, उसी प्रकार ईसा अपना शरीर छोड़कर ईश्वर में विलीन हो गए।'

'ईसा का शरीर क्रूस पर लटकाया गया। उनके पैरों के पास एक खोपड़ी रखी गई। स्वर्ग की सुन्दरता, प्रेम और सौन्दर्य की देवता, कामदेव का प्रसिद्ध बाण, रति की प्रतिमूर्ति मग्दलन मरियम अपना सब कुछ त्यागकर क्रूस के मध्य में दृष्टि गड़ाकर दूर पर बैठी थी। चारों ओर चान्दनी फैल गई। कहीं कोई हलचल नहीं थी। सब कहीं शान्ति रही थी।'

'ईसा की आत्मा उड़ती हुई प्रकाश के घर में चली गई। सारी

पृथ्वी थर्रा उठी। मेघ स्वच्छ रहा। सूर्य पश्चिम दिशा में प्रकाशित हुआ। कहीं कोई आवाज़ नहीं थी। सब कहीं हलचल बन्द। अमर ईसा की प्राणरहित मूर्ति के ऊपर सफेद छप्पर के जैसे चन्द्रोदय हुआ। उस दिन तक प्रेम का सन्देश एवं धर्मोपदेश देनेवाले उनके जीवन की धवल पवित्रता जैसी चाँदनी दिखाई पड़ी।'

उपमालंकार के प्रयोग में कालिदास अप्रतिम रहे। उनकी उपमाएँ सदा नई रहती थीं। संस्कृत के प्रसंग में कालिदास की ख्याति तो उचित ही है। उसी प्रकार कन्नड़ भाषा में गोविन्द पै की उपमाएँ बहुत आकर्षक रही हैं। प्राचीन काल में दूसरे कवियों के द्वारा वर्णित उपमाओं का वे उपयोग नहीं करते। उनकी उपमाएँ सब नवीन हैं और स्वतन्त्र विचारों को प्रस्तुत करनेवाली हैं। गोविन्द पै की कविताओं के अलंकार प्रसंगानुरूप एवं सहज हैं। संस्कृत भाषा में कालिदास के समान कन्नड़ भाषा में गोविन्द पै उपमा के प्रयोग में अप्रतिम हैं।

'वैशाखी' - बुद्ध का अन्तिम दिन

'वैशाखी' बुद्ध के अन्तिम दिन को आधार बनाकर लिखा गया खण्डकाव्य है। 'वैशाखी' का अर्थ वैशाख महीने की पूर्णिमा है। तीन मुख्य प्रसंग - बुद्ध का जन्म, उनकी संबोधि तथा परिनिर्वाण वैशाख महीने की पूर्णिमा के दिन ही हुआ। संसार के धार्मिक इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण एवं पवित्रता से युक्त दिन है। श्री पै ने 'वैशाखी' काव्य ई. स.१९४९ में लिखा। आकार में वह 'गोलगोथा' की अपेक्षा दुगुना लंबा है।

'गोलगोथा' काव्य संसार में कीर्तिप्राप्त दैवी व्यक्तित्व की अकालिक मृत्यु का वर्णन करता है और हमारी पीड़ा, दया, क्षोभ, उत्कंठा, करुणा आदि की भावना जागृत करता है। 'वैशाखी' में बुद्ध के जीवन की अस्सी वर्षों की कथा, संसार में कीर्ति अर्जित करनेवाले पवित्र आत्मा के जीवन की कथा और उनके शान्तिपूर्ण परिनिर्वाण की कथा वर्णित है। पूरे काव्य में शान्ति तथा सुख फैला पड़ा है। दोनों काव्यों में समानताएँ हैं। वे ऐसी हैं - दोनों काव्य संसार में ख्यातिप्राप्त दो आत्माओं के जीवन की कथा कहते हैं। फिर भी दोनों काव्य घटनाओं के वर्णन में भिन्न भिन्न रहे हैं। हर एक काव्य पाठकों के मन में भिन्न भिन्न प्रतिक्रियायें उत्पन्न करता है।

'बुद्ध के अस्सी वर्ष पूर्ण होने को अब कुछ ही दिन बाकी थे कि उन्होंने 'पावा' प्रदेश में चुन्द नाम के लुहार के घर में जाकर खुमी (कुकुरमुत्ता) से बनाया हुआ स्वादिष्ट खाना खाया। उस दिन से वे पेचिश

की असह्य पीड़ा से तड़पने लगे। उन्हें लगा कि मृत्यु के दिन आ पहुँचे हैं। उन्होंने अपने शिष्यों को इसकी खबर दे दी और कुशीनर की ओर चले गये। रास्ते में वे थक गये। उन्हें प्यास लगी। एक वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए आनन्द के द्वारा लाया गया पानी उन्होंने पी लिया। वहाँ पर पुक्कुस नाम का एक व्यापारी बुद्ध से मिला। उनकी माँग पर बुद्ध ने उन्हें धर्मोपदेश दिया। पुक्कुस अनुग्रहीत हुआ और उन्होंने बुद्ध को दो मूल्यवान सुनहले शाल दिये। बुद्ध ने अपना प्रयाण आगे बढ़ाया। राह में काकुथा नदि में स्नान करके नदी के उस पार आम के एक बाग में विश्राम किया। विश्राम करते करते उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि चुन्द का दिया हुआ कुकुरमुत्ते से बनाया गया स्वादिष्ट खाना खाकर बुद्ध मरण के मुँह में चले गए, इस प्रकार कहकर चुन्द को कभी दोषी मत ठहराना। उन्होंने निश्चय किया कि कुशीनर अपने निर्वाण के लिए उचित जगह है और वे वहाँ पर पहुँचे। बरगद के बाग में जाकर वे उत्तर दिशा की ओर सिर रखते हुए पसरकर लेट गये। फिर नहीं उठे। वहाँ लेटे लेटें उन्होंने आनन्द के प्रश्नों का उत्तर दिया। उन्होंने भिक्षुओं और मल्लों को धर्मोपदेश दिया और धर्मानुसार जीवन बिताने को कहा। उस समय सुभद्र नाम का भिक्षु वहाँ आया और उन्होंने बुद्ध से मिलने के लिए आनन्द की अनुमति का आग्रह किया। आनन्द ने कहा कि वे थक गये हैं और उसे टाल दिया। बुद्ध के कानों में इसकी भनक पड़ी और उन्होंने सुभद्र को बुलाकर उनके जीवन का अन्तिम धर्मोपदेश दिया । उसके बाद सिंह के आकार में विश्राम लेकर वे गहन समाधि में पड़ गए। वैशाख महीने की पूर्णिमा के दिन अन्तिम घड़ी में बुद्ध का निर्वाण हुआ।

तुरन्त पृथ्वी थर्रा उठी, बिजली कड़कने लगी, मूसलधार वर्षा हुई। ब्रह्मदेव, इन्द्रदेव, अनिरुद्ध, आनन्द आदि ने इस महान घटना का गायन किया। रात के शेष अंश में भिक्षुओं ने प्रवचन करना शुरू किया।'

इस वर्णनात्मक काव्य का उद्गम 'परिनिब्बाणसुत्त' में मिलता है। मल्लों को दिया हुआ धर्मोपदेश 'परिनिब्बाणसुत्त' के 'मंगलसुत्त' के 'सुत्तनिपात' में रहा है। सुभद्र को दिया हुआ उपदेश 'अंगुट्ठरनिकाय' के 'धर्मचक्रप्रवर्तनसुत्त' का उद्धरण है। कवि ने पाली भाषा के बुद्धसंबन्धी मूल ग्रंथ का अध्ययन किया है और बौद्धधर्म तथा बौद्धकथाओं के महत्वपूर्ण प्रसंगों को प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति देकर इस काव्य का निर्माण किया है।

इस ग्रंथ में कथा का अंश बहुत कम है। पुक्कुस, आनन्द, मल्ल

और भिक्षुओं को बुद्ध ने जो उपदेश दिए वे ग्रंथ के अधिकांश भाग में फैले पड़े हैं। इन उपदेशों के माध्यम से कवि बौद्धधर्म के महत्व को दिखानेवाले तत्वों का स्पष्ट वर्णन करते हैं। 'पावा' से 'कुशीनर' तक का प्रयाण और परिनिर्वाण ही ग्रंथ का प्रमुख विषय है। सूर्योदय, चन्द्रोदय, चन्द्रमा का अस्त होना, दोपहर, सन्ध्या और रात का वर्णन कथा की घटनाओं के वर्णनों के मध्य में सहजता के साथ किया गया है। ये सारे वर्णन, बुद्ध के वर्णन को छोड़कर, उतने विस्तृत नहीं कहे जा सकते।

नीचे दिया गया काव्यकला से संबन्धित विवरण 'वैशाखी' के वास्तविक महत्व को व्यक्त करता है।

'जिस प्रकार द्रवीभूत सोना धातुमल को छोड़ देता है, जिस प्रकार हाथी बेल का फल खाता है, जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली छोड़ता है उसी प्रकार सुगत ने अपना शरीर छोड़ दिया।'

'तपे हुए लोहखण्ड पर पानी डालने के समान, सोनेवाले के जागने के उपरान्त नष्ट होनेवाले सपने के समान, राख के बिना जलनेवाले कर्पूर के समान, ताजा दूध के फेन के समान बुद्ध ने अपने को शरीर से मुक्त किया।'

'बच्चे दूध के लिए रोते थे, मुर्गे ने एक बार और बाँग दी। पूर्व दिशा में आकाश का रंग लाल हो गया। घरों के ऊपरी भाग से धुएँ के बारीक जाल बाहर आए। किसान अपनी गाड़ी में बँधे हुए बैल को लेकर बड़े प्रयत्न से जा रहा था। धोबी अपने वस्त्रों की गठरी और धीवर अपना जाल लेकर नदीतट से होकर जा रहे थे। कोल्हू चलने और शब्द करने लगा था। लुहार की अंगीठी में आग धधक रही थी।'

'बुद्ध को पद्मासन पर बिठाया और उन फूले हुए पत्तों के बीच आँख की पुतली जैसे वे शोभित होते थे। कहा जाता है कि वे इस समय अस्सी वर्ष की आयु के थे। उनकी चमड़ी पर तनिक भी झुर्रियाँ नहीं थीं। एक भी केश सफेद नहीं था। उनकी आवाज़ क्षीण नहीं थी। उनकी पीठ झुकी नहीं थी। एक भी दाँत गिरा नहीं था। उनके शरीर का प्रकाश ज़रा देखो तो ! उनकी अधखुली आँखें दृष्टि के परे किसी वस्तु को एकाग्र भाव से देख रही थीं। उनके कान देखो तो ! वे किसी भी प्रश्न का स्वागत करनेवाले प्रवेशद्वार थे। उनका मुख तो देखो ! वह नदीमुख जो अनन्त काल तक वाणी की गंगा सागर में उँडेलता रहा था और आज भी यही कर रहा है। ज्ञान, ध्यान, शान्तता और प्रकाश के इस अहंकारहीन ईश्वर को तुम्हारी आँखें जितना चाहें उतना देख लें।'

'बुद्ध के उपदेश शिष्यों को खाली कोठरी में भरे बोरों के समान रहे थे। वे बैलगाड़ी के जुए में बैलों को बाँधने के बाद गाड़ी चलने के लिए जिस प्रकार तैयार खड़ी थी, वैसे ही थे। दरिद्र व्यापारी के आवश्यक धन इकट्ठा करते हुए रात के समय पैदल चलनेवालों को छप्पर देने के समान थे।'

'शिकारी जानवर की हत्या करनेवाले बाण को दोष मत देना। पुरानी गाड़ी के टूटने से बैलों को दोष मत देना। वैसे ही मुझको खुमी का खाना देनेवाले चुन्द को दोष मत देना।'

'बूढ़ी स्त्री को माँ के समान, समान वय की स्त्रियों को बहिन के समान और अपने से छोटी स्त्रियों को बच्चे के समान मानना चाहिए और उनके साथ सावधान होकर जीना चाहिए।'

'जिस मनुष्य ने स्वयं को जीत लिया वह शूरों में महान रहता है। वह युद्ध में शत शत सैनिकों को पराजित करनेवाले से भी बढ़कर वीर होता है। प्रेम से द्वेष को शान्त किया जा सकता है, द्वेष से नहीं। अच्छेपन से बुराई को, दान से कृपणता को और सत्य से असत्य को जीत लेना चाहिए।'

'वासना से बढ़कर आग नहीं है, क्रोध से बढ़कर दुश्मन नहीं है, मोह से बढ़कर भयंकर जाल नहीं है, शान्ति से बढ़कर सन्तोष नहीं है। भिक्षुओं को चाहिए कि वे अधर्म न करें। उन्हें खाली नहीं बैठना चाहिए। हमेशा जागरूक एवं उद्योगी रहना चाहिए।'

'दूसरों को तुम्हारे धर्म या साम्राज्य में जोड़ने के लिए उद्वेग न करना चाहिए। दूसरों के धर्म और स्वतन्त्रता को आदर देना मनुष्य का धर्म है। ऐसा करनेवाले मनुष्य का धर्म एवं स्वतन्त्रता विकास को प्राप्त करती है। दूसरों के धर्म एवं स्वतन्त्रता का नाश करनेवाले मनुष्य का धर्म एवं स्वतन्त्रता पानी की लहरों के समान नष्ट हो जाती है।'

'बुद्ध के उपदेश शिष्यों को बरसात में गलनेवाले शैवाल के समान, रिक्त तूणीर में बाणों के समान, दरिद्र भिखारी को बिना माँगे मिली संपत्ति के भंडार के समान और सूर्य के द्वारा अपने प्रकाश से पानी की गगरियों को भरे जाने के समान रहे।'

'मंगलवार के रात की अन्तिम घड़ी। वैशाख महीने की पूर्णमा का दिन। सरसों गिर जाय तो उसकी आवाज़ तक सुनाई पड़नेवाला नीरव स्थान। प्रकृति चुप थी। वह जैसी थी वैसी ही निश्चल रही। सफेद प्रकाशित किरणोंवाला मनोहर चन्द्रमा आकाश के पश्चिम की ओर उतरता चला था। सिंह के आकार में विश्राम करते हुए सिर उत्तर की ओर करके पसरकर लेटे हुए बुद्ध के सामने वह प्रकाशित हो रहा था।चन्द्रमा ने

अपनी चान्दनी में उन्हें सिर से पैर तक आच्छादित किया और सुन्दर बुद्ध को अतिसुन्दर बनाया।'

'जिस प्रकार गुब्बारा फूट जाता है, जिस प्रकार लहरें समुद्रतट पर टकराती रहती हैं, धूमकेतु के समान, जिस प्रकार बरसात के मेघ पानी बरसाकर खाली होते हैं उसी प्रकार बाती खतम होनेवाले दिए के समान बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।'

'गेलगोथा' के समान 'वैशाखी' में भी नये नये वर्णन और अलंकार देखने को मिलते हैं। ये बहुत सुन्दर एवं हृदयावर्जक हैं। महाकाव्य के उपमालंकार के वर्गीकरण के अन्तर्गत पाश्चात्य पंडितों के द्वारा वर्णित अनेक अलंकारों का प्रयोग 'वैशाखी' में भी हुआ है। इस बात में सन्देह नहीं है कि बौद्ध धर्म और उसके पवित्र धर्मग्रंथों से संबन्धित पारिभाषिक शब्दावली यहाँ उपयोग में लाई गई है जिसे देखकर ऐसा लगता है कि यह रचना किसी बौद्ध कवि की है।

'वैशाखी' लिखते समय कवि की अवस्था साठ वर्ष के ऊपर थी। इस रचना में धर्मोपदेश के प्रसंगों में वर्णित धर्म के प्रति आकर्षण इस उम्र में सहज ही है।

श्री पै ने 'गोलगोथा' काव्य अपने भतीजे को समर्पित किया। 'वैशाखी' काव्य उनके नारायण पै नाम के भाई के बच्चों को एवं स्वर्गीय देवकी बाय एवं मनोरमा बाय को दुःखपूर्ण श्रद्धांजलि कहकर समर्पित किया है। इस प्रकार उन्होंने अपने घर के सदस्यों के प्रति प्रेम व्यक्त किया है।

पहले ही कहा जा चुका है कि महान आत्माओं से संबन्धित खण्डकाव्यों में दो काव्य अपूर्ण रहे हैं। ये हैं 'प्रभास' और 'देहली'। काळीयमर्दन श्रीकृष्ण पै के कुलदेव रहे। उन्होंने बंगला से 'श्रीकृष्णचरित' का कन्नड़ भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया था। उन्होंने संस्कृत और कन्नड़ भाषाओं के भागवत का गहरा अध्ययन किया था। वे गान्धीजी के बड़े भक्त थे। उनकी देशभक्ति और गाँधीभक्ति, स्वतन्त्रता के बाद एक भारतीय के द्वारा राष्ट्रपिता गाँधीजी की गोली मारकर हत्या, ये सारी घटनाएँ श्री पै को गाँधीजी के संबन्ध में एक शोकगीत लिखने के लिए प्रेरक रही होंगी।

'प्रभास' - श्रीकृष्ण का अन्तिम दिन

आकाश पर एक बार प्रकट होकर बहुत समय तक प्रकाशित रहनेवाला धूमकेतु पहले ही अदृश्य हो गया, पूर्वदिशा में चन्द्रोदय हो गया, प्रकाश से भरा शुक्र ग्रह टिमटिमाने लगा और मुर्गे ने बाँग दी। बहुत

समय तक पांचजन्य की आवाज़ सुनकर यादवों की भिन्न भिन्न टोलियाँ, वृष्णी, अंधक, भोज, शतपथ आदि अपने नाविकों सहित जहाज़ चलाकर दक्षिण दिशा की ओर आईं और प्रभास के बन्दरगाह पर पहुँचीं।

बहुत महीनों पहले उन्होंने एक शरारत की। यादवों में सबसे सुन्दर जांबवती के पुत्र, सांब को सुन्दर वस्त्र एवं आभूषण पहनाकर एक गर्भिणी के रूप में सजाते हुए पिंडारक नाम की पवित्र जगह पर तपश्चर्या करनेवाले ऋषियों के सामने वे ले आए और उनसे कहा - 'पवित्र ऋषियो, यह बभ्रु की पत्नी है। यह गर्भिणी है। इसके पेट में लड़का है या लड़की?' इन शब्दों को सुनकर, उनकी शरारत को समझकर ऋषि लोगों को क्रोध आया। उन्होंने यादवों को शाप दिया - 'यह लड़का एक मूसल को जन्म देगा और यह मूसल तुम्हारे कुल का नाश करेगा।' यादव द्वारका लौटे और सारा वृत्तान्त उन्होंने श्रीकृष्ण को कह सुनाया। श्रीकृष्ण ने कहा - 'सूखे हुए तृण पर चिनगारी के समान, वृक्ष के नीचे लगी हुई कुल्हाड़ी के समान ऋषियों का शाप निष्फल नहीं होगा। सागर के तट पर लहरों का टकराना हम रोक नहीं सकते। उन्हीं लहरों को लौटकर आने के लिए आदेश की ज़रूरत नहीं है। जो होना है वह होकर ही रहेगा।' इस प्रकार कहते हुए श्रीकृष्ण ने उन्हें लौटाया।

थोड़े दिनों के बाद सांब को प्रसववेदना हुई। बाँस का झुरमुट जिस प्रकार आग को उत्पन्न करता है उसी प्रकार उसने एक काँटों भरे मूसल को जन्म दिया। यादवों ने उसके बारीक टुकड़े किए और उन्हें सागर में बहा दिया। ये बारीक टुकड़े तैरते हुए प्रभास के तट पर आ पहुँचे और तृण के रूप में उग आए। फिर भी एक मज़बूत काँटा बाकी रहा। उसे किसी मछली ने निगल लिया। जरा नाम के किसी शिकारी ने उस मछली को जाल में फँसाकर जब उसे काट दिया तो उसके पेट में काँटा दिखाई दिया। उसने उसके तीर बनाकर शिकार के लिए तैयार किया।

वर्ष बीत गए। कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध के समाप्त होते ही हस्तिनावती के सम्राट के रूप में युधिष्ठिर का राज्याभिषेक होकर छत्तीस वर्ष हुए। द्वारका में भयानक अशुभसूचक शकुन दिखाई पड़ने लगे। यादवों के घरों में नीले एवं लाल रंग के राक्षसों की आकृतियोंवाले भयंकर प्राणी प्रकट होने लगे। उन पर लगाए गये तीर उनको न लगते थे और पृथ्वी पर गिर जाते थे। तूफान आया। मनुष्यों और बिल्लियों के भय के बिना चूहे सामने से दौडते थे। घर के तोते दिन रात चीख मारते रहते थे।

आकाश पर एक अपूर्व लंबा धूमकेतु दिखाई पड़ा। यादव बाहर से ढ़ोंग करते थे कि वे आस्तिक हैं। लेकिन अन्दर से वे नास्तिक रहे थे। वे ईश्वर, गुरु और बुजुर्गों को मानते नहीं थे। श्रीकृष्ण यह सब देखते थे और यादव कुल पूर्णतः नष्ट हो जायगा वाले गाँधारी के शाप को वे याद करते रहते थे। पिंडारक के ऋषियों के शाप का भी वे स्मरण करते थे और उनको लगता था कि यादवों का नाश निकट ही है। सूरज नीचे हिलनेवाले पानी में कांप रहा था। वैसे ही श्रीकृष्ण भी सच्चे अर्थों में भयरहित होकर भी भयभीत लगते थे। श्रीकृष्ण ने यह आदेश दिया कि द्वारका में कोई भी मादक द्रव्यों की आदत न रखे और इसकी सूचना भी दी कि जो कोई गुनाह करेगा उसको कठिन दंड दिया जायगा।

इन परिस्थितियों में 'प्रभास' की कथा एकदम समाप्त होती है। सहज समाप्ति तक कथा चलती रहती तो लगता है कि वह रचना जितनी बड़ी है उसके तिगुने आकार की हुई होती। जो अंश पूर्ण हुआ उसमें यादवों के बीच का कोलाहल एवं युद्ध, याने पिंडारक के ऋषियों का शाप, गांधारी का शाप आदि का वर्णन है। फिर सांब के द्वारा जन्म दिये हुए काँटों के मूसल का नाशकारी परिणाम, श्रीकृष्ण के पैर पर लगा हुआ शिकारी का बाण और महान अवतार का अन्त, सबका विस्तार से वर्णन किया जा सकता था। श्री पै ने लिखना आगे बढ़ाया होता तो यह कथा हृदयावर्जक बनती। इसके बारे में विचार करते हुए इस कारण से कन्नड़ साहित्य की जो हानि हुई उसका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। इसके अलावा दूसरा मार्ग भी नहीं है।

श्री पै का आश्चर्यजनक पांडित्य, प्रतिभा की उच्चता और उनके द्वारा वर्णित कृष्णावतार की समाप्ति के बारे में विचार करें तो हम सन्देह में पडेंगे कि दूसरा कोई इस प्रकार के चिरस्थायी चित्र, चमकनेवाली काव्यरचना लिख सकेगा या नहीं।

श्री पै सागर का भव्य समूहगान ध्यान से सुनते थे और उस नीले समुद्र की तेजस्विता, संपन्नता एवं विशालता को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते थे। कविता लिखने की तपस्या में वे हमेशा निरत रहते थे। यह तपश्चर्या उनके संपूर्ण जीवन में रही। यों तो श्री पै ने सागर, नाव,लहरें और नौघाट के बारे में अपनी छोटी बड़ी कविताओं में लिखा है। फिर भी 'प्रभास'काव्य में सागर का महत्वपूर्ण एवं विस्तृत वर्णन मिलता है। उसका विशेष उल्लेख आवश्यक है। इस खण्डकाव्य का एक अंश नीचे दिया गया है -

'हे नील समुद्र, बहते रहो। सिंहगर्जन करते रहो, बिजली एवं

मेघ गर्जन के समान गर्जन करते हुए फूट पड़ो, पूरी पृथ्वी को डुबाने के लिए बहते हुए तट तक आ जाओ और ऐसा न करते हुए लौट जाओ। कभी कभी तुम शान्त लगते हो और हमारे मन को ठंड़ देते हो। कभी कभी तुम उत्तेजित होते हो और हमारे मन को हैरान कर देते हो। तुम संगीत का अनन्त संसार हो। संगीत उत्पन्न करनेवाला एक तार का उपकरण हो जिसके संगीत को सारा संसार हमेशा सुनता रहता है। नाद की लहरों पर अधिकार रहते हुए भी तुम अकेलेपन के स्रोत हो। तुम पानी के सागर हो या दैवी ताल का निवास स्थान? मंथर पर्वत ने दयाहीन होकर तुम्हारा मंथन किया। इस पर तुम दु:खी हो क्या? स्वर्ग के देवों ने तुम्हारे चौदह रत्न चुराये। तो क्या? कितने युगों और कल्पों से तुम बहते रहे हो और क्रोध में आकर गर्जन करते रहे हो? सृष्टि के आदि से अन्त तक पृथ्वी बार बार जन्म लेती रहती है। साम्राज्यों का अभ्युदय होता है और अध:पतन भी। लेकिन सूर्य और चन्द्र जैसे तुम भी परिवर्तन के शिकार नहीं बनते। प्राचीनकाल के समान आज भी तुम बहते हो और गर्जन करते हो। जैसे आज तुम करते हो वैसे भविष्य में भी तुम्हें करना है।

तुम एक असाधारण आकारवाले दर्पण हो। उसमें तूफान के रूप में महान जलप्रलय प्रतिबिंबित है। टूट -फूट एवं दरारों से रहित तुम संपूर्ण दिखाई देते हो। तुम्हारे बहाव एवं क्रोध के कारण समय के देवता, काल तुम्हारे पास आने से डरते हैं। पृथ्वी पर दिखाई पड़नेवाली सृष्टि का पूरा चित्र सच्चे अर्थ में तुम्हारे अन्दर भी दिखाई पड़ता है। संसार की गति का अच्छा खासा ज्ञान जो रखता है ऐसे मनुष्य के समान तुम भाटे के समय शान्त रहते हो और ज्वार के समय गौरव के साथ रहते हो। सभी नदियों का पानी पीकर भी तुम बढ़ते नहीं हो। पृथ्वी पर वर्षा का पानी बहा कर भी तुम सूखते नहीं हो। पृथ्वी पर आक्रमण करते हुए उसे मरुभूमि बनानेवाले मनुष्य का पागलपन तुम्हारे सामने आकर खतम हो जाता है। उष्ण देशों में तुम्हारा रंग काला है और ध्रुवप्रदेशों में सफेद बर्फ जैसा है। तुम जीवन के नमक हो, तुम पुराने हो, बुजुर्ग हो और हमें हमेशा शाश्वतत्व की याद दिलाते हो। तुम कितने लंबे हो, कितने गहरे हो और कितने विस्तृत हो। तुम अच्छी तरह दक्षता के साथ पृथ्वी का घेरा डालते हो। जिस प्रकार खंदक किले की रक्षा करता है वैसे ही तुम पृथ्वी की रक्षा करते हो।'

श्री पै ने सागर का वर्णन गहराई, महत्व एवं भव्यता के साथ किया है। यह वर्णन, गहरा, विस्तृत एवं परिमाणरहित सागर के योग्य ही है। रचना के प्रारंभ का यह वर्णन पाठकों को आश्चर्यचकित कर देता है।

'प्रभास' खण्डकाव्य के महत्त्व के भरपूर प्रमाण इस वर्णन में मिलते हैं।

यह काव्य उन्होंने अपनी दाई, सुब्बम्मा को अर्पित किया है।

गाँधीजी का अन्तिम दिन - देहली

ई. स. १९३४ में देहली में महात्मा गाँधी के द्वारा किए गए २१ दिनों के उपवास को आधार बनाकर काव्य लिखते समय श्री पै ने गाँधीजी की तुलना पृथ्वी पर भक्तिपंथ का प्रचार करनेवाले शुकऋषि से की है। इस तुलना को चालू रखते हुए श्री पै गाँधीजी को बुद्ध के जैसे कहते हैं। उसी प्रकार ईसा और मुहम्मद के जैसे भी कहते हैं। जहाँ तक हम समझते हैं, श्री पै गाँधीजी को गुरु मानते आए थे। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम में अपने को समर्पित करने के लिए वे नौसारी चले गए थे। सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों को लेकर गान्धीजी ने स्वतन्त्रता संग्राम को एक दैवी एवं विलक्षण स्वरूप दे दिया था। उसका फल संन्यास एवं आत्मत्याग ही रहा था। गाँधीजी के जीवन के इस आदर्श ने उस समय के युवकों को जैसे आकर्षित किया वैसे श्री पै को भी प्रारंभ से ही मोहित किया। इस प्रकार उनकी अनेक कविताओं में गाँधीजी की प्रशंसा मिलती है। जिस प्रकार भारत का विभाजन अनेक लोगों के लिए दुःखदायक रहा उसी प्रकार गाँधीजी को भी बड़े दुःख का रहा था। इसलिए विभाजन के कारण दुःख एवं यातना में पड़कर आँसू बहानेवाली जनता के दुःख को दूर करने के लिए उन्होंने नौखाली की ओर एक प्रयाण शुरू किया। चारों ओर फैली हुई दाहक जातीय हिंसा के कारण पाकिस्तान से लाखों शरणार्थी यहाँ पहुँच गए। उनको अपने घर, संपत्ति और बच्चों को खोना पड़ा। उनके शरीर में उत्पन्न जबरदस्त शक्ति के बल पर और मानो पागलपन से पीड़ित मन को लेकर वे पाकिस्तान से दौड़ते हुए आए। उनकी संपत्ति उनके शरीर पर पहने हुए वस्त्र मात्र थी। रात भर वे ठंड के चपेटे में थे तो दिन के समय सूर्यातप में अपने को जलाते रहे थे। इसी समय किसी पागल युवक ने बम के ज़रिए गाँधीजी का अन्त करने का प्रयत्न किया। भाग्य से किसीकी कोई हानि नहीं हुई। यह आनेवाले भविष्य में घटनेवाली घटना का शकुन बतानेवाली एवं गाँधीजी को अदृश्य संकटों का एक संकेत देनेवाली थी। इसे समझते हुए भी सरकार के द्वारा दी गई सूचनाओं को टालते हुए गाँधीजी दुःख एवं पीड़ा भोगनेवाली जनता को सान्त्वना प्रदान करने के लिए निरन्तर कार्यरत रहे। अपनी रक्षा के बारे में उन्होंने सोचा तक नहीं। 'दोनों आँखों की दृष्टि समान होती है। इसलिए ईश्वर अच्छों और बुरों को समान दृष्टि से देखते हैं। इस परिस्थिति में मेरे लिए मित्र और शत्रु समान

हैं।' इस प्रकार सोचते हुए वे कभी अस्वस्थ नहीं हुए।

फिर दस दिनों के अन्दर एक दिन जब गाँधीजी सुरक्षा के बिना ही सन्ध्या के समय प्रार्थना स्थल जा रहे थे। उस समय नाथूराम गोडसे नाम के किसी पागल युवक ने गाँधीजी पर गोली चलाई। 'हे राम, हे राम' कहकर नीचे गिरते हुए गाँधीजी चल बसे।

श्री पै यह शोकगीत इस प्रकार गाते हैं –

'हे देव, यह तुमने क्या किया? प्रभो ! हाय ! पापियों में पापी, तुमने सच्चे अर्थों में उन पवित्र बोधिसत्व को मार डाला। समस्त संसार में प्रकाश देनेवाले सूर्य के लिए तुम राहु बन गये। संसार में भला बुरा समझानेवाली बुद्धि को तुमने गला घोंटकर मार डाला। सारी मनुष्यजाति के पीने के पानी को तुमने अपवित्र किया। हाय ! दुष्टता की मूर्ति !तुम स्वर्ग के कल्पवृक्ष की जड़ें काटने की कुल्हाड़ी बन गये।'

'हे दैव, तुमने यह किसको मारा ! तुम अपने को हिन्दू कहते हो और हिन्दू को ही तुमने मार डाला ! अपने को भारतीय कहनेवाले तुमने मनुष्य जाति का मुकुट ही निकाल फेंका। हाय ! पाप की मूर्ति ! पूरी मनुष्यजाति के लिए सहारा बने हुए उनके विश्वस्त मित्र को तुमने जीते जी मार डाला ! उस महात्मा के समान केवल वे ही रहे थे। दूसरा कोई नहीं था। अरे ! पापी आत्मा, जब तुमने उन्हें मारने का निश्चय किया तेरे विवेक ने तेरे कलेजे को मरोड़ क्यों न डाला?'

'प्रतिदिन तीन बार तुम्हें जगानेवाले मुर्गे का गला तुमने घोंट दिया। तुम्हारे द्वारा चलाई गई गोली के समान तुम भी कठिनहृदय एवं अंधे हो क्या? विषैले सर्प के समान तुमने हिन्दुत्व और भारतीयत्व को काट दिया। इस संसार में तुमने भारतीयों का मान नष्ट किया। तुम्हारे द्वारा किए गए इस पापकर्म से एक हिंस्र पशु भी दूर रहेगा। भरपूर दूध देनेवाली पवित्र श्याम रंग की गाय को जिसने अभी हाल ही में नये बछड़े को जन्म दिया है, मार कर तुमको कैसा लग रहा है? एक नास्तिक भी ऐसा जघन्य पाप नहीं करेगा।

हिमालय के समस्त शिखर तुम्हारे द्वारा किए गए इस जघन्य पाप को छिपा नहीं सकते। सागर का समस्त पानी भी इस पाप को धो नहीं सकेगा। आग उतनी गरम नहीं है कि वह इस पाप को जलाए। मैं इसे भूलना चाहता हूँ। लेकिन हे दैव ! मेरी आयु इतनी लंबी नहीं है।'

'ओह ! लहरों की अप्सराएँ, पर्वतों की यक्षियाँ, गन्धर्व और नगरों के ईश्वर भिन्न भिन्न स्वरों में महात्मा की कीर्ति गाते हुए विलाप कर रहे

हैं। वीणा के , मुरली के, और ताल के संगीत के साथ एक स्वर में, एक राग में, गान करें और विलाप करें। महात्मा के लिए विलाप करें। हमें सूत कातने, कपड़ा बुनने और अपने हाथों से बुना हुआ कपड़ा पहनने की शिक्षा जिन्होंने दी उस बुनकर के लिए हम विलाप करें। जिसने राजनीति और आध्यात्मिकता को साथ साथ विकसित किया संसार के धर्मरथ को चलानेवाले उस महात्मा के लिए हम विलाप करें। अहिंसा के वैद्य की कीर्ति का गायन करें जिस वैद्य ने संसार की समस्त व्याधियों को अहिंसा और विश्वास का एक ही औषध प्रदान किया। शोषितों के आचार्य के लिए शोक करें जिन्होंने अस्पृश्य कहे जानेवाले हमारे भाइयों को हरिजन कहकर आश्रय प्रदान किया। हिन्दू धर्म को तारण करनेवाले उस महात्मा के लिए विलाप करें। सत्य के विषय में शोध करनेवाले उस महान पंडित की कीर्ति गाएँ।

दुःख की इस होली में कोटि कोटि जनों की हत्या हो रही है। हे सागर ! दुःख की इस घड़ी में इन लोगों के अश्रुओं के लिए पर्याप्त पानी दे दें। वर्षा के प्रारंभ का मेघगर्जन ! उन्हें अन्तिम उद्‌गार प्रदान करें कि वे दुःख के शिखर पर पहुँचकर फूट फूट कर रोएँ। हे ओलों की वर्षा ! उनको उच्छ्‌वास छोड़ने की शक्ति प्रदान करें कि वे कलेजा फाड़कर विलाप करें। हे महाशेष ! उनकी कीर्ति गाने के लिए हमें हज़ारों जीभ दे दें। भारताम्बे ! तुमने हमारे कुल का सबसे बड़ा कल्याणकारी मनुष्य खो दिया और तू चन्द्रहीन आकाश की भाँति हो गई। तुम्हारा मुखड़ा अश्रुरूपी नक्षत्रों से सजाया गया है। हे प्यारी माँ !हमारा कलेजा तोड़कर आनेवाली आवाज़ को सुनने का प्रयत्न करो।'

यहाँ पर 'देहली' नाम के खण्डकाव्य का टुकड़ा एकदम समाप्त हो जाता है। दूसरे खण्डकाव्यों से बढ़कर दुःख की अभिव्यक्ति करनेवाला यह गीत, काव्य में नदी के समान प्रवाह उत्पन्न करता है। स्वयं कवि इसे दुःख का गीत एवं अश्रुओं का काव्य कहकर पुकारते हैं। कवि कहते हैं कि भारतांबा को स्वयं अपनी अश्रुपूर्ण आँखों से इस गीत को सुनना है।

ऊपर कहे गये पूर्ण और अपूर्ण खण्डकाव्य के टुकडों में महान काव्यों की शैली एवं लक्षण देखने को मिलते हैं। खण्डकाव्य के इस अंश में हम खण्डकाव्य के महत्वपूर्ण बीज देख सकते हैं। इसमें क्षणिक घटनाओं का आधार लेकर सूक्ष्म एवं नाजुक विषयों को भी गंभीरता के साथ अलंकारों की सहायता से वर्णन किया गया है। और ऐसा करते हुए पाठकों के मन को हठात् आकर्षित करने का प्रयत्न हुआ है। इस प्रकार गोविन्द पै कन्नड़ भाषा के महान कवियों के बीच रहकर प्रशंसा के पात्र बने हुए हैं।

अध्याय - ४

'हेब्बेरळु' - दृश्यकाव्य (अंगूठा-एक नाट्य)

पहले ही कहा जा चुका है कि बालकपन से ही श्री पै ने कविता लिखने का प्रारंभ किया। कविता लिखने की सहज कुशलता उनमें थी। आवश्यक कुशलता, साहित्यिक विद्वत्ता, छन्द एवं अलंकारों के प्रयोग की निपुणता आदि ने इसकी पूर्ति की। 'गिळिविंडु', 'गेलगोथा' जैसी कृतियाँ लिखते हुए उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में महान कीर्ति अर्जित की। 'द्वितीयाक्षरप्रास' को तोड़ते हुए कविता लिखने की नई पद्धति उन्होंने खोज निकाली। अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त थोड़े समय के लिए 'नन्दादीप' की चौदह पंक्तियों वाली कविताओं (सॉनेट) और कुछ अन्य कविताओं को छोड़ दें तो उन्होंने कविताएँ लिखना बन्द किया और वे शोध में लगे रहे। इस समय श्री पंडरेश्वर ने इस पंडित पक्षी (पंडितवक्कि) से पत्रों के ज़रिए उम्मीद रखने की विनती की । फलस्वरूप श्री पै ने अपनी काव्यकुशलता की मानो परीक्षा करने के व्याज से सर्वप्रथम 'हेब्बेरळु' (अंगूठा) नाम की एक नाट्य रचना प्रस्तुत की। ई. स. १९४६ में जब वह प्रकाशित हुई तब श्री पै को एकदम कन्नड़ भाषा के उस समय के उत्तम कवियों के बीच खास दर्जा दिया गया। अगले वर्ष माने ई. स. १९४७ में 'वैशाखी' प्रकाशित हुई और उसके ज़रिए श्री पै की कीर्ति का समर्थन हो गया। आगे के दो वर्षों के बाद ई. स. १९४९ में श्री पै को कन्नड़ भाषा के राष्ट्रकवि की मान्यता प्रदान की गई। यह मान्यता उनके लिए उचित ही थी। उनको कन्नड़ साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष की मान्यता भी प्राप्त हुई।

'हेब्बेरळु' का विषय महाभारत के आदिपर्व में वर्णित एकलव्य की कथा से लिया गया है। महाभारत की मूल कथा का जैसे का तैसा वर्णन किए बिना कवि अपनी कल्पना की सहायता से उचित रूप में इधर उधर थोड़े परिवर्तन करते हुए आगे बढ़े हैं। मूल कथा में हिरण्यधनु एकलव्य के पिता हैं। 'हेब्बेरळु' में वे एकलव्य के चाचा हैं। मूल कथा की भाँति एकलव्य जन्म से शिकारी होने के कारण द्रोणाचार्य उसे धनुर्विद्या सिखाने से कतराते हैं। एकलव्य द्रेण का मिट्टी का पुतला बनाकर उसके सामने धनुर्विद्या का अभ्यास करता है।

एक दिन कुरु राजकुमार शिकार खेलने के लिए बाहर चले

गये। इस समय उनका शिकारी कुत्ता मुँह में तीर भरा हुआ वापस आ गया। यह देखकर उस कुशलता के पीछे कौन है, इसे खोजते हुए वे चले और उन्हें मालूम हुआ कि यह एकलव्य ने किया है। उन्होंने उससे पूछा कि ऐसी धनुर्विद्या उसने किससे पढ़ी? एकलव्य ने उत्तर दिया कि वह द्रोणाचार्य का शिष्य है। द्रोणाचार्य ने पहले ही अर्जुन से कहा था कि उनके शिष्यों में कोई भी अर्जुन को मात नहीं कर सकता। अर्जुन तुरन्त द्रोण के पास आया और सारी घटना उन्हें कह सुनाई । द्रोणाचार्य अपने शिष्यों के साथ एकलव्य के पास पहुँच गए और उन्होंने इसके बारे में उससे पूछा। स्वयं द्रोण का शिष्य कहकर एकलव्य ने बात कबूल की। तब द्रोण ने अपनी गुरुदक्षिणा के रूप में एकलव्य के दाहिने हाथ का अंगूठा माँगा। एकलव्य ने बिना विलंब के अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काटकर द्रोणाचार्य के सामने रख दिया।

द्रोणाचार्य मानते थे कि अंगूठा काटने से धनुर्विद्या में एकलव्य की कुशलता स्थगित हो जायगी। मूल कथा के अनुसार द्रोणाचार्य ने अर्जुन को संसार के सभी धनुर्धरों में श्रेष्ठ बनाने के लिए ऐसा किया था। लेकिन 'हेब्बेरळु' नाट्यरचना में द्रोण एक भीलकुमार को धनुर्विद्या पढ़ाकर आप ही राजा का विरोध मोल लेना नहीं चाहते थे। यहाँ द्रोणाचार्य का सन्देह, क्षण में की गई एकलव्य की प्रतिक्रिया, अपना अंगूठा काटकर द्रोणाचार्य को देना और ऊँच और नीच के बीच याने आर्य और अनार्य के बीच चलनेवाले द्वेष एवं उसके परिणाम को लेकर द्रोणाचार्य का भय आदि का चित्रण सफलता के साथ हृदयावर्जक रूप में किया है। ग्रीक नाटकों के गायक समूह के समान 'गोंदलदवरु' नाम के समूह की कल्पना करते हुए और इसके ज़रिए नाटक की विस्तृत जानकारी के लिए उपयोगी तत्वों की सूचना सहृदय पाठकों को देने का प्रयत्न करते हुए कवि ने नाटकीय प्रभाव को और भी बढ़ा दिया है। एकलव्य को धनुर्विद्या पढ़ाने से द्रोण कतराते हैं। लेकिन वह भीलकुमार अपने प्रयत्न से धनुर्विद्या का अभ्यास करता है। अर्जुन उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला द्रोण का शिष्य है और उसके संपूर्ण विकास को अड़चनों से रहित निरन्तर आगे चलनेवाला बनाने का एकमात्र संकल्प लेकर द्रोणाचार्य एकलव्य का अंगूठा माँगता है। क्या यह उचित है? इस प्रश्न की चर्चा करते हुए कवि परस्पर विरोधी बातों, जातिद्वेष से उत्पन्न संघर्षों एवं टक्कर उत्पन्न करने की समस्याओं को लेकर दर्शकों को उत्तेजित करते हैं। परिणामस्वरूप यह नाटक काव्यकला की

दृष्टि से श्रेष्ठ बना है।

'हेब्बेरळु' चार दृश्योंवाला एक काव्यनाट्य है। २८० पंक्तियोंवाले इस नाट्य के नौ चतुष्पदियों को छोड़ें तो शेष भाग 'सरल रागले' नाम के छन्द में लिखा गया है। कवि उस छन्द का नाम 'झंपे' कहते हैं। हिन्दी भाषा के महान कवि तुलसीदास के रामायण में छन्द कहकर जिसका प्रयोग किया गया है उसी वर्ग में यह छंद भी आता है।

हिरण्यधनु भीलों के मुखिया हैं। वे हस्तिनावती के दस 'गवुड' (१२० मील) दूर एक गाँव में रहनेवाले हैं। एकलव्य उनके बड़े भाई का पुत्र है। उसने पहले ही अपने माता पिता से धनुर्विद्या का अभ्यास किया। लेकिन वह उसमें पांडित्य ग्रहण करने को उत्सुक था। 'मैं आकाश से उड़नेवाले पक्षी को गोली मारकर अपने पैरों तक ला सकता हूँ। नये नये जन्मे बच्चे को उसकी माता से ले आकर पोषण कर सकता हूँ। लहरों के अन्दर तैरनेवाली मछली के बरछी से दो टुकड़े कर सकता हूँ। मेरे मित्र के हाथ पर घाव किए बिना ही उस पर रखे हुए गुसबॉरी फल के दो टुकड़े कर सकता हूँ।' इन पंक्तियों को दोहराते हुए एकलव्य सीटी बजाता हुआ और अपने धनुष की डोरी खींचता हुआ मंच पर प्रवेश करता है। अपने शरीर पर रंगों के पाट के आकार ग्रहण करने के पहले ही बाघ का बच्चा जिस प्रकार पेट के दर्द से कष्ट उठाता रहता है उसी प्रकार उसने हस्तिनावती में जाकर द्रोणाचार्य के पास से धनुर्विद्या का अभ्यास करने की इच्छा की। एकलव्य का यह निश्चय हिरण्यधनु के लिए चिन्ता का कारण बना। उसको निश्चित रूप से मालूम था कि आर्य लोग अनार्यों को धनुर्विद्या नहीं सिखाएँगे। उन्हें इस बात का भय था कि एकलव्य हस्तिनावती जायगा तो थोड़े बहुत संकट आ जाएँगे। उत्कंठा से युक्त होकर उन्होंने कहा - 'मेरे बेटे, तुम शहद पीने की इच्छा करते हो। तुम इस बात को भूल रहे हो कि शहद की मक्खियाँ घुसनेवाले के शरीर पर डंक मारती हैं। द्रोणाचार्य के कार्य में अपना नाक मत घुसेडो। जो धनुर्विद्या मैंने तुम्हें सिखाई है वह हज़ार वर्षों के लिए भरपूर है। खड़े हुए हाथी के समान इस वन में एक सरल जीवन जीने का प्रयत्न करो।' हिरण्यधनु ने इस प्रकार उपदेश तो दिया, लेकिन एकलव्य हठ करने लगा और उसने द्रोण के पास जाने का विचार कभी नहीं छोड़ा। अन्त में हिरण्यधनु एकलव्य को द्रोण के पास भेजने के लिए तैयार हुए। उन्होंने कहा - 'बेटा, तू जा, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करेंगे।' हमारे कुलदेव के सामने मैं एक दिया जलाता हूँ और दूध समर्पित

करता हूँ। 'मारी' के लिए एक भैंस को बलि चढ़ाता हूँ। हमारे वन के एवं जल के देवताओं को मैं शराब दे देता हूँ। हमारे मृत पूर्वजों के लिए भेड़ों को और मुर्गों को समर्पित करता हूँ। हमारी टोली के सभी लोगों को भोज देता हूँ। तू संसार का महान धनुर्धर बन जाओ।' जिस प्रकार जड़ें पेड़ की रक्षा करती हैं, वैसे ही हिरण्यधनु भीलों की रक्षा करते थे और जिस प्रकार सर्प अपने फणों पर रत्न की रक्षा करता है, जीभ स्वाद को रखती है, वैसे ही वे एकलव्य की रक्षा करते थे। उन्होंने एकलव्य को आशीर्वाद दिया और उसे रवाना किया।

हस्तिनापुर जाने के विचार में एकलव्य का मन उम्मीदों से भरा हुआ था। अपने धनुष की डोरी खींचते हुए और सीटी बजाते हुए वह तैयार हुआ। जिस प्रकार आकाश पर छोटा सा गरुड पक्षी स्वतन्त्रता के साथ उड़ता चलता है वैसे एकलव्य भी चला।

यह कथा पहले अंक की है। पूरी घटनाएँ भीलों के गाँव में गंगातट पर घटती रहती हैं। घास से बनी छोटी सी झोंपड़ियाँ, घर के सामने घास चरनेवाली भेड़ बकरियाँ और गायें, छप्परों पर चींव चींव करनेवाले कबूतर, घनुष बाण तैयार करनेवाले लुहार, धनुष की डोरी बाँधनेवाली एवं चरखे पर सूत कातनेवाली स्त्रियाँ आदि पहले अंक की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। दूसरे अंक में धनुर्विद्या सिखानेवाले द्रोण के सैनिक विद्यापीठ के सामने गंगा नदी के तट पर खुला मैदान दिखाई पड़ता है। यह हस्तिनावती के राजमहल से थोड़ी दूर पर है। सैनिक विद्यापीठ का कोलाहल सुनाई पड़ रहा है। पूर्वाह्न का समय। द्रोणाचार्य अभिमान से मन ही मन कहते हैं -

'कुरुवंश के राजकुमारों को मैंने युद्ध संबन्धी अच्छा प्रशिक्षण दे दिया है। वे गज, रथ, तुरग, पदाति के युद्ध में कुशल हैं। शब्दों में ओंकार के समान राजकुमारों के बीच अर्जुन श्रेष्ठ रहा है। दिया बुझने पर भी वह खाना खा सकता है। रात के अन्धकार में भी वह बराबर तीर चला सकता है। वृक्ष के पत्ते के पीछे छिपे हुए पक्षी को तीर चलाकर उसने नीचे गिरा दिया। उद्गातृ के ज़रिए ऊँचे स्वर में गायन करते हुए सामवेद के प्रचार करने के समान, दैवी शक्ति लेकर चलनेवाले तीरों के ज़रिए धनुष के द्वारा कीर्ति अर्जित करने के समान, अन्तिम हवन द्रव्य को ग्रहण करके धधकनेवाले यागाग्नि के समान अर्जुन के ज़रिए मेरी कीर्ति दूर दूर तक

व्याप्त हो जाएगी।'

हिरण्यधनु शराब, बकरा, भैंसा आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं तो द्रोणाचार्य सामवेद, दैवी शर, अन्तिम हवनद्रव्य आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार 'हेब्बेरळु' रचना में हमें पात्रों एवं परिस्थितियों के अनुरूप गोविन्द पै की शब्दप्रयोग संबन्धी कुशलता के खूब प्रमाण मिलते हैं। जब द्रोणाचार्य मन ही मन यह कह रहे थे तब एकलव्य वहाँ आ पहुँचा। उसने द्रोण के सामने साष्टांग नमस्कार किया और द्रोण ने उसे अनुग्रह प्रदान किया। एकलव्य ने धनुर्विद्या में पारंगत द्रोण से अपने को धनुर्विद्या की शिक्षा देने की विनती की। राजकुमारों ने हाँ कहा होता तो द्रोणाचार्य उसे शिक्षा देने के अनुकूल थे। द्रोण की इच्छा के अनुसार धर्मराज ने एकलव्य को शिक्षा देने की अनुमति प्रदान की। कर्ण अपने मूल एवं परिस्थितियों को भूलकर एकलव्य को धनुर्विद्या की शिक्षा देने के प्रतिकूल रहे। कौरवों ने उसका पक्ष लिया। अर्जुन पृथ्वी खरोंचते हुए नीचे की ओर देखकर खड़े हो गए। द्रोणाचार्य संदेह में पड़ गए। यदि वे एकलव्य को शिष्य के रूप में स्वीकार करते तो कुरुवंश के बुजुर्गों की प्रतिक्रिया क्या होगी इसके बारे में उन्हें चिन्ता रही थी। एकलव्य ने द्रोण से पूछा कि अपनी माँग पर क्या निर्णय लिया गया है । द्रोणाचार्य उत्तर देने के लिए बाध्य रहे। उन्होंने कहा -- ' तू भील है, अनार्य है, अरे बच्चे, तू पंचम वेद माने जानेवाले धनुर्वेद का शिक्षण लेने के योग्य नहीं है। एकलव्य ने पूछा - 'अनार्य क्या मनुष्य नहीं हैं?' एकलव्य की बोलने की इस शैली को देखकर द्रोणाचार्य को आश्चर्य हुआ। अपने पांडित्य के सहारे उन्होंने अपने तर्कों का समर्थन किया। उन्होंने पूछा - 'पक्षियों में गरुड पक्षी और कौए के समान, जानवरों में बाघ एवं बिलाव के समान आर्य एवं अनार्य भिन्न भिन्न रहते हैं। गरुड पक्षी निश्चल एवं पसारे हुए पंखों के साथ उड़ने का शिक्षण क्या कौए को देता है? बाघ झपट कर अपने शिकार को ग्रहण करने का शिक्षण क्या बिलाव को देता है? फिर भी युद्ध के दाव पेच को समझनेवाले पंडित द्रोणाचार्य यकायक उत्तेजित हुए। उन्होंने पूछा - 'पहली बात यह है कि मैं एक ब्राह्मण हूँ। एक शिकारी के बच्चे को शास्त्र पढ़ाने का कार्य करना क्या मेरे लिए उचित है? यही नहीं, क्षत्रियों के अनुग्रह से मैं अपना उदरपूरण करता हूँ। उनके राजनैतिक विश्वासों के विरुद्ध जाना क्या मेरे लिए उचित है? जहाँ सामाजिक रीति ब्राह्मण द्वारा शिकारी को दिये जानेवाले शिक्षण पर रोक लगाती है तो मैं उसका अतिक्रमण कैसे कर सकता हूँ?'

एकलव्य ने भी अपना हठ नहीं छोड़ा। उसने तर्क वितर्क किया - 'प्रभो, आग अपने हृदय में धुआँ संभाल कर रखती है न? पर्वत अपने सिर पर घास रखता है न? गंगा में बहाई हुई शराब गंगा का भाग होती है न? सच्ची बात यही है कि अपने इन तर्कों के ज़रिए उसने द्रोण को चुप कर दिया। द्रोणाचार्य ने एकलव्य की बुद्धि की मन ही मन प्रशंसा की। लेकिन इसे बाहर प्रकट न करते हुए उन्होंने कहा - 'धुआँ आग को जलने से रोकता है। पर्वत घास में लगी हुई आग के कारण जलकर काले बन जाते हैं। गंगोदक में तैयार की गई शराब कौन पीता है?' अन्त में द्रोणाचार्य ने मान लिया कि उनकी स्थिति कैंची के बीच पड़े हुए हाथ के समान हो गई। द्रोणाचार्य ने खेद प्रकट किया कि आर्यों के सच्चे धार्मिक और सामाजिक नियमों को तोड़ने की शक्ति उनमें नहीं है। जब एकलव्य लौटने को हुआ तब द्रोणाचार्य ने उसको अनुग्रह दिया और कहा - 'ईश्वर तेरी रक्षा करें। तू एक कुशल धनुर्धर होगा। तेरी लंबी आयु हो। तेरा प्रयाण सुखपूर्ण हो।' एकलव्य को लगा - 'मनुष्य के सहायता करने से इनकार करने पर भी ईश्वर मेरी सहायता करेंगे। पढ़ने का दृढ़ विश्वास सबसे महत्वपूर्ण होता है। गुरु केवल एक साधन मात्र है। पढ़ने का संकल्प हो तो मिट्टी की एक मूर्ति भी शिक्षा दे सकती है।' उसने धनुर्विद्या के सारे तंत्र पढ़ने का निश्चय किया और सीटी बजाकर धनुष की डोर खींचते हुए वह वहाँ से चला गया।

यहाँ दूसरा अंक समाप्त होता है। द्रोणाचार्य के मन का प्रखर संघर्ष यहाँ वर्णित है। उनके मन ने कहा कि उत्सुकता के साथ पढ़ने आए हुए बच्चे को सिखाना चाहिए था। लेकिन द्रोण ने न माना। उन्हें इसका भय था कि उस भील के बच्चे को यदि वे शिक्षा देंगे तो समाज एवं सामाजिक रीति का विरोध मोल लेना होगा। वर्षों पहले वे जब घोर दारिद्र्य का अनुभव कर रहे थे उस समय उनके सहपाठी द्रुपद राजा से उन्होंने सहायता माँगी। लेकिन राजा द्रुपद ने उनका अपमान किया। भाग्य से उन्हें कुरुवंश की छत्रच्छाया में आश्रय मिला। यह आश्रय यदि दूर हो तो फिर एक बार उन्हें वही दुःख भोगना पडेगा। इस भय से वे पीड़ित रहे होंगे। फिर भी उन्होंने एकलव्य को अनुग्रह दे दिया। यह उसके लिए प्रेरणाप्रद बन गया। उसे विश्वास हो गया कि पढ़ने का दृढ़ संकल्प हो तो मिट्टी की मूर्ति से भी शिक्षा मिल सकती है। तीसरे अंक का पहला भाग भीलों के गाँव में दिखाया गया है। विश्वास एवं भक्ति से द्रोण की मिट्टी की एक मूर्ति के सामने एकलव्य धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। एकलव्य

का दृढ़ निश्चय एवं प्रयत्न देखकर हिरण्यधनु चिन्तित हुए। उन्होंने मन ही मन कहा - 'वह कहता है कि मिट्टी की मूर्ति के सामने बाण छोड़कर धनुर्विद्या का अभ्यास करता है। हमारा बच्चा एकलव्य क्या पागल हो गया है? वह किसलिए इस प्रकार समय व्यर्थ गँवाता है?' क्या मैं ऐसे ही बाण छोड़ दूँ?' वह मन ही मन सोचता है। 'नहीं इस प्रकार छोड़ना ही उचित रहेगा ...... वह स्वयं उत्तर देता है। मृगतृष्णा से कुआँ खोदने, ग्रानाइट के बैलों को घास देने और अपनी ही छाया से बातें करते रहने के समान इस विचित्र पागलपन का शिकार वह कैसे बन सकता है? हमारे खाने के लिए पक्षियों को, जानवरों को और मछलियों को तीर मारकर गिराना सीखे तो क्या यही बस है न? हमारे मुर्गे एवं मुर्गियों को मार डालनेवाले गीदड़ों एवं बाजों पर तीर चलाना सीखे तो क्या यही बस है न? हमारे जानवरों की हत्या करनेवाले भेड़ियों एवं बाघों को मारने की कुशलता दिखाई जाय तो वह बस नहीं है क्या? प्रवीण धनुर्धर बनने की इच्छा ही क्यों? पड़ोस के शिकारियों से हमें कोई झगड़ा नहीं है। युद्ध की ज़रूरत भी नहीं है। ऐसा साहस वह क्यों कर रहा है? मुझे नहीं मालूम।' हिरण्यधनु को इस बात का भय होने लगा कि उसके बच्चे पर कहीं संकट न आ पड़े।

सीटी बजाकर धनुष की डोरी खींचते हुए एकलव्य वहाँ पहुँचा। अपने गुरु के पास जाने और उन्हें प्रणाम करते हुए भेंट समर्पित करने के लिए उसने अपने चाचा से अनुमति माँगी। हिरण्यधनु ने पूछा - 'तूने उस सर्प के बिल में जाकर बाँसुरी बजाई। इतना बस है न? आगे उसके बिल में लाठी घुसेड़ते हुए उसे उकसाना उचित है क्या? तू भेंट देना चाहता है? यदि वह तेरा हाथ माँगे तो तू क्या करेगा?' एकलव्य ने तुरन्त कहा - 'मैं हाथ काटकर उन्हें समर्पित करूँगा। मेरे चाचा, यह धनुष उनका है। यह हाथ भी उनका है। जिस दिन मैंने धनुर्विद्या सीखनी शुरू की उस दिन मैंने अपना हाथ उन्हें समर्पित कर दिया। तब से लेकर यह हाथ मेरा नहीं रहा। जब वे लौटा देंगे तब मैं स्वीकार करूँगा। नहीं तो मैं उन्हींको समर्पित करूँगा। उनके मार्गदर्शन में जो सन्तोष मुझे मिला है वह मेरे लिए बहुत है। उनके प्रति मेरा जो ऋण है उसे चुकाने के बाद ही मुझे सन्तोष होगा, यदि मेरा दाहिना हाथ ही क्यों न देना पड़े? मेरा तो बाँया हाथ है ही। मैं तलवार से काट सकता हूँ और दण्ड से मार सकता हूँ। पैर से धनुष दबाकर दाँतों से डोरी खींचकर बायें हाथ से तीर मार सकता हूँ। वैसे शिकार करता ही रहूँगा। मुझे आप अनुमति दे दें। मैं जाकर तुरन्त लौट आऊँगा।'

हिरण्यधनु जानते थे कि यह अपने खेत में काम करते हुए दूसरे को भाड़ा देने के समान है। एकलव्य उनके पीछे पड़ गया और हिरण्यधनु अनुमति दिये बिना नहीं रह सके। आँखों से आँसू बहाते हुए उन्होंने एकलव्य को अनुमति दी। उन्होंने कहा - ' जा और जल्दी से लौट आ। ईश्वर तेरी रक्षा करेंगे। जा और तेरे सिर का फूल मुरझाए बिना सुरक्षित होकर लौट आ।'

हिरण्यधनु का मन यह सोचते हुए अस्वस्थ रहा कि कुछ न कुछ अनर्थ अवश्य होगा। इसके अलावा थोड़े दिनों से विपत्ति की सूचना देनेवाली आश्चर्यजनक घटनाएँ होने लगीं। इसलिए एकलव्य के जाने बिना ही हिरण्यधनु उसके पीछे पीछे चले। वे एकलव्य को अकेले नहीं छोड़ सके। एकलव्य और द्रोणाचार्य के बीच होनेवाला वार्तालाप सुनने के उत्साह से वे हिलनेवाले दाँतों के बीच चलनेवाली जीभ के समान एकलव्य के पीछे पीछे गये। छिपे हुए भी वे सूक्ष्म रूप से देखते रहते थे। चूँकि द्रोणाचार्य आर्य वर्ग के हैं इसलिए उनके भ्रातृव्य पर कुछ संकट आ जायगा, इसका उन्हें डर था। यहाँ पर तीसरा अंक समाप्त होता है। भीलों के गाँव के पास मैदान में बरगद के पेड़ के नीचे मंच पर द्रोणाचार्य के प्रवेश से चौथा अंक शुरू होता है। उन दिनों भारत की विशेष स्थिति के कारण द्रोणाचार्य का मन बहुत ही अशान्त रहा था। आर्यों और अनार्यों के बीच चलनेवाले संघर्ष, उनके शिष्य कौरव और पांडवों के बीच दिखाई पड़नेवाली ईर्ष्या यह सब उनके मन को पीड़ित करता था। उन्होंने सोचा -

'भारत का भविष्य अन्धकार में है। ईर्ष्या, द्वेष, जाति भावना, समूह के संपन्न एवं दरिद्र लोगों के बीच का अन्तर आदि दिन ब दिन बढ रहे हैं। आर्य ब्राह्मण को अपनी विद्या अनार्यों को सिखाने की अनुमति नहीं है। अनार्यों से मिलना रोका गया है। सभी अर्थों में आज आर्य अनार्यों के समान रहे हैं। फिर ये अशुभ हठ एवं अन्तर किसलिए? कोयल का मधुर स्वर सुनकर भी क्या तुम उसे कौआ कहोगे? 'सब कुछ ब्राह्मणों का है'वाला पवित्र कथन क्या केवल हमारे लिए है? क्या यह दूसरों पर भी लागू नहीं किया जा सकता? जितना जल्दी हो सके आर्यो और अनार्यों को मिलाना है। आज का हमारा धर्म यही है। यही हमारा कर्तव्य है। यही हमारे आर्यत्व की कसौटी है। अच्छा और बुरा सोना मिलकर राजमुकुट को शोभित करता है । अंजलि में रखे हुए फूल समान रूप से दोनों हाथों को सुगन्धित करते हैं। उसी प्रकार यदि हम अनार्यों को भी अपने बीच

स्थान देकर आपस में मिल कर रहें तो इस बात में सन्देह नहीं है कि भविष्य में हमारे समाज का कल्याण एवं प्रगति आसान हो जायगी। नहीं तो जिस प्रकार अतिवृष्टि का परिणाम प्रलय और फसल का सड़ना होता है उसी प्रकार उच्च जाति की प्रबलता सभी का नाश कर देगी। मेरा कहना कौन सुनेगा? महान युद्ध के बगैर ये संघर्ष खत ्न नहीं होंगे। हमें इसमें सहायक नहीं होना चाहिए। कौरवों और पांडवों के बीच ईर्ष्या की आग धधक रही है। इसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता कि वह दावाग्नि का रूप कब लेगी?' जब द्रोणाचार्य इस प्रकार सोच रहे थे तब अर्जुन वहाँ आ पहुँचे। यह देखकर द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य से पूछा - 'तुम उदास क्यों हो? शिकार का तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ हुआ क्या? कौरवों से झगड़ा हुआ क्या? कौरवों और पांडवों के बीच जलनेवाली ईर्ष्या की इस आग को बुझा दो। नहीं तो हमारे देश का नसीब कैसा होगा? क्षत्रियों का वर्ग ही नहीं रहेगा। धर्मपुत्र युधिष्ठिर को तुम्हारे बीच के झगड़े को देखने की इच्छा नहीं है। तुम्हें थोड़ा और सहनशील बनना है।' फिर अर्जुन ने अपना दुःख प्रकट किया - 'मैं तुम्हारा प्रिय शिष्य कहने लायक नहीं हूँ।' तब अर्जुन को आश्वासन देते हुए द्रोणाचार्य ने कहा -'तीर धनुष को छोड़कर जाते हैं क्या? आँखों की पुतली आँख के लिए भार बनती है क्या? तुम मेरे वारस शिष्य हो। तुम्हें संसार में प्रख्यात वीर नायक बनना है।' अर्जुन ने उत्तर दिया - 'मैं संसार में प्रख्यात हो जाऊँगा'वाला तुम्हारा यह कथन आज से संगत नहीं रहेगा। हमारे शिकारी कुत्ते मुँह भर शरों को लेकर लौटे हैं। किसी का कोई नुकसान नहीं है। कितनी आश्चर्यपूर्ण कुशलता ! उसकी धनुर्विद्या कितनी मनोहर है ! ये शब्द द्रोणाचार्य के लिए आश्चर्य प्रदान करनेवाले रहे। 'अर्जुन से भी बढ़कर श्रेष्ठ धनुर्धर ! वह कौन है?' द्रोणाचार्य ने पूछा। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अर्जुन ने एकलव्य के बारे में जो कुछ वे जानते थे वह सब द्रोणाचार्य को कह सुनाया।

अर्जुन द्रोणाचार्य को उस स्थान पर ले गये जहां द्रोणाचार्य ने अपनी मूर्ति देखी। फिर एकलव्य वहाँ पहुँचा। द्रोणाचार्य कुरु राजकुमारों के साथ वहाँ पहुँचेंगे, यह खबर एकलव्य को मालूम हुई। सीटी बजाकर टंकार करते हुए धनुष लेकर आनेवाले एकलव्य को अर्जुन तथा द्रोणाचार्य ने देखा। फिर जिस दुःखपूर्ण घटना का वर्णन हुआ वह चौथे अंक के प्रारंभ में वर्णित द्रोणाचार्य के भविष्य कथन को पूर्ण करता है।

एकलव्य ने अपना धनुष और बाण द्रोणाचार्य के पैरों पर रख दिये और उनको प्रणाम किया। उसने कहा कि कुरु राजकुमारों के शिकारी कुत्ते के मुँह में उसने जो तीर मारे थे वह अनजान होकर किया था। उसने द्रोणाचार्य से याचना की कि वे उसको क्षमा कर दें। फिर द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या में एकलव्य की कुशलता की प्रशंसा की। एकलव्य ने कहा कि यह सब द्रोणाचार्य के अनुग्रह का फल है। उसने कहा कि धनुर्विद्या का अभ्यास उसने कैसे किया और मान लिया कि वह अभ्यास आज तक सही आचार के अनुरूप न होने से अभी पूर्ण नहीं हुआ है। तब द्रोणाचार्य ने कहा - 'यदि मैं तेरा गुरु हूँ तो मुझे गुरुदक्षिणा देनी चाहिए न?' एकलव्य ने कहा - 'मैं वही कहना चाहता था । आज तक मैंने आपको गुरुदक्षिणा नहीं दी। आचारानुरूप मैंने अपना अभ्यास पूर्ण नहीं किया। इसी से संबद्ध होकर मैं आपसे मिलनेवाला था। तभी मुझे खबर मिली कि आप यहाँ आ रहे हैं। हे गुरो, गुरुदक्षिणा के रूप में क्या देना है, इसके बारे में कहिएगा। तुमसे मैंने जो कुछ पढ़ा उसके लिए दक्षिणा के रूप में मेरा जीवन भी समर्पित करने के लिए मैं तैयार हूँ।' द्रोणाचार्य ने मन्दहास किया और कहने लगे - 'मैं तेरे दाहिने हाथ का अँगूठा ले लूँ तो?' एकलव्य ने कहा - 'इसी क्षण वह आपका है।' द्रोणाचार्य के पैरों पर रखे हुए अपने बाणों के तूणीर से धार से युक्त एक वक्र आयुध लेकर अपने गुरु के सामने घुटनों के बल पर बैठते हुए अंगूठा काटकर गुरु के पैरों पर डाल दिया। ज़ोर से खून बह रहा था। यह दृश्य देखकर द्रोणाचार्य और अर्जुन चुप हुए। दुःख और आश्चर्य से द्रोणाचार्य ने कहा - 'आ रे रे ! यह तूने क्या किया?' एकलव्य ने धीरे से हकलाते हुए कहा - 'आ............प............का माँ.........गा ....हु............आ ....अँगूठा............मैंने ....दिया.............त.......ल.......या......र आ..........प.......की, उ......स.........की..... मू...........ठ .....भी........आ......प......की ।' अर्जुन भी अपने उभरे हुए भावों को दबा नहीं सके। उन्होंने आवेश में आकर पूछा - 'तूने यह खतरनाक काम क्यों किया?' एकलव्य के सामने घुटने टेक कर द्रोण ने कहा - 'मैंने मजाक किया था और तू ने उसे गंभीरता के साथ ले लिया और स्वयं संकट मोल लिया।' उन्होंने एक हाथ से एकलव्य का माथा प्यार से सहलाया और दूसरे हाथ से अपने वस्त्र की पट्टी लेकर घाव को कस कर बाँध दिया।

यह सब प्रत्यक्ष देखकर हिरण्यधनु जल्दी आगे आए और

उन्होंने एकलव्य को द्रोण के हाथों से घसीट लिया। अपनी पगड़ी से कपड़े की पट्टी लेकर ठंडे पानी में भिगोकर उन्होंने घाव कसकर बाँधा। क्रोध में आकर आँखें मोटी मोटी करते हुए उन्होंने द्रोण की ओर देखा और धोखा करने के लिए उनका उपहास किया। जब एकलव्य धनुर्विद्या सीखने के लिए तैयार हुआ और द्रोण ने शिक्षा देने से इनकार किया तब एकलव्य ने द्रोण की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसके सामने अभ्यास करना शुरू किया। तब से लेकर आर्यों के बारे में आशंका और भय हिरण्यधनु को सताते रहे थे। आज वह भय आँखों के सामने साकार हुआ । क्रोध में आकर उन्होंने कहा - 'हे धनुर्विद्या के आचार्य धनुर्धर, इस भील के बच्चे को छूकर तुम्हारी पवित्रता नष्ट न करो। तुम्हारा वह पवित्र रेशम इसके खून में भिगोकर अपवित्र न करो। स्वयं आग लगाकर कोई पानी लेने दौड़ता है क्या? ऐसा धोखा अनार्य नहीं करते।तुम्हारा यह खेल हमारा जीवन ही ले लेता है।' बाद में उन्होंने घाव की पट्टी खोल दी और घाव को देखने लगा। द्रोणाचार्य को देखकर उन्होंने फिर अपने शब्दों के तीर छोड़ना शुरू किया। 'यह कितना क्रूर हिंसात्मक कार्य है ! कितना बड़ा धोखा है ! कैसा प्रतिकार है !कैसा विश्वासघात है ! कितनी क्रूरता है ! लगता है कि उनकी आँखों में खून का एक बूँद तक नहीं है। एक भेड़िये ने बकरी को चूम लिया। फण पसार कर सर्प हँस पड़ा।'इस प्रकार कहते हुए एकलव्य को आश्वासन प्रदान करने के लिए उन्होंने आश्वासजनक शब्द कहे और घाव की पीड़ा को कम किया। अपने बच्चे के जीवन की रक्षा के लिए थोड़ी देर उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की। फिर क्रोध में आकर उन्होंने द्रोण से कहा - 'तुम अपने को आर्यवंश के कहते हो। एक ब्राह्मण, तिस पर एक विद्वान शिक्षक। हाय ! तुमने शास्त्र का अभ्यास किया है। फिर भी कितना घृणास्पद कार्य किया है ! वह भील का बच्चा हो तो क्या हुआ? वह बच्चा है न? उसके दूध के दाँत अब भी नहीं गिरे। उसका अंगूठा माँगने के बदले मेरा अंगूठा माँगा होता तो मैं अवश्य देता।' इस प्रकार कह कर उन्होंने एकलव्य को प्यार से सहलाया और द्रोण को डाँटा।

द्रोणाचार्य ने कहा - 'हे प्यारे मनुष्य, जितना चाहते हो उतना मुझे शाप दे दो। मैं तुम्हारा शाप सिर आँखों पर लेता हूँ। मेरे अपराध के स्वरूप और तुम्हारे हृदयभेदक दुःख को देखकर तुम्हारा यह शाप बहुत ही कम पड़ता है। तुम विश्वास करो या न करो, केवल मजाक करने के लिए मैंने अंगूठा माँगा था । मेरे शब्द रुकने न पाये कि उसने अपना अंगूठा काट

दिया।' इसे सुन कर हिरण्यधनु ने पूछा - 'तुम्हें शाप देनेवाला मैं कौन होता हूँ? तुम्हारे जैसे बड़े मनुष्यों को शाप थोड़े ही लगता है। तुमने उस पर जो ईर्ष्या थी उसीके कारण उसका अंगूठा माँग लिया। इस बात में सन्देह नहीं है कि कोई भी कार्य संपन्न करने के लिए जो भी पाप हम करते हैं वह अन्त में उस कार्य को बिजली के समान झटका पहुँचानेवाला होता है। इस पर दो मत नहीं हो सकते। सभी के ऊपर ईश्वर रहे हैं। वे सब देख लेते हैं।' हिरण्यधनु ने जब अपने शब्द खतम किए तब द्रोण ने कहा - 'तुम ने कहा कि सभी के ऊपर ईश्वर हैं तो मेरा बोझ कम हुआ। हमारे परस्पर विरोधी मत उन्हीं को समर्पित करें तो वे ही समाधान करेंगे। यही बहुत है।'

एकलव्य ने पानी माँगा और पानी लाया गया। उस को पीकर उस में बोलने की शक्ति आई। 'मेरे बापू, अशान्त मत होइएगा। मैं अब अच्छा हो गया। मेरे लिए बाँया अंगूठा तो है ही। गुरु का अनुग्रह मिले तो बाँया अंगूठा बहुत है। उससे मैं धनुष की डोरी खींचूँगा और तीर चलाऊँगा।' उसने फिर एक बार पीने के लिए पानी माँगा। 'मेरे बापू आपने तो गुरुजी को शाप तो दे दिया। उन्होंने केवल मजाक उड़ाया था। मैंने तुरन्त अंगूठा काट कर उन्हें दे दिया। दोष मेरा है या उनका? कहिए न? थोड़ा और पानी पीते हुए उसने कहा - 'मेरे गुरु पर क्रोध मत कीजिएगा।' 'मेरे गुरुजी, मेरे पिताजी ने जो कठोर शब्द कहे, उन्हें माफ कीजिएगा।' इन शब्दों को सुन कर द्रोणाचार्य का मन पिघल गया। वे एकलव्य के सामने घुटनों के बल बैठ गये, सिर झुकाया और एकलव्य से विनती की। इस अनपेक्षित चक्कर में पड़कर एकलव्य पीछे हटा और उसने कहा - 'हाय ! आप मेरे सामने सिर झुका रहे हैं? जो भी हो, मछली तालाब को माफ कर सकती है? वाणी क्या मुँह को माफ कर सकती है? आप को ऐसा नहीं कहना चाहिए।' फिर द्रोणाचार्य ने कहा - 'तीरों के सामने धनुष झुकता नहीं है क्या ? मेरे बच्चे, तेरी भक्ति के सामने मुझे झुकना ही पड़ता है। हिरण्यधनु से उन्होंने कहा - 'यदि तुम उसके घाव का उपचार नहीं कर रहे हो तो मैं उसे ले जाता हूँ। आवश्यक दवा दूँगा, घाव का इलाज करूँगा, बाद में उसे लौटा लाऊँगा।' हिरण्यधनु ने कहा - 'हमारी टोली में खूब लोग ऐसे हैं जो आश्चर्यजनक दवावों के बारे में जानकारी रखते हैं। इन दवाओं की जानकारी आर्यों को नहीं है। एक नख की जगह पर वे एक पूरी उँगली ही विकसित कर सकते हैं। मैं ही उसका उपचार करूँगा।'

इन शब्दों को सुनकर एकलव्य को सन्तोष हुआ। उसने कहा -

'मेरे प्यारे पिताजी, गुरुजी को हमारे घर बुलाइए। उन्हें फल, दूध, मधु, मक्खन. दही आदि देकर सन्तुष्ट कीजिए।' हिरण्यधनु ने मान लिया और द्रोणाचार्य को अपने घर बुलाया। उन्होंने कहा - 'दूध और शहद एक दूसरे के साथ पीते हुए हम अपना झगड़ा समाप्त करेंगे। हमारे घर आइएगा।' एकलव्य ने कहा - 'मेरे गुरुजी, शबरी के दिए हुए बेर श्री राम ने खाये थे न? आप समझ लीजिए कि हम जो दे रहे हैं वे शबरी के ही रस भरे फल हैं। आइए और हमारा उपचार स्वीकार कीजिए।' दूसरे दिन आ जायेंगे कहकर द्रोणाचार्य ने उनको विश्वास दिलाया। उन्होंने एकलव्य को अनुग्रह दिया - 'सौ वर्षों तक जीते हुए सफलता हासिल कर और सन्तुष्ट रह। तू बड़ा धनुर्द्धर बनेगा। ईश्वर तेरी रक्षा करें। कल मिलेंगे।' और उन्हें विदा किया। एकलव्य की आश्चर्यजनक धनुर्विद्या को देखकर अर्जुन ने उसकी प्रशंसा की।

इस अंक के प्रारंभ में प्रतिकूल घटनाओं के कारण द्रोणाचार्य का दुःख प्रखर हुआ। 'कोई भी कार्य संपन्न करने के लिए हमें कोई न कोई पाप करना ही पड़ता है और अन्त में वह उसी कार्य को बिजली के समान झटका देनेवाला हो जाता है।' भीलों के सरदार ने जो शब्द कहे वे उनके मन को गहरा आघात पहुँचा गए। कुरु राजकुमारों के भले के लिए उन्होंने भीलकुमार का अंगूठा माँगा। अब कुरुवंश के नाश के लिए वही कारण बनेगा, इसकी सूचना उन्हें मिल गई। इन विचारों से अशान्त द्रोण बहुत ही दुःखी हुए - 'हे ईश्वर ! भविष्य में भारत के सभी क्षत्रिय नष्ट हो जायेंगे क्या? नाटक के भरतवाक्य के रूप में श्री पै गायकसमूह के ज़रिए नीचे दी गई पंक्तियाँ गवाते हैं।

'महान लोगों का यही धर्म है कि वे अपने समान दूसरों को भी उन्नत पद प्राप्त करा दें। दूसरों को अपने पैरों के नीचे दबा कर नष्ट कर देना और उन्हें दूर हटाना दुष्ट मनवाले लोगों के द्वारा किया जानेवाला दुष्ट कर्म है। 'तुम' और 'हम' वाले पुराने भेद छोड़कर प्यार से, भ्रातृत्व से, एकता से जीना हमारी मातृभूमि के कल्याण एवं प्रगति का रहस्य है। बाँस का झुरमुट उसके बीच दूसरी झाड़ियों को पनपने का अवसर नहीं देता। इसके विपरीत स्वयं उनके घर्षण से उत्पन्न आग में वह भस्म भी हो जाता है। सामान्य स्वास्थ्य जब नष्ट हो जाता है तो शरीर में रोगों का प्रवेश होता है। अन्दर के झगड़े के कारण जब देश दुबला हो जाता है तब वह बाहर के आक्रमणों का शिकार बन जाता है। वैसे ही आपसी प्यार और

एकता का अभाव हमारे समाज की एकता को नष्ट कर देता है। हमारा देश विदेशियों के अधीन हो जाता है। यह एक शाश्वत सत्य है और इसका अपवाद नहीं है। गायकसमूह की रचना से श्री पै ने आवश्यक परिस्थितियों का वर्णन किया है और पिछली कथा को, वर्तमान परिस्थिति को और भविष्य के विकास को स्पष्ट किया है। गायकसमूह नाटक के चरित्रों को जोड़ने की कड़ी के रूप में काम करता है। जहाँ नाटक के पात्र स्वभावतः भावनाशील परिवर्तन के अधीन हो जाते हैं वहाँ गायकसमूह निर्विकार एवं शान्त रहता है। श्री पै ने गायकसमूह के भाव एवं शब्द कन्नड़ भाषा के प्राचीन काव्यों से स्वीकार किए हैं। एकलव्य का मंच पर आना, सीटी बजाना और चतुष्पदी (कन्नड़ भाषा का एक नूतन छन्द) गाना रचना के नाटकीय प्रभाव पर प्रकाश डालता है। खास गुणों को लेकर हम कह सकते हैं कि 'हेब्बेरळु' कन्नड़ साहित्य के उत्तम नाटकों में एक है।

अध्याय - ५

ताई (माता), नो, चित्रभानु

'हेब्बेरळु' पद्यनाट्य के अतिरिक्त श्री पै ने थोड़े और नाटकों की रचना गद्य में भी की है।

उनके गद्य साहित्य में नाटक, लेख, शोधपत्र, आत्मकथाएँ आदि समाविष्ट हैं । उनमें से थोड़ी रचनाएँ पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुईं। अधिकांश लेख भिन्न भिन्न पत्रिकाओं के ज़रिए समय समय पर प्रकाशित हुए। वे अभी तक एकत्र नहीं किये गये। अनेक लेख एवं कविताएँ उन्होंने कन्नड़ भाषा में ही नहीं, अंग्रेज़ी भांषा में और उनकी मातृभाषा कोंकणी में भी लिखे हैं। यहाँ पर उनके मौलिक तथा अनूदित नाटकों का परिचय करा देने का प्रयत्न किया गया है।

ताई (माता)

श्री पै के चालू नाटकों में सर्वोत्तम है 'ताई' नाम का एक लघु एकांकी नाटक। यह ई. स. १९३४ में एकांकी नाटकों के संग्रह में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। यह संग्रह मंगलोर मित्रमंडली के 'आलिलसेवाग्रंथमाला' की ओर से बाहर आया। एक विशेष साहित्यिक रचना के रूप में 'ताई' ने प्रतिष्ठा पाई।

नौ पृष्ठों का एक छोटा सा एकांकी नाटक है 'ताई'। इसमें मल्लिगे (मोगरा), संपिगे (चंपा) और तुंबी (मधुमक्खी) - छोटी बहन का पुत्र, इनकी कथा का वर्णन किया गया है। चंपक नाम की छोटी बहन ने धीरनाथ से शादी की। बड़ी बहन मल्लिगे उनसे प्रेम करती थी। लेकिन उसने वह बात किसी से भी नहीं कही। थोड़े दिनों के बाद धीरनाथ की मृत्यु हुई और छोटी बहन विधवा बन गई। अपने प्रेमी और छोटी बहन का बेटा होने के नाते मल्लिगे तुंबी को उसकी माँ से भी अधिक प्यार देती थी। एक दिन उस प्रदेश के मन्दिर में उत्सव चलता था। उस समय तुंबी कठोर ज्वर से पीड़ित रहा। तो भी संपिगे उत्सव में भाग लेने की उत्सुकता के कारण मन्दिर गई। मल्लिगे ने जाने से इनकार किया। तो भी वह चली गई। उत्सव देखने के बाद लौटते समय अपने बच्चे के लिए उसने खूब खिलौने खरीदे। उस समय वह बच्चा मृत्यु का शिकार बना। इस बात से वह अवगत नहीं थी। इस प्रकार सोचते हुए कि उसका बच्चा सो गया है उसने अपनी बड़ी बहन से कहा - 'मल्ली उसको खेलने के लिए देखो तो, मैं

कैसे कैसे खिलौने लेकर आई हूँ। ताल बजानेवाला यह खिलौना देखो तो ! तुंबी सो गया क्या? कितने आनन्द से वह सो रहा है !'

मल्लिगे ने नरम होकर कहा - 'हाँ, हाँ : वह बहुत सन्तुष्ट है।' वह छोटा सा नाटक यहीं समाप्त होता है।

छोटी बहन की शादी हुई। उसने पति के साथ सन्तुष्ट जीवन बिताया। एक बच्चे को भी जन्म दिया। फिर भी जीवन के सुख की लालसा शान्त नहीं हुई। अपने बच्चे को ज्वर से पीड़ित देखते हुए भी वह उत्सव के समय मौज करने की इच्छा प्रकट करती है। उत्सव की जगह पर वह घूमती रहती है और खिलौने भी खरीदती है। इसके ठीक विपरीत मल्लिगे अभिमान से युक्त महिला है। उसकी शादी अभी तक नहीं हुई। उसके प्रेमी ने दूसरी महिला से विवाह किया और उसने एक बच्चे को भी जन्म दिया। फिर भी मल्लिगे अपनी बहन के बच्चे को अपने बेटे के समान प्यार देती थी। यही उसके जीवन की संस्कृति रही, उसके व्यक्तित्व का महत्व रहा।

बच्चे को जन्म देने से कोई भी स्त्री माँ नहीं बनती। लेकिन बच्चे को जन्म दिए बगैर ही कोई महिला माता के प्यार का अनुभव कर सकती है। यह महत्वपूर्ण सत्य इस नाटक में अभिव्यक्त हुआ है। बड़ी बहन की शादी नहीं हुई। छोटी बहन की शादी हुई और उसने जीवन का सुख भोगा। ज्वर में अपने बच्चे की चिन्ता न करते हुए वह उत्सव का आनन्द लूटने चली गई। इसके विपरीत बड़ी बहन, चूँकि उसके प्रेमी ने छोटी बहन से शादी की इसलिए उसने त्याग का जीवन अपनाया। तुंबी उसके प्रेमी एवं छोटी बहन का बेटा होने के नाते उसने उससे निस्वार्थ रूप में प्रेम किया। इस प्रकार दो आत्माओं के जीवन का इसमें स्पष्ट रूप में वर्णन हुआ है।

मल्लिगे इस प्रकार कहती है - 'तुंबी की आँखें उसकी माता की आँखों के समान हैं। लेकिन सोते समय वह पिता जैसा लगता है, कभी कभी मेरे जैसा दिखाई देता है।' ये शब्द उसके मन में जलनेवाली आग के रूप को स्पष्ट करते हैं। वह फिर कहती है - 'संपिगे को धीरनाथ का प्यार मिला। उसने उसे पानी जैसे एक घूँट में पी डाला। उसके ओंठों का प्याला जब खाली होता है और दो टुकड़े हो जाता है तो वह तुरन्त उसे भूल जाती है। लेकिन मेरी हालत !मेरा मन आज भी जलता है। वह सूखा है .... हे ईश्वर ! मैं प्यासी हूँ। पानी की छोटी छोटी बूँदों के लिए मैं तरसती रहती हूँ। लेकिन यह प्याला कभी मेरे ओंठों के पास तक नहीं आया। मेरी प्यास भी नहीं बुझी।' तुंबी को दिया गया उसका प्यार जो उसकी माता के प्यार से भी बढ़कर था मल्लिगे के निराशा भरे प्यार का ही

दूसरा रूप था। इन हृदयावर्जक शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है। यह रचना के नाटकीय प्रभाव को दिखाता है। नाटक की भाषा आकर्षक रही है। वह अर्थाभिव्यक्ति की दृष्टि से बहुत सशक्त और काव्यमय है। इस छोटे से एकांकी नाटक के तीन चरित्रों के नाम प्रतीकात्मक रहे। मल्लिगे बारीक सुगन्ध से युक्त फूल है। संपिगे तीव्र सुगन्ध से युक्त फूल है। मल्लिगे और संपिगे दोनों तुंबी को अपनी अपनी तरफ खींचते रहते हैं। इस बात का यहाँ विशेष उल्लेख होना चाहिए कि तीनों पात्रों के नाम, उनकी प्रकृति और गुण उनके योग्य ही रहे हैं। नाटक की समाप्ति हृदयावर्जक रही है। कन्नड़ साहित्य में 'ताई' का अपना अलग स्थान है।

'नों' नाटक

सन् १९४६ से शुरू होकर सन् १९५७ तक श्री पै ने आठ 'नों' नाटकों का अनुवाद किया। ये नाटक जापान की एक विशेष कला के रूप कन्नड़ भाषा में प्रस्तुत होनेवाले थे। कन्नड़ भाषा में सर्वप्रथम इनका प्रयोग करनेवाले थे श्री पै।

कन्नड़ भाषा में 'नों' रंगमंच के विकास के खातिर उन्होंने जापानीस भाषा का अध्ययन किया। उन्होंने 'नों' नाटकों से संबन्धित लेख तैयार किए और कन्नड़ लोगों को उनका परिचय करा दिया। जापान की इस नाट्यकला का छः सदियों का इतिहास रहा है। किस तरह जापान की जनता ने यह कला विकसित की और उसकी रक्षा करते आये, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'से-आमी' और 'क-नामी' पिता पुत्र रहे जिन्होंने उस समय लोकमान्य नाट्यरूप 'सारु-गाकु' को अपनाकर उसका सुधार करते हुए उसमें गीत और नाच जोड़कर जहाँ जहाँ उचित लगा वहाँ वहाँ 'नों' नाटक का प्रदर्शन किया। आज जापान के २४० 'नों' नाटकों में एक तिहाई नाटकों की रचना इन दोनों ने मिलकर की। इस नाटक में एक तरह की धार्मिक रुचि देखने को मिलती है। जापान के शासकों ने राजाश्रय देकर इन नाटकों को प्रोत्साहित किया। इस प्रकार यह नाट्यरूप जापान में जड़ पकड़ता आया।

आराधना के रूप में भी 'नों' नाटक लोकमान्य रहे। इनमें वर्णित पुरानी गाथा, नाच, गीत एवं बुद्ध के अद्भुत कर्मों को दिखानेवाली कथाएँ ही नाटकों के लोकप्रिय बनने के कारण रहे। ग्रीक नाटकों के समान 'नों' नाटक भी नाच के साथ शुरू होते हैं। अभिनय एक प्रकार का नाच होता है और मुखौटों का प्रयोग भी इसमें रहता है। पहले 'नों' नाटकों का

प्रदर्शन मन्दिरों के आँगन में और नदियों के तट पर होता था। बाद में संपन्न लोगों के राजमहल जैसे घरों के सामने आँगन में इनका प्रदर्शन होता रहा। पच्चीस वर्गफीट के चतुष्कोण मंच पर इन नाटकों का प्रदर्शन होता था। पहले देवदारु के तीन झाड़ लगाकर शक्ति एवं सनातनता के प्रतीकों के रूप में मिट्‌टी के तीन घड़े रखे जाते थे। नाटक भिन्न होते हुए भी उनकी पृष्ठभूमि एक ही रही थी। पाँच पृष्ठगायक रहते थे। नाटक सबेरे नौ बजे शुरू होता था।

'नो' नाटक गद्य और पद्य का अच्छा मिश्रण रहे। इसके पात्र आठ हैं । वे इस प्रकार हैं – १. शीते(नायक), २.त्सूरे (नायक का अनुयायी), ३. वाकी(अतिथि), ४.वाकिनोत्सूरे (अतिथि का अनुयायी), ५.तोमो (नौकर), ६. कोगता (छोटा लड़का), ७. कियोगेन्शी (नाविक या सेवक), ८. हान्या (दुर्भूत). इस प्रकार 'नो' नाटक नाच, गीत एवं धार्मिक कथाओं से बहुत मोहक रहते थे। ये नाटक जापान में प्रसिद्ध रहे हैं।

'नो' का अर्थ है पूर्णत्व और प्रगति। उनका विश्वास है कि इन नाटकों का अभिनय करनेवाले मनुष्य को और नाटक का आस्वादन करनेवालों को समृद्धि एवं उत्कर्ष मिलता है। संवाद थोड़े ही हैं। भाव एवं विचार अधिकतः अंगविक्षेप एवं मुख के हाव भाव को लेकर रहते हैं। संवादों से बढ़कर मौन भाव ज्यादा रहता है। फिर भी ऐसा नहीं है कि संवाद नहीं के बराबर हैं। बोधिसत्व, अधिष्ठाता देव, भूत, पिशाच, नागराज, चान्दनी के देवता, फूलों और वृक्षों की आत्माएँ, मधु एवं आग के मूल तत्व आदि इन नाटकों में प्रदर्शन के लिए आते हैं। 'शीते' एक दैवी एवं अमानवीय चरित्र है। देव, भूत, मरे हुओं की आत्माएँ, विशेष जानवर आदि 'शीते' विभाग में आते हैं। 'वाकी' सांसारिक और जीवित चरित्र है और यह दैवी एवं मानवी संसार के बीच एक कड़ी का काम करता है। 'शीते' का पहनावा मोहक और जगमगाता रहता है। कदाचित् 'शीते' को प्रभावशाली पात्र के रूप में चित्रित करने के लिए उनका पहनावा इतना मोहक बनाया होगा। ग्रीक नाटकों के समान 'गोंदलदवरु' (गायकवृन्द) चरित्रों में एक रहा है। गायकवृन्द का कार्य दृश्यों की सूचना देना, सारांश प्रस्तुत करना, प्रेक्षकों को चरित्रों की गति और परिवर्तन की सूचना देना, चरित्रों के साथ स्वरमेल दिखाना और उनके मन की स्थिति का वर्णन करना होता है। गायकवृन्द ही पात्रों के व्यवहार से प्रेक्षकों को अवगत कराता है। लेकिन वह व्याख्या, समीक्षा या उपदेश नहीं देता।

परंपरा के अनुसार हर एक 'नों' नाटक की प्रस्तुति में एक बार पाँच नाटकों का अभिनय होता है। इन नाटकों के प्रस्तुतीकरण में 'कोजें' नाम के एक छोटे से व्यंग्यात्मक चित्र का भी अभिनय होता है। दो 'नों' नाटकों के बीच 'कोजें' का प्रयोग होता है। प्रदर्शन के लिए तैयार 'नों' नाटक के नमूने को 'जो - ह - क्यु' कहा जाता है। 'जो' माने 'भूमिका', 'ह' माने मध्यभाग अथवा केन्द्र, 'क्यु' अन्तिम भाग। पाँच नाटकों में पहला नाटक 'जो' होता है। दूसरा, तीसरा और चौथा 'ह' कहा जाता है और अन्तिम 'क्यु'। रंगभूमि के क्षेत्र में नई नई प्रवृत्तियों को स्थान दिये जानेवाले इस काल में 'नों' नाटकों ने नये नये परिवर्तन और प्रगति के खातिर अपने द्वार खोले हैं। इस दृष्टि से देखें तो जापानी भाषा में से कन्नड़ भाषा में 'नों' नाट्यरूप को आगे बढ़ाने का श्री पै का यह प्रयत्न ऐतिहासिक महत्व रखनेवाला है।

'शो शों' 'ओनोनो कोमाची' का प्रेमी है। वह बौद्ध धर्म को अपनाने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए निन्यानब्बे दिन घर का द्वार खटखटाने पर भी वह उसे भीतर प्रवेश करने की अनुमति नहीं देती। मृत्यु के बाद दोनों आत्माएँ अलग अलग रहती हैं। अन्त में एक बौद्ध पुरोहित की सहायता से वह उसे बौद्धधर्म में शामिल करने में कामयाब हो जाती है। उसके बाद दोनों आत्माएँ एक हो जाती हैं।

बाहर से ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धधर्म अपनाने से हिचकनेवाले 'शो शों' के साथ 'कोमाची' कठोरता दिखाती है। लेकिन मन के अन्दर वह उससे प्रेम करती है और उसके प्रति आदर भी रखती है। अन्त में वह उसे बौद्धधर्म का अनुयायी बनाने में कामयाब हो जाती है और उसके साथ मिल जाती है।यहाँ पर पवित्र धार्मिकता से युक्त सच्चे प्रेम की भावना और पवित्र मानवी प्रेम एक साथ दिखाई पड़ता है। प्रेक्षक बड़े आदर के साथ और विशेष दृष्टि से उसकी ओर देखते हैं। नाटक का स्थान 'यमशीरों' नाम की जगह है। इसमें 'यासे' , 'इची हारानों' आदि जगहों के नाम दिखाई पड़ते हैं। 'शीतें', 'त्सूरे', 'वाकी' और 'गोंदल' (गायकवृन्द) भी इसमें देखने को मिलते हैं।

'हागरोवों' और एक 'नों' नाटक है। 'मीवों' एक तटीय गाँव है। यहाँ पर देवदारु वृक्ष खूब उगते हैं। वहाँ घूमनेवाली एक परी उसका लबादा वृक्ष की शाखा पर लटकाती है। धीवरों का नेता उसे ले जाता है। उसके बगैर परी स्वर्ग पर नहीं जा सकती। वह नेता से उसका लबादा लौटाने के लिए कहती है। वह शर्त लगाता है कि उसको नाच सिखाने पर

ही वह लबादा लौटा सकता है। वह शर्त मानती है और नाचती है। गायकवृन्द प्रेक्षकों को इस बात की जानकारी देता है कि परी का नाच चन्द्रमा में प्रतिदिन होनेवाले परिवर्तनों की ओर संकेत करता है। जिस प्रकार पर्वत कुहासे में धुँधले पड़ते हैं वैसे ही परी धीरे धीरे अदृश्य हो जाती है। यह नाटक स्वर्ग के दैवी नाच एवं 'नो' नाटक के उससे संबन्ध को सूचित करता है। नाटक के पात्र नाच की पृष्ठभूमि और उसके प्रभाव का विवरण सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करते हैं।

'हाकुर्यो'- धीवरों का नेता, दूसरा एक मछुआ, 'टेन्निन' नाम की परी और गायकवृन्द इस नाटक के पात्र हैं। 'मीवो', 'कियोमिया', 'मात्सुबरा','फूँजी', 'निप्पन','आशीतका' आदि इस नाटक में चित्रित स्थानों के नाम हैं। यह आठ पृष्ठों का छोटा सा नाटक है । 'हागरोवो'का अर्थ 'लबादा' है। नाटक की कथा परी के लबादे से संबन्धित होने के कारण यह शीर्षक दिया गया है।

'पूर्वी दिशा में अनेक कंठों से जादुई संगीत सब कहीं व्याप्त है। मुरली का सुर लाक्षा के रंग के मेघों के उस पार अन्तरिक्ष, में व्याप्त है। सात तारों की वीणा संगीत की लहरें उत्पन्न करती है। लाल सूरज ....रंगों में नहाए हुए पर्वतों को माप लेता है। कुहासे का पहनावा अच्छी फसल का भविष्य दिखाता है। फूलों की मर्मराहट सभी दिशाओं में भरी हुई है। पर्वत ढ़ीले हाथोंवाली कमीज़ जैसे लगते हैं। जब वह नाचती है तब कितनी सुन्दरता के साथ उसके बाहू हिलते हैं ! पूर्वी दिशा का आनन्द बहुत अधिक है। वह चन्द्रमा के रंगों से भरा रूप दिखाती है। आकाश पर अर्द्धरात्रि को वह कैद करके रखती है। समुद्र के द्वारा धोये गए तट के समान आकाश पर मेघ व्याप्त रहे हैं। थोड़े समय में उसका लबादा हवा में उड़ जायगा। 'मात्सुबरा' से होकर या 'आशीतका' से............'

ये शब्द और दृश्य प्रेक्षकों को आश्चर्यपूर्ण आनन्द और विशेष सुख प्रदान करते हैं .... स्वप्नलोक में उड़ते उड़ते चलने का आनन्द और सुख। ये नाटक अपने नाच और संगीत से बहुत आकर्षक रहते हैं।

श्री पै ने 'कुमसाका' नाम का 'नो' नाटक ई. स. १९४६ में अनूदित किया। इसमें राह चलनेवाले व्यक्ति को लूटनेवाले किसी लुटेरे की कथा है। नाटक की भूमिका में श्री पै ने 'नो' नाटक की प्राचीनता, चरित्र, रंगभूमि का विवरण, भाषा, अर्थ, नाटकों की संख्या एवं उनके शीर्षकों के बारे में खूब वर्णन किया है।

'कुमसाका' में दो दृश्य हैं। नाटक आठ पृष्ठों का है। 'कुमसाका' नाम के कुप्रसिद्ध लुटेरे का भूत एक बूढ़े पुरोहित के रूप में आता है। वह एक तरुण यात्री पुरोहित से मिलता है और उसी दिन मरे हुए एक अज्ञात व्यक्ति के खातिर प्रार्थना करने की माँग करता है। बूढ़े पुरोहित की झोंपड़ी में बुद्ध की प्रतिमा नहीं है। वहाँ पर एक बरछी, एक लाठी और थोड़े तीर देखने को मिले। इस प्रकार यात्रियों की लुटेरों के हाथों से रक्षा करना और जब वह जीवित था उस समय उसके द्वारा किए गए पापों का परिहार करना मात्र अब उसका काम रह गया है। अकस्मात् वह पुरोहित और उसका छोटा सा घर अदृश्य हो जाता है। फिर यात्री पुरोहित अज्ञात व्यक्तियों के खातिर अपनी प्रार्थना आगे बढ़ाता है।

दूसरे दृश्य में 'कुमसाका' का भूत शानदार पहनावा और आभरण पहनकर आता है। वह अपने आनन्द भरे पुराने दिनों की याद करता है। धनुर्विद्या में अपने प्रावीण्य और उन धनुर्द्धरों की याद करता है जो उसके मित्र थे । गायकवृन्द प्रेक्षकों को खबर देता है कि 'उशीवका' नाम के एक छोटे से लड़के ने उस भूत को मारा।

यह कथा मनुष्यलोक में आकर अपने अपने काम में लगे रहनेवाले अमानुषिक पिशाचों और भूतों की है। संसार में प्राचीन काल में जो विश्वास रहे थे, लोग आज भी उनकी रक्षा करते आए हैं। इसलिए पिशाचों और भूतों की वे कहानियाँ चुन चुन कर उनसे संबन्धित नाटक तैयार किए गए हैं। इन नाटकों का अभिनय और संगीत उन्होंने तैयार किया और प्रेक्षकों के मन को पुलकित करने का कार्य किया। ये नाटक लोगों को आश्चर्यजनक रूप में मनोरंजन करनेवाले बने।

द्वन्द्व एवं शक्ति का प्रयोग प्रेक्षकों को हमेशा उत्तेजित करता रहता है. नाटक के अन्तिम भाग के 'कुमसाका' और 'उशीवका' के बीच जो युद्ध चला उसका वर्णन इस प्रकार है –'एक दूसरे के पीछे दौड़ा। एक दूसरे की मशाल उन्होंने खींच ली। ऐसा लगता था कि स्वर्ग के देवों ने उनको एक दूसरे से युद्ध करने की प्रेरणा दी। एक बरछी लेकर 'उशीवका' बाघ के जैसे आगे आया। बाज के समान 'कुमसाका' के पीछे पड़ गया और उम्मीद के साथ सिंह जैसे युद्ध करने लगा। 'उशीवका' ने कहा - 'वह देव हो या पिशाच, मैं उसको पकड़कर रौंदते हुए फेंक दूँगा। उसके शव की आहुति दे दूँगा.........' फिर बिजली जैसे 'कुमसाका' आगे आया और अपने धारवाले चक्र से उसने 'उशीवका' को मारने का प्रयत्न किया। ऐसा लगता था कि वह लोहे की दीवार पर प्रहार कर रहा है।

‘उशीवका’ ने कतराकर उसको ठोकर मारते हुए दूर हठाया। ‘कुमसाका’ ने छुरी भोंक दी । लेकिन ‘उशीवका’ बिना घाव के बच गये। ‘कुमसाका’ ने अपनी बरछी का ऊपरी भाग नीचे की ओर करते हुए अंकुश से ‘उशीवका’ को मारने का प्रयत्न किया। दोनों के शस्त्र एक दूसरे से जकड़े रहे.....‘

‘त्सुनेमासा’ श्री पै के द्वारा अनूदित तीसरा ‘नों’ नाटक है। ‘सोजुगोकाय’, निन्नाजी मन्दिर के पुरोहित, ‘त्सुनेमासा’, एक वीर योद्धा की आत्मा और गायकवृन्द - ये तीन पात्र इस छोटे से नाटक में हैं।

‘सोजुगोकाय’, निन्नाजी मन्दिर के पुरोहित तिरा राजवंश के वीर योद्धा,‘त्सुनेमासा’ की आत्मा से बातें करता है। जब ‘त्सुनेमासा’ छोटा लड़का था बादशाह उसको प्यार करते थे। पश्चिमी समुद्र के युद्ध में संघर्ष करते हुए ‘त्सुनेमासा’ मर गया। युद्ध शुरू होने के पहले बादशाह ने उसको एक ‘किन्नरी’ दे दी। वही किन्नरी अब पुरोहित के हाथ में दिखाई दी। ‘त्सुनेमासा’ की आत्मा को तिलोदक देने के बदले पुरोहित किन्नरी बजाकर ‘त्सुनेमासा’ की आराधना करता है प्रकाश में ‘त्सुनेमासा’ की आत्मा मनुष्य के रूप में दिखाई पड़ती है। फिर पुरोहित और‘त्सुनेमासा’ की आत्मा के बीच वार्तालाप चलता है।

अब आत्मा स्पष्ट रूप में नहीं दिखाई पड़ती। पुरोहित आत्मा से पूछ रहे हैं कि वह कौन है? आत्मा पुरोहित से कहती है कि उसे वे स्वयं वहाँ पर ले आए हैं। पुरोहित आवाज़ तो सुनते हैं, लेकिन शरीर दिखाई नहीं देता। फिर ‘त्सुनेमासा’ छाया के समान रहता है और दूसरों को दिखाई पड़ता है। पुरोहित आत्मा से वार्तालाप करता है। आत्मा कहती है कि दिया बुझाओ। फिर ग्रीष्म की तितली की भाँति वह उड़ता है। नाटक की भाषा सरल एवं मनोहर है।

‘जमे हुए बादल स्वच्छ आकाश पर टीका लगाते हैं। मन्द मन्द पानी बरस रहा है। घास और वृक्ष हिलते हैं। देवदारु वृक्षों की शाखाओं पर चन्द्रमा स्वतन्त्र होकर शोभित है। मानो वृष्टि से क्रुद्ध होकर हवा गड़गड़ आवाज़ करती रहती है। सच्चे अर्थों में यह समय जादुई है। नरम आवाज़ की तारें धीरे धीरे बोलती रहती हैं। भव्य संगीत की तारें शरद् ऋतु की हवा के जैसे घंटे की आवाज़ करती हैं ......‘

इन जादू के शब्दों के साथ नाच एवं संगीत सूक्ष्म भावना, चित्तवृत्ति और विचारों को स्पष्ट करते हैं। उन कलाकारों ने इस प्रकार पूर्णत्व प्राप्त किया है।

अगला 'नो' नाटक 'सूमागेंजी' है । 'गेंजी' एक पुराना लकड़हारा, एक पुरोहित और गायकवृन्द इस नाटक के पात्र हैं। यह दो दृश्यों और पाँच पृष्ठों का एक छोटा सा नाटक है।

इसकी कथा एक पिशाच की है। पहले दृश्य के पहले भाग में 'गेंजी' नाम का एक लकड़हारा मर जाता है और वह 'सूमा' के भूत के रूप में आता है। दूसरे दृश्य के दूसरे भाग में वह सागर की बड़ी बड़ी लहरों और चान्दनी के रूप में आता है। 'फुजीवारा'(पुरोहित) लोकसाहित्य का संग्रह करता है। पहले ही वह एक पिशाच के रूप में पुरोहित के सामने आता है। फिर अपने अमानवीय तेजस्वी रूप में प्रकट होता है और 'सूमा' की आत्मा कहकर पुरोहित को अपना परिचय देता है। अपने जीवन में 'गेंजी' लकड़हारे के निम्न स्तर से ऊपर उठकर ऊँचे दर्जे पर पहुँचता है । फिर वह नगराध्यक्ष बनता है और अन्त में राज्य का अधिपति। प्राचीन काल में वह 'सूमा' में रहता था और 'सूमा' की प्रकृति से एकाकार होते हुए बाद में ऊँचे दर्जे पर पहुँचा था। अब आकाश से होकर हवा के साथ मनुष्य लोक में आने के क़ारण वह विशेष नाच करता है और समुद्र की लहरों और चान्दनी के मनोहर दृश्यों के मिस सामने आता है।

'गेंजी' का अस्तित्व 'सूमा' की प्रकृति के साथ रहा है। उसकी आत्मा उस जगह से एकाकार हो गई। इसी कारण से 'गेंजी' 'सूमागेंजी' नाम से प्रसिद्ध हुआ। समुद्र की नीली नीली लहरों पर 'गेंजी' का नाच बहुत ही आकर्षक रहता है। इस नाच और संगीत की पृष्ठभूमि नाटक का सौन्दर्य बढ़ाती है। शब्द और वर्णन नाटक में खूब रहे हैं।

यह जगह कितनी मनोहर है ! जब मैं यहाँ की घास से होकर चल रहा था उस समय उन्होंने मुझे शानदार 'गेंजी' कहा। अब मैं व्यक्तियों पर जादू करते हुए मोहिनी डालने के लिए मेघों से होकर नीचे आ जाता हूँ। 'सूमा' के समुद्रतट पर छाया में बैठकर मैं चन्द्रमा के बारे में गीत गाता हूँ। 'मैं समुद्र की लहरों का 'सेय-काय-हे' नाम का नीला नृत्य करूँगा।' लहरों के फूल उसके सफेद वस्त्रों पर प्रतिबिंबित रहते हैं । मुरली की आवाज़ से हवा जीवित है। शहनाई के संगीत की विविधता से धरती उत्तेजित होती है। मेघ और वृष्टि में घूमते घूमते स्वप्न एवं जागृति एक दूसरे के आलिंगन में आबद्ध हैं।

'चोरियो' पाँच पृष्ठों का छोटा सा नाटक है। पहला 'शीते', दूसरा 'शीते', 'वाकी', 'चोरियो' और गायकवृन्द इस नाटक के पात्र हैं।

इस नाटक की घटनाएँ चीन से संबन्धित हैं। इसमें दो दृश्य हैं।

'चोरियो' 'कोसोक्को' नाम के 'काना' के राजा की प्रजा में एक है. अपनी निष्ठा से वह मान्य पदवी प्राप्त करता है। एक बार 'चोरियो' ने आंश्चर्य का एक विचित्र सपना देखा।'काही' में मिट्‌टी का एक पुल है। एक दिन 'चोरियो' उस पुल के लोहनिर्मित जंगले पर झुका हुआ खड़ा है। वहाँ पर एक बूढ़ा व्यक्ति घोड़े पर चढ़कर आता है। बूढ़ा उसकी चप्पल नीचे के जलप्रवाह में फेंकता है और 'चोरियो' से कहता है कि उसे ले आए। 'चोरियो' को यह कठिन लगता है। बूढ़े का यह विशेष बर्ताव देखकर और उसकी आयु को मान देते हुए 'चोरियो' प्रवाह में कूद पडता है और चप्पल ले आता है।

बूढ़ा 'चोरियो' को शुध्द मनवाला कहता है और कहता है - 'पाँच दिनों के अन्दर यहाँ आ जाओ। युध्द के संबन्ध में सभी बातें मैं तुम्हें सिखाता हूँ।' उसी समय 'चोरियो' जाग जाता है। स्वप्न के बूढे को पहली बार देखने के लिए 'चोरियो' को इतना समय लगा। वे 'कोसोक्को' राजा वेष बदलकर आए थे।'चोरियो' को शुध्द मनवाला समझकर भी उसकी स्वाभाविक प्रकृति की परीक्षा लेने के बारे में वह सोचता है। यहाँ पर स्वप्न यथार्थ बन जाता है। 'कोसोक्को' अपनी चप्पल प्रवाह में फेंकता है और 'चोरियो' उसे लेने के लिए प्रवाह में कूद पड़ता है। वह बहुत जल्द प्रवाह के बीच तैरता है और देखता है कि पंखोंवाला एक सर्प उस चप्पल को छीन लेता है। 'चोरियो' आग उगलनेवाले सर्प से कठोर युध्द करता है, चप्पल लौटा लेता है और 'कोसोक्को' को देता है। 'क्वानून' नाम की एक परी चकोर के रूप में आती है । बाद में 'चोरियो' उस आत्मा का भक्तियुक्त उपासक बन जाता है । स्वप्न में कहे अनुसार 'कोसोक्को' 'चोरियो'को युध्द की पध्दति सिखाता है। यही नाटक की कथा है।

यहाँ कहा गया है कि ईश्वर अपने भक्तों की कई प्रकार से परीक्षा लेते हैं। प्राचीन भारत के जैसे धार्मिक विश्वास चीन एवं जापान में भी प्रचलित थे।

दूसरे दृश्य के आरंभ में 'चोरियो' और गायकवृन्द के बीच चलनेवाला प्रारंभिक वार्तालाप कविता के रूप में दिया गया है।

'देख लो लहरें किस प्रकार शक्ति से पीछे हट रही हैं। वहाँ पर सारे प्रदेश में कुहासा भरा हुआ है। उस घने अंधकार में आग उगलनेवाला एक भयंकर सर्प अपने पीछे के पैरों पर खड़े होकर आग थूकनेवाली जीभ से झटके मारता रहता है।'

'उसकी तलवार से एक भयंकर प्रकाश उत्पन्न हुआ ....
आग उगलनेवाला सर्प ऊपर मेघों तक उड़ गया। 'कोसोक्को' पर्वत के उच्च शिखर तक पीछे हट गया। बाद में उसने अपना प्रकाश आकाश पर डाला और वह एक पीले पत्थर के रूप में बदल गया।'

इस प्रकार वह नाटक आश्चर्यजनक विलक्षण कल्पना को प्रस्तुत करता है।

'शोजो' और एक 'नो' नाटक है।

'शोजो' नाटक का नायक । 'वाकी' दूसरा महत्वपूर्ण पात्र। गायकवृन्द तीसरा पात्र। नशे के प्रभाव को लेकर लिखा गया यह तीन पृष्ठों का छोटा सा नाटक है।

'वाकी' 'यांगत्से' नदी के तीर पर 'काने किंजन' नाम के पर्वत के नीचे स्थित गाँव में रहता है। अपने पिता के प्रति उसकी जो अपार श्रद्धा रही उसके कारण वह आश्चर्यजनक स्वप्न देखता है। स्वप्न का सारांश यही है कि 'यांगत्से' की पासवाली गली में 'साकी' (जापान में चावलों से निर्मित शराब) बेची जाय तो वह बड़ा संपन्न होगा। स्वप्न में विश्वास करते हुए वह वैसा ही करता है और संपन्न बन जाता है। एक दिन जब वह दूकान पर अकेला था उस समय एक व्यक्ति 'साकी' पीने आता है। जितना भी पिये उसके मुख पर कोई भी प्रभाव नहीं देखा जाता। उसका नाम पूछा तो उत्तर मिला 'सोजो' । 'सोजो' का अर्थ है 'बन्दर' । 'सोजो' आता है, 'साकी' से भरा प्याला लेता है और दावत शुरू होती है।

'साकी' मेरे खून को चूस लेता है। मैं काँपता हूँ और नीचे गिर जाता हूँ। मैं गिर जाता हूँ और नींद में ही बोलता हूँ।' इन शब्दों से नाटक समाप्त होता है। इस प्रकार वह नशा करने के प्रभाव को व्यक्त करता है।

श्री पै द्वारा कन्नड़ भाषा में अनूदित किया हुआ आठवाँ नाटक है 'सोतोबा कोमाची' । 'ओनोनो कोमाची' और दो यात्री पुरोहित, ये ही इस नाटक के पात्र हैं। यह तीन पृष्ठों का नाटक है।

जापान के 'कोयोसानो' से दो पुरोहित जापान की पुरानी राजधानी 'कियाटो' में गये। रास्ते में वे 'सेट्सू' नाम के स्थान पर आराधना की वस्तु पर बैठी हुई एक बूढ़ी स्त्री को देखते हैं। वह बूढ़ी जैसी थी। लेकिन वह स्त्री नहीं थी। उन्होंने जिसे देखा वह केवल उसकी आत्मा थी। वह सौ वर्षों के पहले मर गई थी। उसका प्रेमी 'शो शो' नाम भी इस नाटक में आया है। 'कायो कोमाची' नाम का नाटक इस नाटक का पहला भाग है।

जब वह लड़की थी 'शो शो' से भी सुन्दर व्यक्ति उसकी सुन्दरता को देखकर उसके प्रेम के जाल में पड़ गये। उन्होंने उसे सौ से ज्यादा पत्र लिखे। उसने पत्रों का जवाब नहीं दिया। उन दिनों वह प्रकाशमान सौन्दर्य से युक्त फूल जैसी थी। मनोहर पोशाक और आभूषण पहन कर वह राजगृह में चलती थी। उससे संबन्धित गीत जापानी भाषा में ही नहीं, चीनी भाषा में भी सुनने के लिए लोग उत्सुक रहते थे। अब वह बूढ़ी हो गई और मुरझा गई। वह भीख माँगती है और रोती है।

जब वह लड़की थी तब चान्दनी रातों में और अमावास की अँधेरी रातों में 'शो शो' उसके पास आता था। अँधकार में जब ठंड़ी हवा चलती थी और मुलायम पत्थर के समान ओसकण पड़ते थे तब वह उसके पास आता था। करीब सौ बार वह उसके पास आया। उसके बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसकी आत्मा 'कोमाची' की आत्मा के पास है। वह उसे पागल बनाता है और उसको आगे ले जाता है।

यह नाटक की कहानी है। यह कथा 'कायो कोमाची' की पूरक बनकर आती है। धर्म एवं प्रेम इस नाटक में सशक्त रूप में देखे जा सकते हैं। 'कोमाची' के आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्य का वर्णन, तत्वों से संबन्धित उनकी दृढ़ निष्ठा, 'कोमाची' से 'शो शो' की माँग, मरणोपरान्त उससे लगी रहनेवाली कोमाची की आत्मा, सभी उम्मीद एवं रुचि बढ़ाते रहते हैं।

'नो' नाटक से संबन्धित श्री पै का मत नीचे दिया गया है –

'मन ही रूप बनता है, यही इन नाटकों का मूल तत्व है। संवादों से भी बढ़कर अंगविक्षेप और मुखमुद्रा के ज़रिए भाव एवं अनुभूतियों का वर्णन और अंगविक्षेप एवं मुखमुद्रा से भी बढ़कर मौन रहना भावाभिव्यक्ति की सफलता है, यही इन नाटकों का प्रमुख स्वर है।'

कन्नड़भाषा के प्रेक्षकों को ये 'नो' नाटक किस प्रकार प्रभावित करते हैं, इसकी परीक्षा करने के लिए इन्हें व्यावहारिक रूप से मंच पर प्रस्तुत करना पड़ता है। यह स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि जापान की संस्कृति में पीढ़ी दर पीढ़ी प्रेक्षकों को आकर्षित करनेवाले ये नाटक हमारी रुचि के अनुरूप हैं या नहीं। तो भी सर्वप्रथम इस नये कलारूप का परिचय हमें श्री पै ने करा दिया है। इसके लिए कन्नड़ जनता इनकी कृतज्ञ रहेगी।

चित्रभानु या १९४२

यह ई.स.१९४२ में शुरू हुए 'क्विट् इंडिया' आन्दोलन को आधार बनाकर श्री पै के द्वारा लिखा गया एक मौलिक नाटक है। इस

नाटक का प्रकाशन हमारे देश को स्वतन्त्रता मिलने के बाद दूसरे वर्ष में हुआ। ई. स. १९४२ माने चित्रभानु संवत्सर। हिन्दू पंचांग के अनुसार शालीवाहन शकाब्द का यह १८६४ वाँ वर्ष है। इसलिए नाटक का नाम चित्रभानु या १९४२ दिया गया। इस नाटक को लिखने के पीछे जो विशेष प्रेरणा रही थी उसके बारे में रचनाकार इस प्रकार कहते हैं - 'ई.स.१९४२ में कर्नाटक के स्वतंत्रता संग्राम के क्षेत्र में युवा लोगों ने अपने जीवन का जो त्याग किया इसकी हृदयस्पर्शी खबर पढ़कर हर एक कन्नड़ व्यक्ति की आँखों में आँसू आये और उसका कलेजा जलता रहा। यह खबर जब मैंने पढ़ी मुझे भी बड़ा दुःख हुआ। तब तक अनजान होते हुए भी मेरे हृदय में एक तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। उन दिनों छात्र भी सैनिक रहे थे। भीड़ को बरखास्त करने के लिए जब पुलीस ने गोली चलाना शुरू किया तब जो टक्कर हुई उसमें एक छात्र गोली लगकर मर गया। बड़ी शवयात्रा के साथ शहीद का मृतदेह श्मशान में पहुँचाया गया। मुझे आज भी उसका नाम याद है। वह 'वीरेन्द्र' था। इस दुःखपूर्ण घटना पर एक नाटक लिखने के लिए बार बार मेरा मन मुझे प्रेरित करता था। स्वतन्त्रता संग्राम में एक पुलीस ने गोली चलाई और कर्नाटक के एक वीर जवान को मार डाला। इसी विषय को मैंने चुन लिया। इतना ही था। यही पृष्ठभूमि रही। अधिकांश सूचनाएँ मैंने स्वयं तैयार कीं। उन दिनों से संबन्धित होती हुई भी वह कथा आज भी हमारे लिए प्रेरणादायक रही है।

नाटक का नायक है वेणुगोपाल। उनकी माता यशोदा। पड़ोस की जाह्नवी नाम की लड़की को अकेले छोड़कर उसके माँ बाप मर गये। यशोदा उस लड़की को आश्रय एवं सहारा देती है और उसका अपनी बेटी के समान पालन करती है। घर में ये ही तीन लोग रहे। वे अपना घर एवं संपत्ति खो बैठे। यशोदा विधवा बनती है। वह अपने बेटे और जाह्नवी को दूसरी जगह ले जाती है और वहाँ रहती है। वेणुगोपाल अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़ देता है। वह नौकरी करता है और परिवार का पालन करता है।

इसके बाद 'क्विट् इंडिया' आन्दोलन शुरू होता है। अंग्रेज़ सरकार गाँधीजी, नेहरू जैसे अनेक देशी नेताओं को कैद करता है और अज्ञात स्थान पर ले जाकर उन्हें कारागार में बन्द कर देता है। सारा देश उत्तेजित हो उठता है। युवा वेणुगोपाल युद्ध के लिए सहायता करता है। युद्ध को चालू रखने के खातिर वह भूमिगत हो जाता है। पुलीस उसे खोजती है। एक दिन वेणुगोपाल छिपे छिपे अपनी माता के पास आता है।

इसके बीच वेणुगोपाल एवं जाह्नवी एक दूसरे से प्रेम करते हैं। उनके बीच वार्तालाप चल रहा था कि पुलीस वहाँ पहुँच जाती है। घर में छानकर वेणुगोपाल को कैद करती है। एक गोरा एवं वरिष्ठ पुलीस अधिकारी, वेणुगोपाल को जन्म देकर पालन करनेवाली उसकी माता एवं उसे ईश्वर के समान प्रेम करनेवाली उसकी प्रेमिका जाह्नवी, दोनों की आँखों के सामने ही गोली मारकर उसकी हत्या कर देता है। जाह्नवी निराश एवं भयभीत होती है। वह कुएँ में कूदकर मर जाती है। गोरा पुलीस अधिकारी अपनी मोटर पर लौट आता है। वह तोप का काबला लगाना भूल जाता है । उसमें से गोली निकलती है और गोली लग कर क्षण भर में नीचे गिरकर वह भी मर जाता है। जाह्नवी एवं भारत की स्वतन्त्रता के खातिर प्राण त्याग किए हुए उस युवा की शवयात्रा आगे चलती है । ये सारे संकट, कष्ट एवं दुःख उनकी माता, यशोदा अपनी आँखों से देखती है। वह पूरा उत्तरदायित्व भगवान पर छोड़ती है और अपना दुःख स्वयं सहन कर लेती है।

यही नाटक का सारांश है। परस्पर वार्तालाप, संवाद, घटनाएँ, परिस्थितियाँ, पृष्ठभूमि सब कुछ राष्ट्रीय भावना को जागृत करनेवाले हैं। भाषा सशक्त एवं भावप्रधान है। नाटक में आई हुई कहावतें, शैली, प्रयोग, और अलंकार असंख्य एवं अनुपमेय हैं। इसी कारण से बार बार पढ़ने पर इसके नये नये अर्थ सामने आ जाते हैं। यह नाटक श्री पै के उत्कट देशप्रेम, अगाध ज्ञान एवं नाट्यकला का उत्तम प्रमाण प्रस्तुत करता है। इसमें चित्रित दुःख की भावना, भावुक प्रेम और वीरता खूब आकर्षक हुई हैं।

वेणुगोपाल के अतिरिक्त यशोदा, जाह्नवी, पुलीस अधीक्षक रामदयाल, मुख्य पुलीस अधिकारी, गुलाम अली एवं चार अतिरिक्त पुलीस अधिकारी इस नाटक के पात्रों में आते हैं। नाटक सौ पृष्ठों का है। मंच पर वह नाटक रात के ग्यारह बजे शुरू होकर सबेरे चार बजे तक चलता है। नाटक का स्थान एक पुराना घर है। रस्सी का एक पलंग, घास की चटाई, बैठने का पीढ़ा, दीवार के अन्दर बनाये गये खोखले स्थान पर जलनेवाला तीन बत्तियोंवाला तेल का दिया, ईश्वर का चित्र , ये ही घर की वस्तुएँ हैं। नाटक की शुरूआत एक गीत से होती है। यह गीत ताल एवं लय के सहारे गाया जा सकता है। साधारण परिस्थिति में सफलता के साथ अभिनय करने योग्य अनेक गीत इस नाटक में हैं।

प्रारंभ का प्रार्थनागीत नीचे दिया गया है –

'मोहिनी डालनेवाली मेरी प्रियतमे ! मेरे सामने आकर भय को

दूर करो। मुझे देख लो, मेरा शरीर देख लो, मेरे संग में आनन्द ले लो और मुझे आनन्द दे दो।' यह राधा की श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम भरी भक्ति है।

जाह्नवी की ईश्वर से की गई प्रार्थना नीचे दी गई है –

'सुन्दरता की मूर्ति हे ईश्वर ! राधा के जीवन के एकमात्र आधार, तुमने मुझसे कहा कि मथुरा जाने के पहले दूसरे ही दिन तुम यहाँ आओगे। आज तक तुम क्यों नहीं आए? जिस प्रकार चुंबक सोने को छोड़कर लोहे पर आसक्त रहता है उसी प्रकार तुम जब से उस बौनी नौकरानी से प्रेम करने लगे तब से मुझे छोड़कर गए क्या?' स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेनेवाला वेणुगोपाल अब तक लौटकर नहीं आया। यह प्रार्थना प्रसंगोचित है।

वेणुगोपाल ने जो गीत गाया वह नीचे दिया गया है। वह संदर्भ के अनुकूल है -

'विजय के समय तक स्वयं छिपे रहनेवाला मनुष्य बुद्धिमान होता है। वह डरपोक नहीं होता। युद्ध के दाव पेच में निपुण रहता है। यह निश्चित है कि वह अपने शत्रुओं को धूल खिलाएगा। कारागार में पड़कर नष्ट होनेवाला जीवन अर्थहीन एवं निरुपयोगी होता है।' वेणुगोपाल को पुलीस ने गोली से जीते जी मार डाला। उस समय उसके हाथ अपने हाथों में लेकर जाह्नवी ने जो गीत गाया वह नीचे दिया गया है –

'मेरे प्रिय, तुम संसार छोड़कर चले गये। मैं अकेली क्यों कर जियूँ? मेरा जीवन एक बाँझ गाय के जैसा है. तुम्हारी मुरली का संगीत सुनकर फण पसारनेवाले सर्प के समान मैं बहुत प्रसन्न होती थी। उस संगीत का अमृत पीने के लिए हमेशा तैयार रहती थी। मेरा शरीर एवं मन दोनों अपनी आँखों में रखकर मैं प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। मैंने सुख के कई सपने देखे। तुम्हारे वियोग का दुःख मैं सह नहीं सकती। करुणामयी यमुना मेरी बाट देख रही है। तुम्हारी राधा जमुना में पहुँचने के लिए बेचैन है।' माधव के प्रति राधा के प्रेम का जैसा जाह्नवी का पवित्र प्रेम इस गीत में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

श्री गोविन्द पै का भाषा पर अधिकार उनकी विद्वत्ता एवं बुद्धिमत्ता, काव्यकुशलता और देशप्रेम कलात्मकता के साथ 'चित्रभानु' नाटक में सजाया गया है। नीचे दिये गये कथन एवं उनकी अभिव्यंजना शक्ति ज़रा देखिए –

> 'मेरा एक ही बेटा है। कड़ाही के मधुर अपूप जैसा, पकाने की सात खोटियोंवाला।'
>
> 'आधी रात के पहले जो सपने आते हैं उन पर विश्वास न करना। ये

कार्क वृक्ष की लकड़ी के समान मुलायम और खोखले रहते हैं।'

'आज के युद्ध में वह एक धैर्ययुक्त वीर है, लंबे दाँतोंवाले बड़े हाथी के समान। दूसरों को छाया प्रदान करते हुए स्वयं धूप में तपनेवाली छत्री के समान।'

'वेणु के बिना हम क्या करेंगे? हम उन केशों की जुओं के समान हैं जिन्हें कंघी न किया गया हो।'

'मन में द्वेष नहीं है, पर वह थोड़ा अस्वस्थ हुआ है,जैसे कि सूखा करेला खाने से होता है'

'तुम दोनों उँगली एवं नख के समान एक दूसरे के साथ पले बढ़े।'

'मेरे हृदय में हमेशा वेदना रहती है जैसे कि कोई कील ठोंक दिया गया हो।'

'साँप के द्वारा चूसे गये गाय के थन के समान हम निरर्थक एवं बेकार रहे।'

'जिस प्रकार हम गीले हाथों से गाय के थन निचोड़ लेते हैं उसी प्रकार बड़े लोग अपनी कल्याणकामना से प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए अहिंसा का उपयोग करते हैं।'

'बाँबी में साँप की वक्रता सहज ही है। मेरी माँ, आज हम जिस बात को छिपाते हैं वह हमारे ध्येय की पूर्ति में सहायक होगी।'

'डुबकी लगाकर मोती खोजनेवाला जब तक पानी से ऊपर नहीं आता तब तक मरे हुए के समान होता है। उसी प्रकार स्वतन्त्रता संग्राम के ये सैनिक विजय प्राप्त करके जब तक नहीं लौटते तब तक मरे हुओं के समान हैं।'

'घर की दरिद्रता का परिमाण तराजू क्या जाने?'

'नारियल के पेड़ पर चढ़नेवाले को एवं सुपारी के पेड़ पर चढ़नेवाले को पैरों का घेरा समान होता है क्या?'

'उसको इस बात की भी समझ नहीं है कि बकरी के कितने और गाय के कितने थन होते हैं।'

'जैसे ज़ाने की हड़बड़ी में उँगली द्वार के बीच पड़ जाती है वैसे।'

'जिस प्रकार मछली अपने अंड़ों को मुँह में रखती है और बच्चों के बाहर आने तक भूखी रहती है उसी प्रकार।'

'जिस प्रकार हल चलानेवाले एवं बोझ ढ़ोनेवाले बैलों से गाय को अलग रहना पड़ता है वैसे ही साहसी वीरों की माताओं को अपने

बच्चों से दूर रहना पड़ता है।'
'ईश्वर ने अंग्रेज़ों को लात मार दी, ऊपर छत पर नहीं, बल्कि स्वर्ग पर।'
'जिस प्रकार धोबी पाले हुए हाथी की पीठ पर गन्दे वस्त्रों का पोटला रखता है वैसे ही अंग्रेज़ों ने हम पर तरह तरह के कर लगाये।'
'केकड़े के पैरों को न तोड़नेवाला कोई मछुआ हो सकता है?'
'केद्दासा की हवा जैसे शीघ्र उड़नेवाले उन्होंने, जिनके नाक थे उन्हें सर्दी और जिनके सिर थे उन्हें सिरदर्द प्रदान किया।'
'जो सुगन्ध तूफान में नहीं रह सकती उसीके समान।'
'रास्ते की ओर खुलनेवाले द्वार पर रखे हुए दिये के समान'
'हमारा काम खटमल की तरह काटना, बदबू फैलाना और डंक मारना है।'
'नाश की देवता, 'मारी' के आने के द्वार नहीं होते। वह जहाँ हाथ लगाती है वहीं पर राह बन जाती है।'
'रसोई घर में मुर्गे को पकाने के लिए मसाले के मिश्रण का अनुमान जिस प्रकार मुर्गे को नहीं होता वैसे ही।'
'तूफान के पहले सागर जिस प्रकार बहुत दिनों के लिए सोता रहता है उसी प्रकार।'
'बिल्ली के जैसे देखना है, कुत्ते के जैसे सुनना है, साँप के जैसे सरकना है और मगर के जैसे पकड़ना है।'
'जिस प्रकार दाँतों के बीच में जीभ रहती है।'
'जल को ऊपर की ओर खींचनेवाले यंत्र के समान थोड़े लोग अंग्रेज़ों को प्रणाम करते हैं और रहस्य में अपने बाग को सींचते हैं।'
'जिन झाड़ों और वृक्षों को कुल्हाड़ी ने काटा है उनको कुल्हाड़ी बार बार चूमती है न?'
'हम गाय को उसकी ज़रूरत के अनुसार खाना देते हैं और जब चाहते हैं उसके दूध को निचोड़ लेते हैं।'
'पृथ्वी पर हाथ से मारने से जिस प्रकार काले कीड़े नीचे गिरते हैं वैसे ही।'
'तुम वैसे क्यों कहते हो?मेरी रक्षा करने के लिए ईश्वर नहीं है क्या? वे मेरी दोनों आँखें एक हाथ से तोड़ लेते हैं तो दुसरे हाथ से मुझे राह

दिखाए बिना कैसे रहेंगे?'

'चित्रभानु' नाम के नाटक और उसके लेखक के गुणों को दिखाने के लिए इन चुटकुलों को छोड़कर दूसरे कौन से प्रमाण हो सकते हैं?

वेणुगोपाल का सशक्त चरित्र त्याग, उत्साह और शौर्य से भरा है। वह अपनी मातृभूमि पर विदेशों का शासन सहन नहीं कर सकता। उसके खातिर वह मरण का वरण करने के लिए भी तैयार रहता है और अपने को आहुति देता है। यह चरित्र पाठकों और प्रेक्षकों को प्रेरणा देता रहता है। उसी प्रकार उसकी प्रेमिका, जाह्नवी का प्रेम गहरा रहा है। अपने प्रेमी को ईश्वर समझनेवाली वह उसके खातिर कोई भी त्याग सहन करने के लिए तैयार रहती है। इसके फलस्वरूप उसने अपने को ही आहुति दे दी। उसका प्रेम उदात्त, सरल एवं पवित्र है। उसका चरित्र भी पवित्र है। यशोदा का चरित्र सबसे श्रेष्ठ रहा है। अपने जीवन में वह बहुत कुछ सह लेती है। वह ऐसी एक नारी है जिसे अपने पति, संपत्ति एवं कुटुंब से हाथ धोना पड़ता है। वह पड़ोस की अनाथ लड़की को शरण देती है और अपनी बेटी के समान उसको पालती है। अपने बेटे एवं जानकी की शादी की एवं पति पत्नी के रूप में उनके सुखी जीवन की वह इच्छा करती है। लेकिन विधि का निर्णय कुछ और ही होता है। वेणु एवं जाह्नवी उसकी दो आँखों के समान हैं। दोनों अपना जीवन खो देते हैं। उस समय यशोदा की सहनशीलता देखने लायक है। वह विश्वास करती है कि उसकी दोनों आँखों को तोड़नेवाला ईश्वर उसे अपने साथ ही रखेगा। यशोदा संस्कार संपन्न भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। रॉबर्ट सावेज नाटक का खलनायक है । वह ब्रिटिश राजसत्ता का प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ इस बात का स्मरण रखना चाहिए कि हमारे स्वतन्त्रता संग्राम में तरह तरह के पुलीस अधिकारी रहे थे।

इस प्रकार 'चित्रभानु' एक सुन्दर नाटक एवं मूल्यवान साहित्य रचना ठहरती है।

अध्याय - ६

गद्य रचनाएँ

'श्रीकृष्णचरित्रे' (श्रीकृष्ण का जीवन) और 'कन्नडद मोरे' (कन्नड़ देश का आश्रय)

श्री गोविन्द पै गद्य रचनाओं के और संवादात्मक काव्य रचनाओं के एक प्रतिभावान लेखक थे। नाटकों के संवादों में उनके गद्य की मनोहर शैली देखने को मिलती है। गद्यरचनाओं में लेखक सहजता के साथ विस्तार से वर्णन करने को बाध्य रहता है और हर हालत में उनके वाचाल होने की संभावना भी रहती है। तो भी श्री पै ने अपना गद्य अनुपमेय शैली में ही रचा है। उनकी वाक्यरचना खचाखच शब्दों से भरी रहती है। उनमें दूसरे शब्द जोडने या तोड़ने का अवसर नहीं मिलता। हर एक साहित्यरचना में सौन्दर्य उसकी संपन्न शब्दावली में दिखाई देता है। चूँकि श्री पै को अधिकाधिक बीस पच्चीस भाषाओं का ज्ञान था इसलिए उनके पास शब्दावली का बहुत बड़ा भंडार ही रहा था। साहित्य एवं दर्शन की पुस्तकों एवं जीवन के अनुभवों से उपलब्ध ज्ञान की सहायता से उन्हें आकर्षक एवं आलंकारिक भाषा में विषय को अभिव्यक्त करने की शक्ति मिली। कन्नड़ भाषा को नई उम्मीद प्रदान करने में श्री पै सफल हुए। अपनी मातृभाषा, कोंकणी, देशी भाषा, तुळु और संस्कृत आदि भाषाओं की जानकारी से श्री पै ऊँचे दर्जे के लेखक बने और उन्होंने अपनी एक अतुलनीय शैली विकसित की। बीसवीं शताब्दी के उषःकाल में जब आधुनिक कन्नड़ भाषा के मुर्गे कन्नड़ प्रदेश के कई स्थानों पर बोलने लगे थे उस समय लोगों को जागृत करने का प्रयत्न करनेवाले कवियों के बीच श्री पै सर्वप्रथम रहे थे। देशी शब्दप्रयोग को हळेगन्नड (पुरानी कन्नड़) शब्दों से मिलाकर नये नये शब्दप्रयोग एवं कहावतें तैयार करते हुए श्री पै ने आधुनिक कन्नड़ भाषा के विकास के लिए एक नई पगडंडी तैयार की। इस प्रकार उन्होंने कन्नड़ भाषा के क्षेत्र में ज़रूरत के अवसर पर बडा मूल्यवान कार्य किया। उन्होंने संस्कृत शब्दों के साथ 'इसु' प्रत्यय लगाकर उनका रूपान्तर करते हुए नये नये कन्नड़ शब्द तैयार किए। जैसे - 'सव्यसाचिसु' (एक ही समय पर दोनों हाथों से काम करना), 'कवनिसु' (कविता करना), 'धावतिसु' (जल्दी जाना) आदि। उन्होंने नये शब्द भी गढ़ लिए। उदाहरण के लिए - 'अक्षरिके' (अक्षर लिखना एवं उच्चारण), 'बेळ्ळारु' (गोरे), 'मनवरिके' (स्मरण),

‘निर्णयिके’(निर्णय)। उन्होंने खूब कहावतें एवं मनोहर शब्दप्रयोग तैयार किए। उदाहरण के लिए - ‘केरे हावु हीरिदे केच्छलन्ते’ (साँप के द्वारा चूसे गए गाय के स्तनों के समान),‘रंपने बलेयन्नु बीसु’ (धीवर का बड़ा सा जाल दूर फेंक दो), ’हुनिसे मुप्पादरु हुळि मुप्पादीते’ (इमली का खट्टापन वृक्ष के बढ़ते बढ़ते ज्यादा होता है?), ’उगुरिल्लद बेरळन्ते’ (नाखूनरहित उँगली के जैसे), ‘एळु होंडक्के ओंदु अप्पदन्ते’(पकाने के सात छिद्रोंवाले एक अपूप के समान)।

इस प्रकार श्री पै ने कन्नड़ भाषा की गद्यशैली को नवीनता प्रदान की । उनकी गद्यरचनाएँ और कविताएँ इस प्रदेश की प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। उनकी कविताएँ तो पुस्तक रूप में प्रकाशित की गईं । फिर भी अनेक रचनाएँ संग्रह करते हुए प्रकाशित करने के लिए बाकी रह गई हैं। उनके गद्यसंग्रह प्रकाशित करने के थोड़े प्रयत्न हुए हैं। उनकी असंख्य गद्य रचनाएँ आज भी विभिन्न पत्रिकाओं में ही अटकी हुई हैं। उनके शोधपरक लेख राष्ट्रकवि गोविन्द पै अनुसंधान केन्द्र, उडुपी के द्वारा प्रकाशित हुए।

श्रीकृष्णचरित

श्री पै की गद्यशैली का पहला उदाहरण हमें ‘श्रीकृष्णचरित’ नाम की उनकी रचना में मिलता है। यह गद्यरचना श्री पै ने ई.स.१९०९ में लिखी। बंगला के प्रसिद्ध कवि श्री नवीनचन्द्र सेन ने कृष्णचरित को आधार बनाकर ‘रैवतक’, ‘कुरुक्षेत्र’, और ‘प्रभास’ नाम के तीन काव्य रचे। श्री पै का यही विचार है कि दुसरी भाषाओं की रचनाएँ कन्नड़ भाषा में काव्यरूप में अनुवाद करते वक्त मूल कवि का महत्व अनुवाद में भी लाने का कार्य बहुत कठिन रहता है। मंगलोर के ‘स्वदेशाभिमानी’ पत्र में इसका प्रथम प्रकाशन हुआ।

इसके बाद पुस्तक रूप में इसे छापा गया। भागवत के समान महाभारत भी श्रीकृष्णचरित को आधार बनाकर लिखा गया है। कौरव एक सौ थे और उन्होंने हस्तिनावती का शासन अपने हाथों में ले लिया। भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण. और अश्वत्थामा जैसे महान वीर नायकों की सहायता उन्हें मिलती रही। ग्यारह अक्षौहिणियोंवाली सशक्त सेना उनके पास थी। लेकिन पाण्डव जिन्होंने बारह वर्षों का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास किया, धर्मक्षेत्ररूपी कुरुक्षेत्र के महान युद्ध में उन कौरवों को पराजित किया। श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डवों की विजय हुई। मनुष्यों में श्रेष्ठ

नारायण और नर को नमन करते हुए व्यासमुनि ने अपना महान ग्रंथ 'जय' नाम का महाभारत लिखा। कन्नड़ भाषा के लक्ष्मीश नाम के महाकवि ने 'जैमिनी भारत' नाम के एक लोकप्रिय महाकाव्य की रचना की। इस कृति को उन्होंने 'श्रीकृष्णचरितामृत' नाम दिया। 'हरे कृष्ण' का धार्मिक संप्रदाय आज संसार भर में व्याप्त रहा है। श्री पै के 'श्रीकृष्णचरितामृत' नाम के अनुवाद में श्रीकृष्ण की परम सत्ता मुख्य रही है। अन्त में उनके प्रेमी तथा उनके द्वेषी भक्ति से उनके साथ एकाकार हुए। इस ग्रंथ की कथा में सिद्ध किया गया कि गीता का प्रसिद्ध वाक्य 'जो कोई जिस भाव से मेरे पास आता है उसी भाव से मैं उसको फल देता हूँ' सत्य ही है।

श्रेष्ठ काव्यरचना को जिन गुणों की आवश्यकता रहती है उन गुणों का समावेश इस रचना में हुआ है। आर्य और अनार्यों के बीच का संघर्ष, कर्मकाण्ड में अटल विश्वास, जाति के अभिमान को तोड़ना, ऋषियों के बीच जैसे व्यास और दुर्वासा की शत्रुता एवं उसका परिणाम, प्रेम, निराशा और अनार्य नागों की टोली के वासुकी के ज़रिए जरत्कारू और शैलजा ने जिस सन्तोष का अनुभव किया, इन सब का इस रचना में हृदयावर्जक रूप में वर्णन हुआ है। अपना आत्मसंयम, मन की स्थिरता और दूसरे सुसंस्कृत गुणों के खातिर इस रचना में सुभद्रा का चरित्र दूसरों से बढ़कर ऊँचे स्थान पर रहा है।

लहर समुद्र के किनारे टकरा कर शान्त हो जाती है

इस ग्रंथ के प्रारंभ से लेकर कवि पौराणिक साहित्य के देवों और असुरों के बीच के युद्ध का वर्णन विशेष रूप में करते हैं। यह युद्ध ईसाइयों के धर्मग्रंथ के ईश्वर और शैतान के बीच के युद्ध के जैसा रहा है। पुराणकाल के परस्पर विरोधी तत्वों के, जैसे अच्छा और बुरा, सत् एवं असत्, प्रेम एवं तिरस्कार के बीच के युद्ध एवं उसके परिणाम के जैसा रहा है। नायक और प्रतिनायक के बीच होनेवाला यह संघर्ष, मानवी गुणों के विरुद्ध प्रतिनायक के व्यवहार एवं उसका विरोध करनेवाली व्यवस्था आदि जो पुराने श्रेण्य ग्रंथों को महत्व प्रदान करते हैं उन सबका चित्रण इस ग्रंथ के विस्तृत कैन्वास पर किया गया है। इस युद्ध और कोलाहल की लहरें उठती हैं, समुद्र के तट से टकराती हैं और शान्त होकर लौट जाती हैं। यह आश्चर्य की बात है कि इस विरोध का चित्र, यह टक्कर एवं युद्ध, सब कुछ कृष्ण की भक्ति से संबन्धित रहा है। श्री पै ने इस अनुवाद में इस प्राचीन गद्य रचना को मूल ग्रंथ का सौन्दर्य नष्ट किए बिना प्रयत्नपूर्वक प्रस्तुत किया है। श्री पै की

कुशलता एवं कलात्मक नैपुण्य की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जाता। पै ने प्रारंभिक अवस्था में इस ग्रंथ का निर्माण किया फिर भी इस रचना में उनकी परिपक्वता देखने को मिलती है। 'श्रीकृष्णचरित' में उन्नीस अध्याय हैं। 'पूर्वस्मृति' (पुरानी यादें) पहला अध्याय है। 'स्वर्गारोहण' उन्नीसवाँ अध्याय। 'सोहम्' (मैं वही हूँ),'नारी धर्म' (स्त्री का धर्म), 'सुखतत्व' (सन्तोष के तत्व), 'सम्मिलन' (एकता), 'महाभारत', 'अदृश्ट फल' (भाग्य का फल), 'घर्मक्षेत्र' (धर्म का क्षेत्र),'ताई मत्थु मग' (माँ और बेटा), 'व्याध' (शिकारी), 'वीरन शोक' (वीर का दुःख), 'छाया' (छाया), 'अभिशाप' (महान शाप), 'इब्बरू सोदरियरू' (दो बहनें), 'महाप्रस्थान' (महाप्रस्थान), 'वीणपूमस्वर' (वीणा की आवाज), 'प्रायश्चित्त' (प्रायश्चित्त) नाम का बीच का अध्याय श्रीकृष्ण के महान चरित्र के विकास को दिखाने के लिए चुन लिया गया है। इसके अलावा उन्होंने इस चरित्र के विकास के लिए महाभारत से आवश्यक सामग्री भी ग्रहण की है।

सुभद्रा, अर्जुन, अभिमन्यु और उत्तरा आदि महाभारत के चरित्रों को इस पुस्तक में खूब महत्व दिया गया है। ये चरित्र श्रीकृष्ण के निकटतम एवं प्यारे हैं। श्रीकृष्ण से दूर रहनेवाले चरित्र भी वैर, द्वेष और प्रतिकार के कारण नाश के कगार पर रहते हुए भी श्रीकृष्ण की दया के पात्र बनकर शान्ति से चरम बिन्दु पर पहुँच जाते हैं। श्रीमद्भागवत में बताए हुए तत्वों एवं तत्वदर्शन को इस ग्रंथ में बड़ा महत्व दिया गया है। ऐसा लगता है कि सुभद्रा के चरित्र में ये तत्व मिले हुए हैं। हमारे देश के अनेक महाकवि अपने महाकाव्यों के विषय महाभारत से, भागवत से और रामायण से चुन लेते हैं। यह सत्य इस पवित्र ग्रंथ के महत्व को सूचित करता है।

'श्रीकृष्णचरित' की कथा का अच्छा ज्ञान सब लोगों को है। भागवत एवं महाभारत को जिन्होंने पढ़ा है वे लोग उन ग्रंथों के चरित्रों से परिचित है। श्री पै की कल्पनाशक्ति के ज़रिए चरित्रों का रूपान्तर कैसे हुआ है और यह परिवर्तन किस प्रकार इस ग्रंथ के महत्व को बढ़ाता है, यह बात इस अनुवाद से स्पष्ट हो जाती है। भारतीय साहित्य के क्षेत्र में शाश्वत स्थान प्राप्त करनेवाली बंगाली भाषा में लिखा हुआ यह काव्य श्री पै के प्रयत्न के फलस्वरूप कन्नड़ लोगों के लिए सुलभ बन गया है। यह कन्नड़ लोगों के सौभाग्य को ही दिखाता है।

आधुनिक भारत में बौद्धिक पुनरुत्थान में बंगाल प्रारंभकाल में सबसे आगे जागृत हुआ। बंगाल के बुद्धिमान लोग हमारे देश के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्रों में आगे थे।

विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र, केशवचन्द्र सेन, टागोर, सुभाषचन्द्र बोस जैसे महान व्यक्तियों ने लोगों के सामने नये नये विचार प्रस्तुत किए। इस बौद्धिक पुनरुत्थान के काल में श्री नवीनचन्द्र सेन ने ऊँचे दर्जे का अपना काव्यग्रंथ तैयार किया और मानवमूल्यों के महत्व का प्रमाण प्रस्तुत किया। वही पुस्तक कन्नड़ भाषा में श्रीकृष्णचरित नाम से प्रकाशित हुई।

कौन श्रेष्ठ और कौन निकृष्ट

सभी मनुष्य समान हैं। स्नायु एवं इन्द्रिय सब एक समान है। जन्म और मरण भी सब के लिए समान हैं। गोपालक निम्न जाति का है और ब्राह्मण श्रेष्ठ जाति का है, इस प्रकार लोग क्यों सोचते हैं? चार जातियाँ, असंख्य देवी देवता और निर्दय होकर जानवरों को मार डालनेवाले यज्ञ, ये सब अन्धे आचार हैं। श्रीकृष्ण ने इन अन्धे आचारों को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने आर्य एवं अनार्य के बीच होनेवाले युद्ध को समाप्त करने का प्रयत्न किया। लेकिन दुर्वासा का चरित्र इसके ठीक विपरीत रहा। इस परस्पर विरोधी प्रकृति के बीच जो टक्कर हुई उसके परिणामस्वरूप कुरुक्षेत्र का महायुद्ध हुआ।

'जो व्यक्ति पापियों से प्रेम करता है वही मेरे लिए प्रिय होता है। पृथ्वी सुगन्धित और सुगन्धरहित फूलों को समान रूप से संभाल कर रखती है। सागर अपने वक्षस्थल पर जैसे मूल्यवान रत्न संभालकर रखता है उसी प्रकार असंख्य पत्थर के रोड़े और मिट्टी के कण भी संभालकर रखता है।'

ये सुभद्रा के विचार हैं। अधिकांश चरित्र यहाँ पर यह दिखाते हैं कि सृष्टि में स्त्रियाँ विश्वमाता के प्रतिबिंब होती हैं और दया एवं ममता की प्रतिमूर्ति रहती हैं। इस पुस्तक में व्यक्त किए गए गहरे विचार नीचे दिये गये हैं –

'अपने बच्चों की माँ बनने में क्या महत्व है? वैसे ही अपनी माँ का बच्चा बनने में कैसा महत्व? सच्चे अर्थों में दूसरे के बच्चे की माता बनने में महानता रहती है। वैसे ही दूसरी माता का बच्चा बनने में ही महत्व रहता है।"पाप और पुण्य, धर्म और अधर्म संसार की रीत है। ये अन्धकार में शोभित होनेवाले रत्न हैं। हिंसा एवं प्रेम घटनाओं के चक्र में बार बार जगह बदलकर आते रहते हैं। तुम जिसे निष्ठुर कहते हो उस पापी के क्रूर नाटक को तैयार करनेवाले कलाकार का संचालक दया की मूर्ति और पुण्य का सागर है।' 'सृष्टि और पालन उनकी माया का ही एक भाग है। वैसे ही नाश भी। नाश का महान यज्ञ भी धर्म ही होता है। नाश एवं नीति का आधार दया है। आज बड़े सन्तोष एवं दुःख का दिन समाप्त हो गया।

दुःख मनुष्य के सन्तोष का आधार रहता है। हमारे समान दुःखी तीन मनुष्य इस संसार में रहते हैं क्या?'

हर एक क्रिया की समान एवं विरोधी प्रतिक्रया होती है। यह सोचने का वैज्ञानिक तरीका है। अच्छे कर्मों के फल अच्छे होते हैं और बुरे कर्मों के बुरे। यह सब प्रकृति का ही खेल है। यही अनन्त शक्ति के अस्तित्व का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

'इन धक्कों एवं उनकी प्रतिक्रियाओं के कारण यह पृथ्वी विकसित होती रहती है। समुद्र में मोती एवं प्रवाल बिखरे पड़े हैं। ये ही धक्के एवं उनकी प्रतिक्रियायें संसार में भी रहती हैं।'

इस प्रकार के प्रतिबिंब जो इस पुस्तक में इधर उधर दिखाई पड़ते हैं, श्री पै की भावना , कविता के सौन्दर्य की गहराई एवं उसका वैभव दिखाते हैं।

श्री पै का कुलदेव काळीयमर्दन कृष्ण हैं। इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। उनकी कविताओं और अन्य लेखन में कृष्ण एवं हरि के नाम बार बार आते रहते हैं। उनके कविता संग्रह,'गिळिविंडु' का समर्पण कृष्ण को ही किया गया है। उनकी घरवाली का नाम भी कृष्णा ही है। श्री पै ने अपनी अनेक कविताओं में 'देवकीतनय' तूलिका नाम दिया है। श्री नवीनचन्द्र की कविता को उन्होंने उम्मीद एवं आश्चर्य से पढ़ लिया, उनके गुण या योग्यता का परिचय प्राप्त किया और कन्नड़ भाषा के गद्य में उसका अनुवाद किया। इस पृष्ठभूमि को मन में रखना इस समय उचित ही रहेगा। इस ग्रंथ में चरित्रों की प्रकृति एवं क्रियाशीलता सामान्य रूप से सरल शैली में चित्रित की है। जिस प्रकार दूसरी पौराणिक कथाओं में कहा गया है वैसा अमानुषी कार्य एवं चमत्कार इस ग्रंथ में नहीं है। यही नहीं, श्रीकृष्ण का चरित्र मानुषी गुणों से युक्त है। इन गुणों के खातिर अंग्रेज़ी संस्कृति एवं वैज्ञानिक विचारों के ज़रिए प्रेरणा लेनेवाले श्री पै ने नवीनचन्द्र सेन की पुस्तक को उम्मीद के साथ पढ़ा।

उसने मुझे कन्नड़ भाषा का आश्रय दिया

श्री पै का गद्यलेखन 'कन्नड़ भाषा के आश्रय में' नाम की पुस्तक में संग्रहीत किया है। सन् १९५० में मुंबई में संपन्न ३४वें कन्नड़ साहित्य सम्मेलन का श्री पै का अध्यक्षीय भाषण 'कन्नड़ भाषा के आश्रय में' नाम से किया गया और इसी शीर्षक से गद्यलेखन का संग्रह भी तैयार हुआ। इस

संग्रह में श्री पै के चौदह लेख हैं।

सामान्यतः श्री पै प्रतिष्ठा, पदवी एवं आदर स्वीकार करनेवाले नहीं थे। साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष पद पहले बहुत बार उनको मिल गया था, लेकिन उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। बाद में अपने मित्रों के बार बार आग्रह करने पर मद्रास सरकार के द्वारा दी गई कन्नड़ भाषा की 'राष्ट्रकवि' की पदवी एक वर्ष पहले उन्होंने स्वीकार की। उसी प्रकार उसी समय कन्नड़ साहित्य परिषद के अध्यक्ष, श्री एम. आर. श्री के आग्रह को मानकर उन्होंने मुंबई में संपन्न कन्नड़ साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष पद भी स्वीकार किया।

साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में

अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने विनयपूर्वक कहा कि पिछले जन्म की किसी अनजान मित्रता एवं जान पहचान के कारण यह पदवी मुझे प्राप्त हुई। फिर उन्होंने इस ऐतिहासिक सत्य का उल्लेख किया कि प्राचीन काल में कर्नाटक राजाओं ने गोवा एवं मुंबई पर शासन किया था। उन्होंने इस बात की प्रशंसा की कि मुंबई में थोड़े लाख कन्नड़ लोग रहते थे और इसी कारण मुंबई में इस सम्मेलन को चलाने का कार्य उचित ही है। अभिलेखों से उदाहरण देकर उन्होंने कन्नड़ साहित्य के प्राचीन रूप की जानकारी लोगों को दे दी। प्राचीन काल से अब तक साहित्य की शैली, छन्द, अलंकार एवं भाषा में भिन्न भिन्न क्षेत्रों में दिखाई पड़नेवाले परिवर्तनों के बारे में भी उन्होंने संक्षिप्त रूप में कहा। वचन, दसा और यक्षगान के साहित्य के बारे में भी विवरण देकर उन्होंने इन साहित्य रूपों के लोकप्रिय बनने के कारणों के बारे में विस्तार से कहा। कन्नड़ भाषा के विकास के लिए उन्होंने अनेक संकेत प्रस्तुत किए और बहुत नये नये शब्दों के प्रयोग से भाषा को शक्ति प्रदान करने पर बल दिया। उन्होंने इस ओर भी संकेत किया कि संस्कृत शब्दों के साथ 'इसु' प्रत्यय जोड़कर नये नये शब्द तैयार करने हैं। उन्होंने कहा कि दूसरी भाषाओं के आवश्यक शब्दों को अपनी भाषा में ले आने के कार्य में किसी प्रकार की हिचक नहीं करनी चाहिए। उन्होंने सलाह दी कि संसार की दूसरी सुप्रधान भाषाओं के महान ग्रंथों का अनुवाद कन्नड़ भाषा में किया जाना चाहिए और ये ग्रंथ कन्नड़ भाषा के गद्य में अनूदित किए जाने चाहिए। उन्होंने दृढ़ता के साथ कहा कि कन्नड़ भाषा की रचनाएँ भरपूर सारतत्व एवं भावनामय शक्ति से युक्त होनी चाहिए।

ऐसी ही रचनाएँ हमेशा के लिए जीवित रहती हैं। भविष्य में इस तरह की रचनाओं के निर्माण का उन्होंने आग्रह प्रकट किया। साहित्य परिषद ने ज़िस कोश का निर्माण प्रारंभ किया था उसके बारे में भी उन्होंने कहा और कुछ मूल्यवान संकेत भी प्रदान किए। साहित्य सम्मेलन के साथ हर वर्ष एक विज्ञान सम्मेलन भी चलाने की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया। दूसरों के अणुबम से हमारे देश की रक्षा करने के लिए हमें अनिष्ट बम (शक्तियुक्त अणुबम) का निर्माण करना है, इसका भी उन्होंने जिक्र किया। उन्होंने विनयपूर्वक कहा –'मैं दूसरों को धर्मोपदेश मात्र नहीं देता। उसे काम में भी लाता हूँ। मैं वक्ता भी हूँ और श्रोता भी हूँ। मैं केवल दूसरों से सीखता हूँ। दूसरों को सिखाता नहीं।' हमारी दो आँखों के समान हर एक कन्नड़ व्यक्ति को भारतीय एवं कन्नड़िग होना पड़ता है। इस प्रकार दृढ़ संकल्प और आग्रह करते हुए उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया।

रोमांचक स्थिति

मुंबई के कन्नड़ साहित्य सम्मेलन में इस लेखक ने भी भाग लिया था। इसी समय मैंने 'राष्ट्रकवि गोविन्द पै' नाम की पुस्तक लिखी। श्री पै को मैंने इस पुस्तक की एक प्रति भी भेंट की और दूसरी प्रति पर उनके हस्ताक्षर भी ले लिए। इस सम्मेलन के समय मुझे जो हृदयस्पर्शी अनुभव हुआ उसका वर्णन मैं यहाँ करता हूँ।

मुंबई के 'कवस जी जहाँगीर' नाम के सभाघर में सम्मेलन हो रहा था। छोटे बड़े बहुत लोग वहाँ आये। मुंबई में रहनेवाले कन्नड़ लोग हज़ारों की तादाद में पहुँचे। इतिहास में श्री पै एक अनुसंधाता के रूप में प्रसिद्ध रहे। अपने बहुभाषा ज्ञान के लिए भी वे प्रसिद्ध थे। इसलिए गुजराती, मराठी, हिन्दी. अंग्रेज़ी आदि दूसरी भाषाओं के पंडित भी कन्नड़ लोगों के साथ वहाँ रहे थे। सभाघर पंडितों, साहित्यिकों और सामान्य लोगों से भरा हुआ था। मंच पर कई प्रौढ़ लोग बैठे थे। मैसूर का मेरा एक मित्र मेरे साथ था। उसने मंच पर दृष्टि लगाकर मुझसे पूछा कि श्री पै कहाँ बैठे हुए हैं? पै अब तक मंच पर नहीं गए थे। सामनेवाली कतार में कुर्सी पर बैठे थे। हमेशा के जैसे मंजेश्वर के अपने घर में वे जो वस्त्र पहनते थे वही वस्त्र एवं सादापन लिए हुए थे। उनके मुख पर मूँछें शोभित थीं। उनके सफेद केश, तेजपूर्ण दृष्टि, खादी का 'मुण्डु' और छोटे हाथोंवाला छोटा सा कमीज़ था। उस प्रकार संपन्न एवं शिष्टमान्य पहनावा धारण करनेवाले मुंबई के

मालदार और मान्य व्यक्तियों के बीच यह तपस्वी कवि अपने सादेपन के गौरवपूर्ण तेज में शोभित हो रहे थे। श्री पै हमारे पास ही बैठे हुए थे । फिर भी यह नाटक आगे ले जाने के उद्देश्य से मैंने मैसूर के अपने मित्र को श्री पै का परिचय नहीं कराया। वहाँ एकत्रित लोगों को आकर्षित करनेवाले श्री पै को देखने की यह इच्छा अनुमान करने योग्य ही थी।

आचार के अनुसार अध्यक्ष के पद को अलंकृत करने के लिए श्री पै के नाम का प्रस्ताव किया गया और उसका समर्थन भी हुआ। वे अपनी कुर्सी से उठ खड़े हुए और मंच को लक्ष्य करके आगे बढ़े। कन्नड़ भाषा के उपाध्याय के रूप में प्रसिद्ध श्री अळूर वेंकटराव मंच पर बैठे प्रौढ़ व्यक्तियों में एक थे। उस समय अळूर अपने प्राचीन राजनैतिक जीवन से अवकाश लेकर धर्म की राह पर चलनेवाले एक तपस्वी के जैसे लग रहे थे। मंच पर बैठे हुए बड़े लोगों में श्री पै से बढ़कर प्रौढ़ व्यक्ति वे ही रहे थे। श्री पै मंच पर चढ़कर आगे बढ़े। अध्यक्ष की कुर्सी पर बैठने के पहले उन्होंने झुककर श्री अळूर वेंकटराव के चरण छू लिए और उन्हें प्रणाम किया। अळूर की आँखों से सन्तोषाश्रु प्रवहित हुए।

दर्शक आश्चर्यचकित हुए। साहित्य के क्षेत्र में अपनी सहज प्रतिभा और विद्वत्ता के कारण, और मनोयोग से किए गए प्रयत्न से आज श्री पै प्रतिष्ठा की परमोन्नत पदवी अलंकृत कर रहे थे। इस पवित्र समय पर श्री पै ने साहित्य के क्षेत्र में प्रारंभिक अभ्यास करते समय अपने को प्रेरणा देनेवाले उपाध्याय श्री अळूर वेंकटराव को आदर प्रदान किया। इस प्रकार की सहज भक्ति एवं श्रद्धा इसके पहले एवं बाद में उन्होंने किसी को नहीं दी। श्री पै की इसी विनम्रता ने उन्हें ऐसी उन्नत पदवी पर पहुँचाया।

दो माताओं का पुत्र

फिर उन्होंने अध्यक्षीय भाषण किया। वह लंबा नहीं था। उनके भाषण की शैली मौलिक एवं शुद्ध थी। अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने कहा -

'मैं दो माताओं का पुत्र हूँ। कोंकणी मेरी माता है, उसने मुझे जन्म दिया। कन्नड़ मेरी धात्री है, उसने मेरा पालन किया। फ्रेंच भाषा लोकप्रिय एवं साहित्य से संपन्न है। फ्रांस राज्य के दक्षिण भाग में स्थित 'प्रोवेन्स' नाम के प्रदेश का कवि फ्रेडरिक मिस्ट्रल ने अपनी कविता फ्रेंच भाषा में नहीं लिखी। वे अपनी कविता मातृभाषा में लिखते थे। उसी प्रकार मेरी

मातृभाषा में थोड़ा साहित्य रहा होता तो मैं भी अपनी कविता उसी भाषा में करता। लेकिन मेरी माता के स्तनों में दूध नहीं था। कोंकणी में साहित्य नहीं है। इसलिए उसने मुझे कन्नड़ भाषा की देखरेख में छोड़ा। मेरी धात्री पयस्विनी थी। अनेक कवि उसका दूध पीते थे। फिर भी उसके स्तन सूखे नहीं। ईश्वर की कृपा से वह सदास्नुही, कभी न सूखनेवाले दूध का कारखाना थी। मेरी माता से भी अधिक प्यार देकर उसने दूध देकर मुझे पाला। भविष्य में जितनी भी बार मैं जन्म लूँ, यह प्यार लौटा नहीं सकूँगा। हे माँ ! तुमने जो प्यार मुझे दिया उसके समान दूसरा कोई प्यार नहीं। तुमने मुझे अमृत जैसा ताजा दूध दिया। लेकिन मैंने तुम्हें दुःख के ही सही, दो बूँद अश्रु भी नहीं दिये जिनसे तुम्हारे पैरों के अंगूठे भी धोये जा सकें। मेरे पास और क्या है? उससे तुम सन्तुष्ट रहो।'

श्री पै जब अपना भाषण दे रहे थे उनका कंठ गद्‌गद हुआ, शब्द रुक गये और आँखों में आँसू भर आए। सुननेवाले स्तब्ध रहे। दूसरी बातों पर ध्यान दिए बिना वे चुप होकर उन्हें सुनते रहे। सौ पृष्ठों में लिखने योग्य, हज़ारों शब्दों एवं शब्दप्रयोगों से युक्त अर्थों से भरे कुछ भाव उन्होंने छोटे छोटे कलात्मक वाक्यों के ज़रिए व्यक्त किए। भाषा एवं साहित्य के प्रेमी लोग उनके विचारों की श्रेष्ठता की प्रशंसा करने लगे।

कामत - पंजे स्मरणे (कामत एवं पंजे की यादें)

श्री एम. एन. कामत (१८८३-१९४०) और श्री पै एक दूसरे के साथ पढ़ते खेलते रहे थे। ई. स. १९४४ में दिसंबर २५ तारीख को मंगलोर के कानरा हाइस्कूल में श्री एम. एन. कामत के चित्र के विमोचन के अवसर पर श्री पै ने जो भाषण दिया वह श्री एम. एन. कामत का एक शब्दचित्र ही प्रस्तुत करता है। इस शब्दचित्र में एम. एन. कामत के प्रति उनका प्रेम प्रकट होता है।

गरीबी के कारण श्री कामत अपनी शिक्षा बी. ए. तक ले जाने में असमर्थ रहे। वे नौकरी की तलाश में मुंबई एवं कलकत्ता में घूमते फिरे। लेकिन इस प्रयत्न में असफलता ही उनके हाथ लगी। लौटकर उन्होंने अध्यापक के रूप में नौकरी में प्रवेश किया। बहुत समय तक अध्यापक रहे। बालकपन से ही उनके मन में छिपे पड़े साहित्य के प्रति प्रेम को उन्होंने विकसित किया।गरीब होते हुए भी अन्त तक साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने कई उपलब्धियाँ प्राप्त कीं । श्री पै ने इन सब का विवरण अपने भाषण में दिया। कामत का विचार था कि अंग्रेज़ी में लिखने से कोई फायदा नहीं है।

यही नहीं, ऐसा करने से घर में अन्धकार करते हुए दुसरे के घर की दिवाली में दिये जलाने के समान होगा। इसलिए उन्होंने अपनी लेखनी कन्नड़ में ही चलाई। बाद में आधुनिक कन्नड़ साहित्य में कथा एवं एकांकी नाटक लिखने में श्री कामत दूसरे स्थान पर पहुँच गए। वाल्ट व्हिटमेन और एडवार्ड कारपेन्टर के समान श्री कामत काव्यमय गद्य की रचना करते थे।

'आत्मकथा' और 'द फेट ऑफ राइटर'(लेखक का भाग्य) अपने संबन्ध में लिखी गई उनकी रचनाएँ हैं। इसमें दिए गए विवरण को देखकर ऐसा लगता है कि अपने जीवन के संबन्ध में एक छोटा सा चित्र भी बहुत कठिनाई से ही वे इसमें उतार सके हैं। 'आत्मकथा' में दिया गया विवरण उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के विश्लेषण में पहले ही दिया गया है। 'लेखक का भाग्य' उन दिनों लेखकों के बीच में प्रचलित व्यवहार क्रम का व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। अपनी और दूसरे लेखकों की जो कठिनाइयाँ रही थीं उनका रोचकता के साथ वर्णन इसमें हुआ है। उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं -

संपादकों के कार्यालयों में जाकर उनसे लेखों के प्रकाशन की माँग करनेवाले लेखकों की विनयशीलता।

मद्रास विश्वविद्यालय के आमन्त्रण पर शोधकार्य के बारे में भाषण देने के लिए मद्रास गए श्री पै को जिन उत्तेजक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा उन पर उनकी हास्यात्मक टीका- 'ज्यादा पानी मिलाने से मट्ठा मट्ठा ही रह जाता है और सुननेवाले केवल तीन रहने पर भी वह सभा ही कही जाती है।'

प्रकाशक, समाचार पत्र और पत्रिकाओं के द्वारा स्वयं माँग करते हुए प्रकाशित किए जाने पर भी पुस्तकों एवं लेखों की मुद्रित प्रतियाँ लेखक को न देने की प्रकाशकों की भूल।

कनसाद ननसु (सपना यथार्थ बन गया)

अपने आचार्य और आधुनिक कन्नड़ भाषा के श्रेष्ठ अध्यापकों में एक पंजे मंगेशराव के बारे में श्री पै ने यह लेख लिखा। यह लेख दूसरे लेखों से कहीं अधिक लंबा है। पंजे मंगेशराव के साथ बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक भिन्न भिन्न कारणों से हुए संबन्धों का सुन्दरता के साथ इस लेख में वर्णन किया गया है।

'उनकी पढ़ने की रीति, उनके गायन का तरीका और आसन पर

से उठते वक्त हाथ हिलाकर और आँखें उपर नीचे करते हुए अभिनय करने का ढंग मैं भूल नहीं सकता। सभी लोग उनकी प्रशंसा करते थे और सिर हिलाते थे। आकर्षक एवं स्तब्ध करने की उनकी रीति मोहक थी। उनके साथ वार्तालाप सन्तोष देनेवाले एक उत्सव के समान था। जिस प्रकार भोजन में तरह तरह के मधुर एवं मजा लूटने योग्य स्वादिष्ट चीज़ें होती हैं, उसी प्रकार उनके कथन में भी प्रसंगानुरूप वाक्य, कथाएँ, व्यंग्य, कहावतें, गीत और मजाक रहते थे। बालकपन में हमारे लिए दूसरे उत्सव नहीं थे। बगुले के पैरों के समान पाँव रखकर प्राणि संग्रहालय के सिंह के समान वे मेज़ के सामने इधर उधर चलते रहते थे। किर्लोस्कर के मराठी नाटकों के गीतों के राग में पाठ्यपुस्तक की कविताएँ वे गाते थे। गीत गाकर वे सिखाते रहते थे। यही उनकी आदत थी।'

कन्नड़ भाषा में पहली कहानी किसने लिखी? बालसाहित्य की पहली कृति कौन सी है? पहला लेख क्या है? ऐसे प्रश्नों का उत्तर खोजने में एक पण्डित के नाते पै का मत नीचे दिया गया है। 'कन्नड़ भाषा की पहली कहानी ई. स. १९०० में मंगलोर की 'सुवासिनी' पत्रिका में प्रकाशित हुई। कन्नड़ भाषा में पहली कहानी लिखनेवाले थे श्री पंजे मंगेश राव। वैसे कन्नड़ भाषा के पहले कथाकार श्री पंजे ही रहे। इसमें दो मत नहीं हैं। दक्षिण कर्नाटक में ही नहीं, पूरे कर्नाटक में चालीस वर्ष पहले उनके गद्य के समान अन्य रचनाएँ प्रकाशित नहीं थीं। मेरे अनुमान में श्री पंजे कन्नड़ भाषा के बालसाहित्य एवं कहानियों के पूर्वज रहे हैं।'

पहला उपन्यास

'कहानियाँ एवं उपन्यास' नाम के दूसरे लेख में कन्नड़ भाषा का पहला मौलिक उपन्यास श्री गुलवाडी वेंकटराव का 'इन्दिरा बाई' ई.स. १८९९ में और दूसरा उपन्यास श्री बोळार बाबुराव का 'वाग्देवी' ई. स . १९०५ में प्रकाशित हुए। उसी लेख में श्री पै ने बताया है कि मद्रास के श्री रांत्ले सुब्बराव ने 'केसरीविलास' नाम का उपन्यास ई.स. १८९५ में लिखा। श्री एम. आर श्री ई. स. १९५३ में जब दिवंगत हुए तब श्री पै ने 'नेनपिन काणिके' नाम का लेख लिखा। वह एम. आर. श्री. के संबन्ध में था। श्री पै ने इस लेख में कहा है कि श्री एम. आर. श्री 'नवनीत हृदय' (मक्खन जैसे हृदयवाले) थे। इस विशेषण में उनके गुण यथार्थ रूप में स्पष्ट होते हैं।

'कन्नड़ भाषा में निबन्ध का जन्म' नाम का श्री पै का लेख कन्नड़ गद्यसाहित्य के निबन्ध का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस लेख

में श्री पै पश्चिम के साहित्य में निबन्ध के जन्म एवं विकास के बारे में विस्तार से कहते हैं। कन्नड़ साहित्य में निबन्ध का आरंभ सौ वर्ष पहले हुआ और श्री पै कहते हैं कि 'चक्रपाणी' के तूलिकानाम से श्री नन्दलिके लक्ष्मीनारायणजी ने 'जोगुल' (पालने गीत) के संबन्ध में पहला निबन्ध तैयार किया। यह निबन्ध ई. स. १९०० वर्ष में 'सुवासिनी पत्रिका में प्रकाशित हुआ। बाद में ई.स. १९०२ में श्री एम. एन. श्रीनिवास राव ने 'भ्रमर'(मधुमक्खी) और 'मोड'(मेघ) नाम के दो निबन्ध लिखे। एक दो वर्षों के अन्दर श्री पंजे ने 'हळ्ळि'(गिरगिट) और 'वन्दनिके' (बाँदा) नाम के दो निबन्ध 'सत्यदीपिका' में प्रकाशित किए।

'अणकवदु' (उपहास कविता) नाम का निबन्ध श्री. जी. राजरत्नम् के 'पुरुष सरस्वती' नाम की रचना की प्रस्तावना के रूप में श्री पै ने लिखा। इस निबन्ध में वे पुरुषसरस्वती शब्द के अर्थ से संबन्धित और उपहास कविता से संबन्धित पूर्वी एवं पश्चिमी विचार स्पष्ट करते हैं। रामायण और महाभारत की उपहास कविता से संबन्धित एवं सर्वज्ञ की उपहास कविता से संबन्धित विवरण भी वे देते हैं। श्री बेंद्रे के पचास वर्ष पूर्ण करने के सिलसिले में उनकी साहित्यिक उपलब्धियों को मान्यता देते हुए, जयजयकार करते हुए और उनको सब प्रकार की विजय की शुभकामनाएँ अर्पित करते हुए लिखा गया निवन्ध है 'हरके'(विनती)। 'पुरातत्वविषयक शोध की भविष्य की संभावनाएँ' नाम के निबन्ध में उन्होंने कहा कि हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और हमारे सरकार को चाहिए कि वह उत्साह एवं शक्ति बटोर कर गैरसरकारी अनुसंधाताओं की सहायता की माँग करते हुए मोहनजोदड़ो और हड़प्पा संबन्धी शोध के जैसे काम आगे बढ़ाता रहे। वे हमें याद दिलाते हैं कि पश्चिम के शासन के अधीन रहकर यह काम नहीं हो सकता। इस पुस्तक में 'स्वतन्त्र' नाम की चौदह पंक्तियोंवाली कविता भी है।

'यादों के मीलपत्थर' इस पुस्तक का अन्तिम निबन्ध है। श्री नारायण किल्ले से संवन्धित यह निबन्ध इस पुस्तक के श्रेष्ठ निबन्धों में एक है। इस निबन्ध में मंगलोर के खादी भण्डार में देशभक्त श्री नारायण किल्ले और श्री पै की भेंट, जब श्री एच. वी. कामत मंगलोर आए उस समय संपन्न बैठक आदि का विवरण दिया गया है। हरिजन कल्याण संवन्धी श्री किल्ले के विचार और यक्षगान के क्षेत्र में उनकी उच्च पदवी भी इसमें वर्णित है। श्री किल्ले की 'कन्नड़ भारतड वीरचतुष्टय' नाम की

भाषणमाला में महाभारत के कर्ण से संबन्धित जो भाषण हुआ वह श्री पै को बहुत अच्छा लगा। प्रशंसा में कहे गए उनके शब्द नीचे दिये जा रहे हैं -

'श्री किल्ले उठे। वे स्वयं कर्ण बने। कर्ण का चरित्र उनके लिए सरल एवं सहज रहा। यक्षगान की उनकी कला का विजयपूर्ण गौरव यहाँ देखने को मिला। अपने भाषण के बीच में उन्होंने कन्नड़ भाषा के कुमारव्यास भारत की कुछ पंक्तियाँ किसी भी रुकावट के बिना अपनी भाषा में व्याख्या करते हुए विस्तार से उद्धृत कीं। उस समय उन्हें देखते ही बनता था। कैसे हाव भाव ! कैसी ठाट बाट ! सुननेवाले स्तब्ध रह गये। उनका भाषण सुनकर मेरा मन प्रसन्नता से भर गया। मैं वह प्रसन्नता तुमसे कैसे कहूँ? शब्द में सुनने की शक्ति नहीं है और कान बोल भी नहीं सकते।

राष्ट्रकवि

श्री पै का मन किल्ले को लेकर बहुत अच्छा रहा था। किल्ले श्री पै का आदर करते थे। श्री पै जब राष्ट्रकवि की पदवी पर पहुँचे उस समय इनका आपस का आदर एवं मान प्रकट हुआ। किल्ले के बारे में इस निबन्ध में भी श्री पै ने अपने को राष्ट्रकवि की पदवी देने के संबन्ध में इस प्रकार कहा है -

'ई.स.१९४९ जनवरी ३१ तारीख, दोपहर का समय। मैं मंगलोर में था। मैं अपनी बड़ी बहन के घर से लौट रहा था। उस समय वहाँ पर एक गाड़ी आई। वह मुझे कार स्ट्रीट के श्री दामोदर बालिगा की दूकान तक ले जाने के लिए आई थी। मुझसे कहा गया कि किल्ले वहीं पर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं गाड़ी पर चढ़कर वहाँ गया। किल्ले मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने घड़ी को देखा। मुझसे पूछा कि मंजेश्वर जाना है या नहीं? हाँ, मैंने कहा। उसके बीच आपका बुलावा आया और मैं चला आया।' उन्होंने कहा - ' आपके साथ रेलवे स्टेशन तक मैं भी आता हूँ।' हम लोग स्टेशन की ओर चले। रास्ते में किल्ले ने कहा - ' मद्रास स्टेट की पाँच भाषाओं के पाँच कवियों को राष्ट्रकवि की पदवी देने की सरकार ने घेषणा की है। कन्नड़ भाषा की प्रवर समिति ने तुम्हारा नाम दिया है। तुम्हारी क्या प्रतिक्रिया है? मैंने बिदा ली और ट्रेन पर बैठ गया। ई. स. १९४९ मार्च १५ तारीख को रेडियो के ज़रिए पाँच राष्ट्रकवियों के नामों की घोषणा की गई। एक महीना और पन्द्रह दिन बीतने के बाद मैं फिर मंगलोर चला गया। हमेशा के जैसे मैं दामोदर बालिगा की दूकान पर गया। वहाँ किल्ले को देखा. उन्होंने कहा - 'जैसे भी हो आप पुरस्कार स्वीकार करने को राज़ी

हुए। मैं सन्तुष्ट हुआ।' उनकी आँखों से आँसू निकले आँखें गीली हुईं. उनके हृदय की कोमलता का परिचय मुझे मिल गया। उनके प्यार को देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

इस घटना से संबन्धित एक महत्त्वपूर्ण विषय के बारे में मैं यहाँ कहता हूँ। इस विषय के वारे में किल्ले के विश्वस्त मित्रों को छोड़कर कोई कुछ नहीं जानता। कन्नड़ भाषा के राष्ट्रकवि की प्रवर समिति में के. वी. पुट्टप्पा का नाम भी था। उन्होंने समिति के सदस्य बनने से इनकार किया। उस स्थान पर मद्रास सरकार ने नामी वक्ता, देशभक्त किल्ले को नियुक्त किया। किल्ले ने लेखक को यह जानकारी दे दी। क्यों? चूँकि मैं कवि था या उनका मित्र था? मैं वहाँ पहुँच गया। समिति ने जो सूची तैयार की थी वह उन्होंने मुझे दिखाई। उसमें मेरा नाम भी था। सूची पढ़कर मैंने सिर उठाया। फिर किल्ले ने सूची से संबन्धित मेरा मत जानना चाहा। मैंने पूछा - 'श्री गोविन्द पै का नाम इस सूची में नहीं है, वह क्यों?' किल्ले ने कहा - 'मैं जानता हूँ कि वे एक बड़े मनुष्य हैं, विद्वान हैं, नामी अनुसंधाता हैं और बहुभाषा विशेषज्ञ हैं। क्या वे महाकवि हैं?'

श्री नारायण किल्ले कन्नड़ और तुळु भाषा के प्रसिद्ध वक्ता हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषण कन्नड़ भाषा में कुशलता के साथ अनूदित किए हैं। यक्षगान के संवादों और अभिनय के क्षेत्र में वे अद्वितीय हैं। तोरावे रामायण, गडुगिन भारत, जैमिनी भारत जैसे काव्यग्रंथों की प्रभावपूर्ण एवं मनोहर व्याख्या वे कर सकते हैं। ये ग्रंथ उनकी जीभ पर हमेशा वर्तमान थे। वे साहित्य के प्रेमी थे। फिर साहित्य के उत्तम ग्रंथों की व्याख्या करने लायक जानकारी उनको नहीं थी। यह जानते हुए कि श्री पै एक कवि हैं, उन्होंने श्री पै के ग्रंथों का गहरा अध्ययन नहीं किया। इसलिए इस बात का ज्ञान उन्हें नहीं रहा कि श्री पै एक महान कवि हैं। मैंने कहा -'हमारे कवियों के बीच उनसे महान और मान्यता रखनेवाले दूसरे कवि नहीं हैं।'

श्री किल्ले को इस विषय से संबन्धित विवरण की आवश्यकता महसूस हुई। उसी रात उनके 'गिळिविंडु','हेब्बेरेळु' काव्यग्रंथों के उद्धरण लेकर मैंने कविता की व्याख्या की। मुझे सुनते हुए किल्ले जी का मन उत्तेजित हुआ। उन्होंने आश्चर्यपूर्वक कहा - 'ओह ! अब मुझे मालूम हुआ। राष्ट्रकवि की उपाधि श्री पै को ही देनी चाहिए।' मैंने जब कहा कि इस उपाधि को स्वीकार करने के लिए उन्हें तैयार करना उतना आसान

नहीं है तो किल्ले ने कहा - 'वह उत्तरदायित्व मेरा है। मैं उसके लिए जवाबदार रहूँगा।' वे पुनः मद्रास गये और लौटते वक्त पै से भेंट की। इस बात की घोषणा भी की कि पुरस्कार उन्हींको देना है। यहाँ पर श्री पै के शंब्द उद्धृत करने योग्य हैं। 'जैसे भी हो आपने पुरस्कार लेने की मान्यता मुझे प्रदान की। मुझे पूर्ण सन्तोष हुआ'। उन्होंने कहा- 'उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। मेरी आँखें गीली हुईं। उनका प्रेम देखकर मैं आश्चर्य में पड गया।'

कन्नड़ भाषा के राष्ट्रकवि के पुरस्कार के संबन्ध में सबसे योग्य प्रत्याशी वे ही थे। यह भी सत्य है कि मद्रास सरकार ने श्री पै को पुरस्कार देने का निश्चय किया। प्रवर समिति में और भी कई मान्य व्यक्ति थे। श्री पै ने हर एक आदर और पुरस्कार को नकार दिया था और बिना भय और पक्षपात के अपना कर्तव्य करने में सदा कार्यरत रहे थे। यही नहीं, श्री देशभक्त नारायण किल्ले अपने अकृत्रिम शुद्ध प्रेम के बल पर श्री पै को इस पुरस्कार को स्वीकार करने के लिए राज़ी करने में सफल हो सके। इसलिए श्री किल्ले प्रशंसा के पात्र रहे। इस सिलसिले में वे कितनी बार श्री पै से मिले? कितनी बार उन्होंने श्री पै को स्वयं तथा अपने मित्रों के ज़रिए समझाया? अपने मित्रों से उन्होंने कितने पत्र लिखवाये? श्री किल्ले के थोड़े मित्र ही इसके जानकार रहे हैं। राष्ट्रकवि का पुरस्कार श्री पै को न भी दिया जाय तो उनका महत्व कम नहीं होता। वे एक महान कवि हैं, इस सत्य का ज्ञान सब को है। उनकी कविता भी बहुत मूल्यवान है। फिर भी सभी लोग उनके व्यक्तित्व एवं महत्व को पुरस्कार मिलने के बाद ही जान पाये। यहीं से उनकी कविता का अध्ययन शुरू हुआ। थोड़े दिनों के अन्दर उनको कन्नड़ साहित्य परिषद की वार्षिक बैठक में अध्यक्ष पद दिया गया। एक बड़े विद्वान, टीकाकार एवं लेखक, प्रो. इनामदार ने कहा है –' आज तक गोविन्द पै को केवल एक अनुसंधाता के रूप में ही मैं जानता था। मेरी दृष्टि उनकी कविता पर नहीं पड़ी। अब वह विस्तृत हो गई।'

श्री पै के गद्य साहित्य के उदाहरण के रूप में उनकी दो रचनाएँ संक्षिप्त रूप में यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। उनकी असंख्य गद्य कृतियाँ अब तक संगृहीत नहीं हुई हैं और पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हैं। जब ये पूरी कृतियाँ प्रकाशित हो जायेंगी इसका ज्ञान होता जायगा कि श्री पै केवल कवि ही नहीं, गद्य लेखक भी थे। पूरे देश में हज़ार भर मित्रों और श्रद्धालुओं को भेजे गये हज़ारों पत्र उनके गद्यलेखन के उत्तम उदाहरण हैं।

इनके अलावा उनके शोधलेख भी गद्य में ही लिखे गये हैं।'वह गद्यशैली जिसे मैं मानता हूँ वह धनुष से छोड़े हुए तीर के समान सरल एवं तीक्ष्ण है। मेरे गद्यलेखन का मूल तत्व यही है।'

श्री पै के द्वारा अपने मित्र को लिखे हुए पत्र के ये शब्द हैं। जहाँ कविता हमें व्यंग्य, भाव, अनुभूति, अर्थगर्भिता, अलंकार आदि के ज़रिए मोहित करती है वहाँ गद्य एक अनलंकृत मनोहर कुमारी के समान हमारे सामने आता है। वाक्य स्पष्ट रूप में पाठकों तक पहुँचते हैं। इस प्रकार गद्यशैली का रहस्य धनुष पर लगाए गए तीर के समान होता है। अपने गद्य साहित्य में अर्थ स्पष्ट करने के लिए श्री पै ने अनेक कहावतों, सूक्तियों और अलंकारों का प्रयोग किया है। अपना गद्य साहित्य उन्होंने थोड़े अलंकारों से शोभित किया है। अलंकार यहाँ बोझ नहीं हैं। वे गद्यसाहित्य की सहज सुन्दरता को बढ़ाते हैं। यहाँ पर इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि श्री पै के अन्तर्लीन महाकवित्व के लिए थोड़े अलंकार आवश्यक रहे हैं।

अध्याय - ७

सत्य का अन्वेषक - प्रख्यात अनुसंधाता

जब प्रश्न एवं शंकाएँ उठती हैं तब अनुसन्धाता का काम औचित्यपूर्ण समाधान प्रस्तुत करना होता है। अज्ञान की उलझन में या अनुचित चिन्तन में बातों की यथार्थ स्थति को लोगों के सामने प्रस्तुत करना उनका काम होता है। सत्य को सामने लाते समय वह व्यावहारिक अनुसन्धाता रहता है। अर्धसत्य या दोषपूर्ण सत्य नाम की चीज़ें नहीं हैं। सत्यान्वेषक को विषय की खूब जानकारी होनी चाहिए। इस कार्य को करने में महान विद्वत्ता, विलक्षण स्मृति, तर्कपूर्ण चिन्तन की क्षमता, उत्सुकता और निरन्तर प्रयत्न किया जाना चाहिए। श्री पै में ये गुण रहे थे और वे शोध के क्षेत्र में आगे बढ़े और उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई।

पहले ही कहा जा चुका है कि श्री पै को दुःख में डालकर चली गयी उनकी घरवाली की अकालमृत्यु से संबन्धित दुःख को दूर करने के खातिर काव्यानुभूति एवं अनुभवों के साथ इच्छा और लालसा को छोड़कर थोड़े समय के लिए श्री पै एकाग्रता से शोध में लगे रहे। इस समय उन्होंने अपना मन गंभीर प्रवचनों एवं अध्ययन में केन्द्रित करते हुए बड़े प्रयत्न से हर क्षण सत्य को समझने के लिए जुटाया। अनुसन्धाता का कार्य तो उतना आसान नहीं है। फिर विद्वत्ता के उच्च शिखर पर चढ़े हुए श्री पै के लिए यह कार्य एक खेल के जैसा सुसाध्य रहा। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी सरकार, विश्वविद्यालय या दूसरी संस्था के द्वारा बुद्धिमान और होशियार व्यक्तियों को लगाकर कराए जाने का कार्य किसी की भी सहायता के बिना अकेले श्री पै ने कर लिया। अनुसन्धाता के रूप में वे प्रसिद्ध हुए। हम जानते हैं कि वे बीस भाषाओं के विद्वान थे और उनका ५००० पुस्तकों का एक पुस्तकालय भी था। यह उनकी विद्वत्ता की गहराई को समझने में सहायक हो सकता है। बुद्ध से संबन्धित अपने लेख में उन्होंने २५ स्रोत ग्रंथों का सन्दर्भ देकर पाद टिप्पणी दी है। इससे उनके विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान की गहराई एवं परिमाण की कल्पना की जा सकती है। भारत में आए हुए विदेशी यात्रियों के लेख पढ़ने के लिए जब मात्र अंग्रेज़ी भाषा से काम नहीं चल सका तब उन्होंने ग्रीक, लैटिन, फारसी आदि भाषाओं का भी अध्ययन किया। बैबिल और कुरान के जैसे धार्मिक ग्रंथों का उन्होंने वेद, उपनिषद् और पुराणों के समान अध्ययन किया।

बौद्ध, जैन धर्मों के तत्वों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने पाली, प्राकृत जैसी भाषाएँ पढ़ीं । धार्मिक पुस्तक, व्याकरण, हमारे देश का इतिहास एवं भाषाओं की विद्वत्ता उन्होंने हासिल की। गणित, संहिता (वेदों से उद्धरण लेकर संकलित), फलज्योतिष, खगोलशास्त्र आदि में उन्होंने गहरा ज्ञान प्राप्त किया। इन विषयों पर शोध करते हुए उन्होंने कई निष्कर्ष निकाले। जब लगा कि ये गलत हैं उन्होंने तुरन्त उनमें सुधार किया। इसके विपरीत यदि वे सत्य निकले तो वे धैर्यपूर्वक कहते थे,'कोई भी मेरा कथन गलत साबित करता है तो मैं अपनी लेखनी सामनेवाले समुद्र में डाल दूँगा।'

लोग कहते हैं कि उनके शोध लेखों का पठन पाठन एवं उनकी जानकारी प्राप्त करना बहुत कठिन है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इसमें सत्य नहीं है। लेकिन इसे दोष नहीं समझा जा सकता। यह केवल एक गुण है। उनके लेख उतने अधिक प्रमाणों के साथ लिखे जाते थे। अपने निष्कर्षों को सिद्ध करने के लिए आवश्यक प्रमाण वे क्रमानुसार देते थे। उनके हर लेख में अनेक पाद टिप्पणियाँ देखने को मिलती थीं। ये संदर्भ मूल लैटिन, बैबिल, वेद, धम्मपद या पाली भाषा के ग्रंथों से थे। इस विद्वत्तापूर्ण किले में पाठकों को आवश्यक तैयारी के साथ बड़े प्रयत्न से ही प्रवेश करना पड़ता था। जिस शिखर पर श्री पै पहुँचे थे उस पर चढ़ने का प्रयत्न जो नहीं करता था उसके लिए उनके शोधलेख समझना कठिन हो जाता था। उतने प्रमाण एवं स्रोत संदर्भों के बिना शोध गहरा एवं मूल्यवान नहीं बन सकता था। पाठकों की रुचि को बढ़ाकर उन्हें उच्च स्तर पर पहुँचाने की कुशलता श्री पै के लेखों में थी।

पहला अंडा

ई.स. १९२६ में श्री पै ने अपना अनुसंधान शुरू किया। About Our Ancestors (हमारे पूर्वजों से संबन्धित जानकारी) नाम के शोध लेख में वे सारस्वतों के प्राचीन उद्‌भव और देशान्तर गमन के बारे में कहते हैं।

श्री पै के पूर्वज, सारस्वत मूल से पंजाब की सरस्वती नदी के तट पर रहते थे। वहाँ से वे बिहार के तिरहुत प्रदेश में पहुँचे। वहाँ से वे देशान्तर गमन करते हुए परशुराम द्वारा निर्मित सप्तकोंकण के एक प्रदेश, गोवा में पहुँचे। पुर्तगालियों के ज़ोर के धर्मपरिवर्तन के भय से ई. स. १५६० में वे गोवा छोड़कर बाज़ के द्वारा भगाये गये कबूतरों के समान उत्तर कर्नाटक, दक्षिण कर्नाटक एवं केरल में जाकर बसे। आज तक श्री पै

के पूर्वजों का परिवार एवं उनके कुलदेव गोवा में हैं। वे जहाँ भी जायें उसी कुलदेव की आराधना करते हैं। हर सारस्वत अपने जीवन में कम से कम एक बार तीर्थयात्रा पर गोवा जाता है।

श्री पै ने जब यह लेख तैयार करने का निश्चय किया और वे गोवा गये तब उस जगह को देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पुर्तगाली भाषा सीखी, कई शिलालेख एकत्र किए और उनके आधार पर अंग्रेज़ी में एक लेख लिखा। उसका नाम था Flashes from the Past. (पूर्वकालीन उपलब्धियाँ)। यह लेख उन्होंने कन्नड़ भाषा में भी लिखा है।

इस लेख में उन्होंने प्रमाणित किया कि कोंकणी मराठी से उत्पन्न भाषा नहीं है। वह एक स्वतन्त्र भाषा है। उन्होंने कहा कि बंगला, उड़िया, मागधी, बिहारी एवं मैथिली जैसी आधुनिक भारतीय भाषाएँ मराठी से ज्यादा कोंकणी से संबन्ध दिखाती हैं। वे कहते हैं कि मूलतः सारस्वत शैव थे। बाद में उन्होंने माध्व मत स्वीकार किया और श्रीकृष्ण की भक्ति करना शुरू किया। वे कहते हैं कि यह लेख ऐतिहासिक शोध के क्षेत्र में प्रस्तुत पहला अंडा है। सारस्वत ब्राह्मणों का उद्‌भव, देशान्तर गमन, धार्मिक विश्वास एवं भाषा से संबन्धित इससे ज्यादा मूल्यवान एवं श्रेष्ठ लेख आज तक प्रकाशित नहीं हुआ। उन्होंने जो पहला अंडा कहा वह ठीक ही रहा। वह एक सोने का अंडा रहा।

यहाँ से लेकर श्री पै ने कन्नड़ भाषा एवं साहित्य संबन्धी अपना शोध निरन्तर आगे बढ़ाया। उन्होंने तुळुनाड, कर्नाटक, भारत और भाषाओं तथा धर्मों पर अनेक शोध लेख तैयार किए। कन्नड़ भाषा एवं साहित्य की अनेक काव्यरचनाओं से संबन्धित, प्राचीन एवं आधुनिक कवियों से संबन्धित, उनके काव्य एवं ग्रंथों से संबन्धित, लेख उन्होंने तैयार किए। शोधलेख उन्होंने अंग्रेज़ी और कन्नड़ भाषा में लिखे। इस प्रकार वे पूरे देश में विद्वान एवं अनुसंधाता के रूप में प्रसिद्ध हुए।

तुळुनाड की यादें

श्री पै का तुळुनाड के प्रति प्रेम बहुत गहरा था। मंगलोर और मंजेश्वर तुळुनाड में ही हैं। तुळुनाड पर उनका पहला लेख - 'Tulunad during the Night of History' (तुळुनाड - इतिहास के अंधेरे में) था। ई. स. १९२७ में मंगलोर में संपन्न कन्नड़ भाषा का साहित्य परिषद की 'पंचकज्जाय' नाम की स्मारिका में उसका प्रकाशन हुआ। Tulunad - Early Reminiscences (तुळुनाड- पूर्वस्मृति) नाम का लेख ई. स. १९४७

में कासरगोड में संपन्न कन्नड़ साहित्य परिषद के 'तेंकनाडु'नाम की स्मरणिका में प्रकाशित हुआ। इस प्रकार हमें जागृत करते हुए जिस तुळुनाड को हम भूल गये उसका स्मरण करने की उन्होंने हमें प्रेरणा दी। 'तुळु', 'तुळवे' का अर्थ है 'पानी में नौका चलाना' या पानी में डुबकी लगाना। पै का यही मत है कि समुद्रतट पर रहनेवाले 'मोगेर' और 'मोगवीर' नाम के समाज के ज़रिए यह नाम प्रचार में आया।

तुळुनाड का पहला उल्लेख तीसरी शताब्दी के हरिवंश पुराण में आया है। वे सिद्ध करते हैं कि ईसा के पहले महाराज अशोक के शिलालेख, मार्कंडेय पुराण, बृहत्संहिता आदि में उल्लिखित 'शान्तिका' नाम का प्रदेश तुळुनाड है। तुळुनाड के 'अलुप' और 'अजिल' नाम के राजाओं के बारे में उन्होंने लिखा है। इसके अलावा नाथ पंथ, जैन धर्म, द्वैत और अद्वैत संबन्धी लेख भी मिलते हैं। तुळुनाड से संबन्धित शिलालेखों के बारे में और ग्रीक लोगों से किए गए पुराने संबन्धों के बारे में उन्होंने लिखा है। मध्वाचार्य, कवि मुद्दण, रत्नाकरंन्न, यक्षगान के धर्मपिता पार्थिसुब्बा, श्री पंजे, श्री एम. एन. कामत. श्री नारायण किल्ले आदि आधुनिक व्यक्तियों के बारे में भी उन्होंने लिखा है। 'अलियकट्टु' नाम की दाय की मातृसत्तात्मक पद्धति एवं 'पाडदन' के बारे में भी उन्होंने लिखा है।

मंगलोर के 'कद्री' प्रदेश में स्थित नाथपंथ के मठ के संबन्ध में श्री पै इस प्रकार कहते हैं-

पुराने ज़माने में तुळुनाड में बौद्ध धर्म एवं शैवधर्म के एकीकरण से नाथपंथ का जन्म हुआ। बौद्धधर्म के मंजुघोष नाम के धर्मगुरु ने 'कद्री' में एक बौद्धविहार की स्थापना की। शिव के लिए 'मंजुनाथ' पर्याय किसी भी धर्मग्रंथ में देखने को नहीं मिलता। यह नाम श्री मंजुघोष के स्मरणार्थ रखा गया। 'कद्री' के शिवलिंग का एक अंश होने के कारण धर्मस्थल के शिवलिंग का भी वही नाम प्रचार में रहा।

दूसरी सदी के ग्रीक नाटकों में वर्णित घटनाएँ जिस प्रदेश में घटती हैं वह प्रदेश श्री पै के मत में तुळुनाड का 'उद्यावर' है। इस नाटक में पाये जानेवाले कई शब्द तुळुनाड के सन्दर्भ को लेकर चलते हैं। ग्रीक नाटक की कथा इस प्रकार है -

भारत समुद्र में घटित जहाज़ के नाश को लेकर एक ग्रीक बालिका समुद्र के तट पर स्थित किसी गाँव में पहुँच जाती है। यह स्थान 'उद्यावर' का सोमेश्वर गाँव था। थोड़े समय के बाद ग्रीक नाविकों ने उसे

खोज लिया और उनके साथ ले जाने के लिए उस प्रदेश के 'अलुप' नाम के राजा से अनुमति प्राप्त कर ली। इस समय पर एक आनन्दोत्सव मनाने के लिए उन्होंने एक प्रीतिभोज का आयोजन किया। इस नाटक में इस घटना का वर्णन मिलता है। श्री पै ने प्रमाणित किया कि इस नाटक के कुछ शब्द कन्नड़ भाषा के हैं। संघ के मुखिया पी. एस. राय ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि ये शब्द तुळु भाषा के हैं। श्री पै पहले ही इसे प्रामाणित कर चुके हैं कि नाटक में वर्णित घटनाएँ तुळुनाड में घटित हैं।

श्री पै ने यह भी कहा है कि दूसरी शताब्दी के मंगलोर और नेत्रावती नदी से संबन्ध दिखानेवाले संदर्भ मिल गए हैं। उनका मत है कि आठवीं शताब्दी से मंगलोर एक बड़ा शहर रहा है। उनके द्वारा जाँच किए गए कारकल, वेणूर, कद्री आदि प्रदेशों के शिलालेख तुळुनाड के शिलालेखों में बहुत महत्व के रहे हैं। वेणूर एवं कारकल में गोम्मट की प्रतिमाओं की स्थापना की तिथियाँ श्री पै सही सही प्रकाश में ले आए। तब तक तुळुनाड का इतिहास अस्पष्ट रहा था। श्री पै ने अपने विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान की सहायता से इस पर विशेष प्रकाश डाला और तौळव लोगों की कृतज्ञता प्राप्त की।

कर्नाटक का प्राचीन रूप

कर्नाटक में आनेवाले जैनों में भद्रबाहु मुनि एवं चन्द्रगुप्त सर्वप्रथम थे। उत्तर भारत में कठोर अकाल आयगा, इस प्रकार दिव्यदृष्टि से जानकर चन्द्रगुप्त एवं दूसरे शिष्यों के साथ भद्रबाहु दक्षिण भारत जाने के लिए तैयार हुए। बाद में उन्होंने दिगंबर नाम के एक जैन संप्रदाय की स्थापना की। इसके साथ साथ जैन धर्म में श्वेतांबर एवं दिगंबर नाम के दो विभाग शुरू हुए। जैन धर्म में यह घटना ऐतिहासिक महत्व की रही। प्राचीन काल में विश्वास किया जाता था कि जैन मुनि के साथ आनेवाले चन्द्रगुप्त, चन्द्रगुप्त मौर्य थे।

श्री पै ने इस विषय पर गहरा शोध करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि जैन मुनि के साथ आनेवाले चन्द्रगुप्त चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं थे। उन्होंने कहा कि ये चन्द्रगुप्त उज्जैन के राजा थे। इसके साथ साथ यह भी निश्चित हुआ कि महान अभियान की तारीख ई. पू. ३०० न होकर ई. पू. २५० थी। यह शोध मात्र कर्नाटक में ही नहीं संपूर्ण भारत में बड़े ही महत्व का माना गया।

दूसरी शताब्दी में ग्रीस में टोळमी नाम के भूगोलविज्ञान के एक

महान पंडित रहे थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में भारत के कई प्रदेशों के संबन्ध में कहा है। श्री पै निश्चित रूप में कहते हैं कि ये प्रदेश कर्नाटक के थे। ये नाम ग्रीक भाषा के थे। तब तक जो सत्य किसी की भी दृष्टि में नहीं आया था श्री पै ने उसे खोज निकाला। श्री पै ने निश्चयपूर्वक कहा कि हैहय, आज का उत्तर कर्नाटक, भीमनदी, भीमनदी के तट पर स्थित दस गाँव, वनवासी एवं हिप्परगी प्रदेश भी टोळमी की पुस्तक में दिखाई देते हैं। इस प्रकार उन्होंने प्रारंभिक शोध का मार्ग खोल दिया। ई. स. १९४६ में श्री पै ने इस विषय पर अपना कन्नड़ लेख प्रबुद्ध कर्नाटक में छापा और Ptolemy's Hippokura नाम से अंग्रेज़ी में प्रकाशित किया।

कर्नाटक के इतिहास में मध्यकाल के चालुक्य, राष्ट्रकूट और विजयनगर के राजवंशों एवं राजाओं के बारे में अनेक विशेषज्ञों ने अपने अपने लेख तैयार किए। शिलालेख की सहायता से इन शासकों और उनके वंशों पर नया नया प्रकाश डाला गया। यही सत्य है कि श्री पै के इस विषय पर मन लगाने तक कर्नाटक के इन राजवंशों पर शोध नहीं हुआ था। उन्होंने कन्नड़ एवं कन्नडेतर भाषाओं के शिलालेखों का गहन अध्ययन किया। पुराण संबन्धी अनेक पुस्तकों और ऐतिहासिक रचनाओं का अध्ययन किया। इस जानकारी के सहारे उन्होंने शतवाहन, पुन्नट गंग, कदम्ब आदि कर्नाटक के राजवंशों का इतिहास तैयार किया। पैतान से उत्तर कर्नाटक तक शासन करनेवाले शतवाहन राजाओं ने भारत के बाहर से आये हुए शक राजाओं को पराजित किया और अपनी विजय की यादगार के रूप में शकवर्ष की शुरूआत की। उनका शासन संपूर्ण भारत में महत्व का रहा। यह विषय सर्वप्रथम श्री पै ही प्रकाश में ले आये। उन्होंने शतवाहनों का शासनकाल भी निश्चित किया।

पुन्नट राजा दक्षिण प्रदेश में हेग्गडे देवनकोटे नाम के प्रदेश में रहे थे। वे कर्नाटक के राजवंश में बहुत ही प्राचीन रहे थे। सर्वप्रथम टोळमी ने ही इस राजवंश का नामकरण किया। पुन्नट संघ नाम का एक जैन संघ रहा था। प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य पुन्नट वंश के थे। गंगों एवं कदम्बों के साथ उनका संबन्ध रहा था। पुन्नट राजवंश से संबन्धित शिलालेख नहीं मिलते। श्री पै ने गंग एवं कदम्ब राजाओं से संबन्धित शिलालेखों का अध्ययन करते हुए उनके ज़रिए पुन्नट राजाओं के काल एवं उत्पत्ति का अध्ययन किया। दूसरी शताब्दी के 'मिक' नाम के राजा से लेकर ई. स. ४९० में दिवंगत राजा रविदत्त तक की ऐतिहासिक रूपरेखा श्री पै ने दी। यह शोध बहुत ही महत्व का रहा।

ताळगुंडा के शिलालेखों को आधार बनाकर रेवेरेंड रायस ने कदंब राजाओं का इतिहास तैयार किया। श्री पै ने रायस के प्रकरण में थोड़ा परिवर्तन सूचित किया है। उन्होंने वर्गक्रम के अनुसार कहा कि मुक्कण्ण कदंब नाम के राजा नहीं थे। रवरेंड रायस कहते हैं कि मयूरवर्मा नाम के कदंब राजा अहिच्छत्र से अनेक ब्राह्मणों को ले आए। श्री पै का कहना है कि असल में सच यही है कि मयूरवर्मा के बनवासी में बसने के बाद ये ब्राह्मण अपने आप आ गये थे। श्री पै ने उस राजवंश की प्रारंभ से लेकर तेरह राजाओं की वंशावली दी है। पै ने प्रमाण के साथ इस बात का खंडन किया है कि कदंब राजा जैन धर्म को मानते थे। गंग राजाओं से संबन्धित चालीस शिलालेखों का अध्ययन श्री पै ने किया और उनका इतिहास तैयार किया। ६०० वर्षो तक विस्तृत उनके शासन का विवरण उन्होंने दिया है। श्री पै ने कदंब राजओं की वंशावली की सूची तैयार की है और उसके हर एक राजा का काल निश्चित किया है। इन दोनों वंशों पर उन्होंने लेख भी लिखे हैं और ये लेख ई. स. १९३२-३३ और ई. स. १९३७-३८ में 'जर्नल ऑफ इंडियन हिस्टरी' और 'जर्नल ऑफ आन्ध्रा हिस्टोरिकल रिसर्च सोसाइटी' नाम की पत्रिकाओं में प्रकाशित किये। इस प्रकार श्री पै की भारत में सब कहीं प्रसिद्ध अनुसंधाता के रूप में ख्याति हुई।

थोड़े इतिहासकारों का मत है कि विजयनगर राज्य के उत्तरी भाग में आन्ध्र राज्य था। श्री पै ने इसका खण्डन किया और कहा कि वह कर्नाटक था। उन्होंने इसमें सफलता भी पाई।

श्री पै ने कन्नड़ भाषा एवं साहित्य के संबन्ध में और अनेक कवियों के जीवन, समय, धर्म एवं मूल स्थान के संबन्ध में खूब लेख तैयार किए। श्री नरसिंहाचार ने 'कन्नड़ कवि चरित्रे' नाम की पुस्तक के तीन भागों के संपादन एवं प्रकाशन का कार्य किया। श्री पै ने आचार की दृष्टि में न आनेवाले प्रमुख मुद्दों पर प्रकाश डाला। नीचे दिये गये महत्वपूर्ण विषयों पर शोधलेख तैयार करते हुए उन्होंने कन्नड़ भाषा और साहित्य के अध्ययन को सरल एवं सुसाध्य बनाया। वह इस प्रकार है।

१. लक्ष्मीश, हरिहर, दुर्गसिंह, देवरदसि मय्या, नागचन्द्र, जयकीर्ति, बसवण्णा आदि का काल।
२. पंप और लक्ष्मीश का मूल स्थान।
३. नृपतुंग, कुमारव्यास और लक्ष्मीश का धर्मपंथ।
४. पार्थिसुब्बा, नागवर्मा और श्रीवर्द्धन देव की रचनाएँ।

५. भास और रन्न, मुद्दण, पोन्न, उद्धण्ड षट्पदी आदि का तुलनात्मक अध्ययन।
६. कन्नड़ साहित्य का प्राचीन रूप कन्नड़ नाटक, कन्नड़ भाषा, गोम्मट की प्रतिमा की शिल्पकला, आधुनिक कथा और उपन्यास।

कन्नड़ कवियों का समय, मूलस्थान और उत्पत्ति

कविराज नृपतुंग और 'कविराज मार्ग' की दो शताब्दियों के पहले ही कन्नड़ भाषा में साहित्य रचनाओं का अस्तित्व रहा था वाला अपना मत श्री पै ने सफलता के साथ सिद्ध किया है। वे कहते हैं कि छठी शताब्दी से लेकर कन्नड़ भाषा में संस्कृत शब्दों से भरी साहित्यिक रचनाएँ की जाने लगीं। उनका मत है कि 'चूडामणि' और 'षड्डरधन' इस समय लिखी गई थीं। उनका कहना है कि कन्नड़ भाषा में सर्वप्रथम साहित्यिक रचनाओं का निर्माण तीसरी शताब्दी से शुरू हुआ। वे प्रमाणित करते हैं कि कन्नड़ भाषा का प्रथम नाटक नवीं शताब्दी में कण्णमय्या नाम के कवि ने लिखा। श्री पै का कहना है कि महान कवि पंप का जन्म बनवासी में हुआ और उनकी शिक्षा कन्नड़ भाषा के माध्यम से 'पुळिगेरे नाम के प्रदेश में हुई। पै का मत है कि ई. स. ९३२-९४२ के बीच ही पंप अरिकेसरी राजा की सभा में आए थे।

रन्न पर पै ने अनेक लेख लिखे। कर्नाटक काव्यकलानिधि के द्वारा प्रकाशित 'गदायुद्ध' की प्रस्तावना में उन्होंने अनेक दोषों की ओर संकेत किया। ऐसा प्रचार था कि रन्न नाम के दो कवि थे। श्री पै ने सफलता के साथ सिद्ध किया कि रन्न नाम के एक ही कवि थे। पै कहते हैं कि नागवर्मा नाम के तीन कवि थे और उनमें से पहले कवि ने 'छन्दोम्बुधि' और 'कर्नाटक कादम्बरी' लिखे। दूसरे ने 'वास्तुकोश','काव्यावलोकन' और 'भाषाभूषण' नाम की तीन पुस्तकें तैयार कीं। तीसरे कवि ने 'चन्द्र चूडामणि शतक' लिखा। कुमारव्यास एवं उनके धार्मिक विचारों के संबन्ध में साहित्य के विशेषज्ञों के बीच जब मतभेद हुआ तब श्री पै ने कहा कि कुमारव्यास भागवत सम्प्रदाय के अद्वैतवादी थे। उन्होंने सिद्ध किया कि कवि लक्ष्मीश 'कदूर' जिले के 'देवनमनूर' प्रदेश के थे। उन्होंने यह भी कहा कि यक्षगान के प्राचीन महान धर्मपिता, पार्थिसुब्बा 'कुंबळा' के पास 'अजवर' प्रदेश के थे। उन्होंने यह भी स्थापित किया कि कवि मुद्दण नन्दलिके लक्ष्मीनारायण थे।

शोध करनेवालों के बीच सिंह के रूप में प्रसिद्ध श्री पै ने तुळुनाड और कर्नाटक की सीमा पार करते हुए अपना अध्ययन समस्त भारत तक फैलाया।

प्राचीन भारत

मौर्यों के शासन के बाद शक, पल्लव, कुशाण आदि विदेशी राजवंशों के राजाओं ने पहली और दुसरी शताब्दी में भारत पर आक्रमण किया। उत्तर पश्चिमी घाटी से होकर उन्होंने भारत में प्रवेश किया। गौतमीपुत्र 'शतकामी' ने ई.स. ७८ में महान कुशाण राजा कनिष्क को पराजित किया और शतवाहन राज्य की स्थापना की। श्री पै ने वस्तुस्थिति और आंकड़ों के ज़रिए इन घटनाओं पर जब तक प्रकाश न डाला तब तक इतिहास का यह प्रसंग अव्यक्त रहा। इस संबन्ध में श्री पै ने जो विवरण प्रस्तुत किया वह इस प्रकार है –

१. चन्द्रगुप्त मौर्य ने ग्रीस राज्य के सेल्यूकस को पराजित किया।
२. चन्द्रगुप्त मौर्य को ग्रीक 'बसिल्लस' पदवी मिल गई। इस शब्द का अर्थ है 'सम्राट'।
३. 'वृषल' शब्द 'बसिल्लस' शब्द का रूपान्तर है जिसका अर्थ है 'सम्राट'। मुद्राराक्षस नाटक में चाणक्य चन्द्रगुप्त को 'वृषल' कहकर संबोधन करता है।

श्री पै का कहना है कि ई. स. २७२ में शुरू होकर ई.स. ३६६ में अन्त होनेवाले काल को ही गुप्तयुग कहा जाता है। इसी समय वल्लभ युग की शुरूआत हुई।

भारत पर वाकाटक और पल्लव शासन से संबन्धित एवं दक्षिण भारत पर ई. स. ८७-९०० वर्ष तक पल्लव राजाओं के शासन से संबन्धित विवरण पै ने दिया है। वाकाटकों का चेर राजाओं से संबन्ध रहा था और पल्लव राजाओं का चोल राजाओं से। इसलिए श्री पै के शोधविचार में चेर और चोल वंशों का इतिहास भी शामिल है। श्री पै का कहना है कि बसनगर के गरुड के खंभे पर लिखित शिलालेख हेलेडोरस(ई. पू. १०५) नाम के ग्रीक प्रतिनिधि ने लिखवाया।

धर्म के संबन्ध में

श्री पै ने भारत के अनेक धर्मों के संबन्ध में गहरा शोध किया है।

बौद्धधर्म, जैनधर्म, शैवधर्म पर उन्होंने लेख तैयार किए। श्री पै का मत है कि तीर्थंकर ऐतिहासिक व्यक्ति है। जैनों के गोम्मट की मूर्ति की स्थापना का वर्ष उन्होंने स्थिर किया। जैन तीर्थंकरों का काल उन्होंने निश्चित किया और महावीर पार्श्वनाथ आदि तीर्थंकरों से संबन्धित महत्वपूर्ण सामग्री एकत्र की। बौद्धधर्म से संबन्धित पुस्तकों से उन्त्होंने जैनधर्म से संबन्धित विवरण खोज निकाला। उन्होंने ऐसा मत भी प्रकट किया है कि पहले जैन तीर्थंकर वृषभनाथ का परिनिर्वाण और शैवों की शिवरात्रि दोनों एक ही दिन होता रहता है और इसलिए वह रात जैनों के लिए जिनरात्रि होती है। उनका ऐसा भी मत है कि जैनधर्म के देशीगण पंथ का अनुसरण करते हुए जीनेवाले लोग देशस्थ समाज के हिन्दू लोगों के आवास के पास ही रहते हैं। बुद्ध के जीवन पर एक प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करना और उनके जीवन का समय निश्चित करना बुद्ध संबन्धी श्री पै के शोध की महान उपलब्धि कही जा सकती है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि बुद्ध की जन्मतिथि, सन्यास स्वीकार करने का दिन, ज्ञानोदय, बुद्ध बनने एवं परिनिर्वाण की तिथि भी उन्होंने निश्चित की है। अर्जुनवाडा के शिलालेख का अध्ययन करते हुए उन्होंने बसवेश्वर के वंशवृक्ष का विवरण दिया और उनके जीवन के महत्वपूर्ण दिनों को अंकित किया। देवरदसि मय्या नाम के वैष्णव सन्तों के संबन्ध में शोध करते हुए उन्होंने उनका समय निश्चित किया। फिर रेवण सिद्ध, एकोरमितांडे और मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य आदि का समय भी निश्चित किया।

भक्तियोग भारत का एक महत्वपूर्ण आन्दोलन रहा। श्री पै ने भक्तियोग के संबन्ध में अपना मत व्यक्त किया है। पुरन्दरदास के गीतों में और रमण महर्षि के जीवन में भक्तियोग की किस प्रकार अभिव्यक्ति हुई है, इसके बारे में उन्होंने अपने लेख में लिखा है। 'नारद भक्तिसूत्र', 'उरगसूत्त', 'सिगलसूक्त' ,'उपदेशरत्नमाला' आदि प्राचीन ग्रंथों के गहरे भावों का उल्लेख उन्होंने किया और इन ग्रंथों के कई भाव कन्नड़ भाषा में अनूदित किए।

कई सन्दर्भों में पै ने अपने निष्कर्ष लेते समय महान धार्मिक व्यक्तियों के जीवन का तुलनात्मक अध्ययन किया और उनमें दिखाई पड़नेवाली समानताओं का वर्णन किया। उदाहरण के लिए -

१. हिन्दुओं की शिवरात्रि एवं जैनों की जिनरात्रि एक ही दिन मनाई जाती है।

२. बुद्ध का जन्म, ज्ञानोदय एवं परिनिर्वाण महीनों और वर्षों की

भिन्नता के बावजूद एक ही तिथि को हुआ।

३. देवदूत मुहम्मद ने राबी-उल अवाल महीने के बारहवें दिन सोमवार को जन्म लिया और वर्षों के बाद उसी महीने के बारहवें दिन सोमवार को ही उनका निर्वाण भी हुआ।

श्री पै का मत है कि इतिहास में ऐसे संदर्भ अपूर्व नहीं। उन्होंने महान धार्मिक ग्रंथों का और धार्मिक आचार्यों के जीवन का अध्ययन किया, महाकाव्य के अनेक खण्ड तैयार किये और नाम भी पाया। उन्होंने बैबिल का, धम्मपद का, भागवत का एवं वेदों का अध्ययन करते हुए 'गोलगोथा', 'वैशाखी', 'प्रभास' और शूद्रर्षि कवश नाम के पुस्तकों की रचना की।

विशिष्ट शब्दों के धातु एवं रचनाओं संबन्धी विवरण देनेवाले कई शोध लेख भी पै ने तैयार किए। उदाहरण के लिए 'आर + गे = आरगे'। प्राचीन कन्नड़ भाषा की साहित्य रचनाओं में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। पंप एवं रन्न की रचनाओं में ये शब्द देखने को मिलते हैं। इन रचनाओं के विशेष संदर्भ में 'किसके लिए' वाला अर्थ 'आरगे' शब्द के लिए ठीक नहीं बैठता। इसलिए श्री पै का विचार है कि कन्नड़ भाषा में 'आरगे' शब्द का भिन्न अर्थ रहा है। 'आर + गे = आरगे' वाला शब्द तुळु भाषा में प्रचार में है। प्राचीन कन्नड़ भाषा में भी यह शब्द प्रचार में रहा होगा। उदाहरण देकर श्री पै ने अपना मत सिद्ध किया और स्थापित किया कि ऊपर दिया हुआ अर्थ 'गे' प्रत्यय को दिखानेवाला है। 'अवनारगें बंदवम्' इस सन्दर्भ में इस शब्द का सही अर्थ है - 'अब आया हुआ मनुष्य - वह कौन है?' यहाँ पर 'किसके लिए वह आया' वाला अर्थ संदर्भ के अनुकूल नहीं। अनुमान किया जाता है कि श्री पै ने २०० शोध लेख तैयार किए हैं। उनमें से कई लेख पुस्तक के रूप में या अन्य किसी रूप में हमें मिल जाते हैं। ये सारे लेख एकत्र करते हुए उनका वर्गीकरण, संपादन एवं प्रकाशन लेखों की सूची सहित पुस्तक के रूप में तैयार करना बहुत ही आवश्यक रहा है। यह कार्य या तो विश्वविद्यालय को करना है नहीं तो सरकार को।

'कविता और अनुसन्धान के मार्ग अलग अलग हैं। बैल पर्वत की ओर एवं मवेशी नदी की ओर खींचते रहते हैं। दैवानुग्रह से युक्त भाग्यवान मनुष्य ही प्रयत्न से दोनों एक ही समय पर करने में सफल हो जाते हैं। मैंने दोनों उत्तरदायित्व अपने हाथ में लिए। इससे बड़ा नुकसान हुआ। एक ही समय पर दूध उबालने का और चने भुनने का काम मैं नहीं कर सका। दोनों काम अलग अलग करने के खातिर मैं दो तलवार एक ही

म्यान में रखने का प्रयत्न करता था। मैं जानता था कि इस प्रयत्न में दोनों एक साथ टुकड़े हो जाएँगे। लेकिन पिछले कई वर्षों से मैं दोनों काम एक साथ करता आया हूँ और अब पीछे हटनेवाला नहीं। समय बदल गया। मेरे पैर अब आगे नहीं चलते। जितना मैं तैर सकता हूँ उतना ही तैरता रहूँगा। फिर मैं अपने को ही गंगा में डाल दूँगा। गंगा का प्रवाह मुझे जहाँ ले जायगा वहाँ मैं तैरता हुआ जाता रहूँगा।'

अपने दो शौकों, कविता लिखना और शोध करना - से संबन्धित ये शब्द श्री पै ने विनयपूर्वक कहे हैं। यह विनय उनके महत्व को बढाती है। हमने स्पष्टतः देखा है कि इस असामान्य हाँगर ने अपनी राह नहीं छोड़ी। वह आसानी से तैरकर उस पार गई और जल्द ही उसने क्षीरसागर में तैरना शुरू किया। असामान्य दैवी अनुग्रह से उन्होंने एक ही समय पर कविता लेखन और अनुसन्धान, दोनों को सफलता के साथ आगे बढ़ाया। यही कन्नड़ भाषियों का भाग्य बना।

अध्याय - ८

पत्र-लेखन - साहित्य-कला

पत्रलेखन साहित्यकला का एक सार्थक रचनात्मक व्यापार होता है। पत्र में मनुष्य के कलेजे का दुःख एवं सुख प्रतिबिंबित रहता है। उसमें मनुष्य की आकांक्षाओं की मनोहर सिहरन, गुणग्राहकता, करुणा, हास्य विनोद और आसपास की साहित्यिक परिस्थितियों के अनुभव आकार को प्राप्त करते हैं। मुख्य रूप से बुद्धिमान मनुष्य, साहित्यिक विद्वद्रत्न आदि के द्वारा लिखित पत्र कलात्मक होते हैं। उन पत्रों में व्यक्तिगत विवरण के अतिरिक्त सामाजिक महत्व के विषय भी रहते हैं। ऐसे महान व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये पत्र मूल्यवान रहते हैं। इसी कारण से अनेक लोग पत्रों के संसार में ज़्यादा रुचि रखनेवाले होते हैं।

विशेष स्थान

हमारे देश में श्री पै के पत्र विशेष स्थान के अधिकारी रहे हैं। श्री पै सदा कविता, अनुसन्धान और अध्ययन से संबन्धित अखण्ड प्रयत्न में व्यापृत रहते थे। फिर भी वे पत्र लिखने के लिए उचित समय निकाल लेते थे। छोटे बच्चे, बूढ़े लोग, विद्यार्थी, प्राथमिक स्कूलों के अध्यापक, कॉलेजों के प्राध्यापक एवं आचार्य, सभी लोग उन्हें पत्र लिखते थे। स्कूल के दिनों से संबन्धित, कॉलेज की शिक्षा से संबन्धित, विवाह से संबन्धित, अनेक पत्र उन्हें मिलते थे। इन सन्दर्भों में जिनका उत्तर देना उचित था ऐसे पत्रों का वे तुरन्त उत्तर देते थे। वार्तालाप के बीच एक दिन इस लेखक ने पत्रों का शीघ्र उत्तर लिखने से संबन्धित श्री पै की आदत का जिक्र किया। तब श्री पै ने तुरन्त उत्तर दिया - 'लोग उम्मीद के साथ पैसे खर्च करते हुए मुझे पत्र लिखते हैं। मेरे प्रति उनका विश्वास बहुत मूल्यवान रहता है। मैं उस विश्वास का आदर करता हूँ। उसका अनादर या तिरस्कार नहीं करता। मैं भी थोड़ा समय एवं पैसे खर्च करता हूँ, यही सत्य है। मैं उन्हें सही सही उत्तर देता हूँ। वे मुझ पर जो विश्वास करते हैं उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मुझे उत्तर देना ही पड़ता है। यह मुझे उनका स्मरण रखने में एवं उनको मेरा स्मरण रखने में बहुत सहायक बनता है। श्री पै का परिचित हो या अपरिचित, हमारे देश के कोने कोने से लोग उन्हें पत्र लिखा करते थे। सूर्य के नीचे किसी भी विषय पर कोई भी श्री पै को पत्र लिख सकता था। इस

विषय में श्री पै को जो जानकारी है उसे वे पत्रों के ज़रिए लौटा देते थे।

संपूर्ण जीवन में श्री पै पत्र लिखने का यह काम अपने जीवन के अभिन्न भाग.के रूप में पवित्र धर्म मानकर करते रहते थे। ऐसे लोग बहुत कम ही होते हैं। श्री पै इस धर्म को टूटे बिना निभा सके। यह उनके महत्व का उचित प्रमाण रहा। श्री पै के पत्र संख्या में बहुत हैं। लेकिन उन पत्रों के महत्व को जाननेवाले मनुष्य बहुत कम हैं। इसकी जानकारी अधिक लोगों को नहीं है कि आधुनिक काल में उन पत्रों का विशेष महत्व रहेगा। उनके पत्र प्रायः जामुन के रंग की स्याही से लिखे हुए हैं। उन्होंने पोस्ट कार्ड, इनलैंड पत्र और पोस्ट कवर के ज़रिए जो पत्र लिखे वे आज नहीं मिलते।

पै के पत्रों का संग्रह

श्री गोविन्द पै के मरने के बाद उनके पत्रों के महत्व को जाननेवाले व्यक्तियों ने उनका संग्रह करने का सच्चा प्रयत्न किया। उडुपि. के प्रो. के. एस. हरिदास भट्ट उनमें एक थे। उन्होंने तीस लोगों से सौ पत्रों का संग्रह किया। श्री पै के स्मरणोत्सव के समय स्मारिका के रूप में निकाली गई 'दीविगे' नाम की पुस्तक के पाँचवें भाग में 'पत्रों की कही हुई कहानी' नाम से वे पत्र प्रकाशित किए गए। जी. पी. राजरत्नम् नाम के दूसरे प्रसिद्ध साहित्यकार ने 'गोविन्द पै के कुछ पत्र' नाम से एक पुस्तक तैयार की। इस पुस्तक में श्री पै के ४७ पत्र प्रकाशित हुए। इनमें से बयालीस पत्र उनके द्वारा श्री राजरत्नम् को लिखे हुए थे। 'पत्रों की कही हुई कहानी' एक आकर्षक पुस्तक है। इस पुस्तक में तरह तरह के विषयों का विवरण मिलता है। नीचे लिखे हुए व्यक्तियों को भेजे हुए पत्र इस पुस्तक में हैं। उनके नाम हैं -'सर्वश्री मुनिपाल राजू', 'नागराजय्या', 'बैकडि वेंकटकृष्ण राव', 'मंगळूर जारप्पा','के. एस. हरिदास भट्ट', 'रामकृष्ण सोमयाजी', 'डी. पुत्तुस्वामी', 'वेंकटरायाचार्य', 'सेडियापु कृष्णभट्ट','समेथन हळ्ळिरामराव','एम.अनन्तराव', 'के. चन्द्रशेखरय्या', 'डी. एन. बेलगळ्ळी','रंगस्वामी', 'वी. ए. शणै','गोपाल राव','ऐर्य लक्ष्मी नारायण अळवा','श्रीनिवास हावनूर','गुरुराज भट्ट', 'राम मोळेयर','वी. बी. लोकपुरा','एस. एम. शेट्टी','उग्राण मंगेश राव','सदानन्द नायक', 'विजयनाथ शणै', और 'शिवराम कारंत'.

यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि संपूर्ण देश में व्याप्त अनेक पत्र इकट्ठा करते हुए प्रकाशित किया जाय तो इन पत्रों की कही

हुई कहानी बहुत ही आकर्षक और विज्ञानप्रद होगी।

उनके अधिकांश पत्र कन्नड़ भाषा में मिलते हैं। थोड़े अंग्रेज़ी में। अंग्रेज़ी में लिखे गये अधिकांश पत्र कन्नड़ साहित्य एवं शोध से संबन्ध रखनेवाले हैं। इन पत्रों से उनकी गहरी विद्वत्ता ही नहीं उनकी अन्तरात्मा की पवित्रता भी प्रतिबिंबित होती है। यह बात बड़ी ही प्रभावात्मक रही है कि इतने महान एवं प्रसिद्ध कवि, विद्वान एवं शोधकर्ता सभी लोगों को प्रेम से एवं समान दृष्टि से पत्रों का जवाब सही सही देते थे। इससे हमारा उनके प्रति जो आदर है वह बढ़ जाता है। अंग्रेज़ी में उनके द्वारा लिखे गये पत्र इस प्रकार शुरू किए जाते थे -

गोविन्द पै
मंजेश्वर
दक्षिण कर्नाटक

दिनांक............

प्रिय,........

अन्त में वे लिखा करते थे -

विनयपूर्वक,
आपका विश्वासी

और नीचे अपना हस्ताक्षर लगाते थे। कन्नड़ भाषा के पत्रों में स्थान का नाम, मंजेश्वर ऊपर दाहिनी ओर लिख देते थे। पत्र का आरंभ वे 'गोविन्द पै माडुव नमस्कार' (गोविन्द पै का नमस्कार) लिख कर करते थे। अन्त में वे लिखते थे 'इति शम्' और अपना हस्ताक्षर लगाते थे। अपने सभी पत्रों में वे इसी पद्धति को अपनाते थे। उनको पत्र लिखनेवालों में छोटे बड़े , नये पुराने सभी तरह के लेखक रहते थे। वे हमेशा जवाब के माध्यम से उन्हें प्रोत्साहन देते थे। उनके मन की यही इच्छा थी कि छोटे बच्चों को आगे बढ़कर सफलता हासिल करनी है। कोई उनसे पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का आग्रह करता है तो वे उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें प्रोत्साहित करनेवाली बातें ही लिखते थे। वे कहते थे कि भूमिका लिखनेवालों को समीक्षकों जैसी टीका नहीं करनी चाहिए और लेखकों को

प्रेत्साहित करते हुए उन्हें विजय की ओर ले जाना चाहिए। उनका मत यही था कि लेखकों के प्रतिकूल कभी टीका नहीं करनी चाहिए। वे नवोदित लेखकों का भरपूर अभिनन्दन करते थे और उन्हें प्रोत्साहन देते थे। इसी कारण से अनेक लोग उन्हें पत्र लिखा करते थे। श्री पै बड़ी ही सहनशीलता से उन सब पत्रों का जवाब देते थे। कोई पत्र के ज़रिए उनकी प्रशंसा करता है तो वे लज्जित होते थे। वे जवाब में लिखते थे - 'एक कवि दूसरे कवि का शत्रु' वाली कहावत को तुमने असत्य सिद्ध किया। इस प्रकार सोने की वह बरछी प्रशंसा करनेवाले के पास ही लौटाते थे।

स्वभावतः श्री पै पोस्ट कार्ड पर ही जवाब लिखते थे। एक छोटे से पोस्टकार्ड पर वे भरपूर सूचना लिख देते थे। उनका हस्ताक्षर स्पष्ट रहता था। उनके पत्र हमेशा उपयोगी सूचनाएँ लिए रहते थे। कोई भी उनको बार बार पढ़ने की इच्छा करता था। वे रण्ण, केशीराजा, कालिदास आदि के वाक्य प्रसंगानुकूल उद्धृत करते थे। जब आवश्यकता पड़ती थी तब वे इनलैंड लेटर और पोस्ट कवर का भी उपयोग करते थे। (जब पत्र लंबे होते थे तब इनकी ज़रूरत पड़ती थी। उनके पत्र भरपूर सूचनाओं से युक्त रहते थे। उनके छोटे छोटे वाक्य अर्थगर्भित होते थे। इसलिए उनके पत्र भी कविता के समान ताजापन एवं मनोरंजन देनेवाले होते थे।

अस्सी वर्ष की अवस्था में उन्होंने डॉ. शिवराम कारन्त को एक पत्र भेजा और कहा कि कोटा के महालिंगेश्वर के मन्दिर के पास मिले शिलालेख की भाषा हज़ार वर्षों पुरानी है। इस प्रकार उन्होंने शिलालेख संबन्धी शोध एवं उससे संबन्धित पूछताछ की। उसी प्रकार उग्राण मंगेशराव को भेजे पत्र में 'भारतेश वैभव' के ताडपत्र से संबन्धित पूछताछ रही है। उग्राण मंगेश राव को भेजे गये और भी तीन पत्र प्राचीन कन्नड़ कवियों और उनकी रचनाओं से संबन्धित तर्क वितर्क प्रस्तुत करते थे। श्री एच. एस. हरिदास भट्ट को लिखे हुए एक पत्र में श्री पै ने एरोड़ी शिवरामय्या द्वारा 'सुवासिनी' पत्रिका पर लिखे गये लेख से संबन्धित सूचनाएँ दी थीं। ए. एम. लोकपुर को लिखे गये लंबे पत्र में श्री पै ने कन्नड़ कवि रन्न से संबन्धित उनकी शंकाएँ व्यक्त की थीं। श्री सेडियापु कृष्ण भट्ट के भेजे हुए महाकाव्य के संबन्ध में उन्होंने सानन्द प्रशंसा करते हुए लिखा। श्री राजरत्नम् को लिखे हुए पत्र में उन्होंने 'तीर्थंकर' शब्द, गोमटेश्वर, कैलास और संसा से संबन्धित तर्क वितर्क प्रस्तुत किए। राजरत्नम् को लिखे हुए अंग्रेज़ी पत्रों में साहित्य एवं शोध संबन्धी विषय

थे। यहाँ पर इस बात का स्मरण होना चाहिए कि उस समय पढ़े लिखे लोगों को अंग्रेज़ी भाषा में लिखने की पद्धति चालू रही थी। श्री पै के पत्र, उनके गुण, उनकी अच्छाई, नैसर्गिक प्रतिभा, विद्वत्ता आदि के उदाहरण कहे जा सकते हैं। उनकी विनम्रता, सद्‌गुण एवं विद्वत्ता पत्रों के ज़रिए प्रकाश में आई है। अंग्रेज़ी लेखक जॉन स्टुआर्ट मिल (१८३२) के नीचे दिए गए वाक्य श्री पै के पत्रों पर भी लागू किए जा सकते हैं।

'पत्रलेखन एक असाधारण एवं सार्थक काम है। महान काव्य से भिन्न रहते हुए भी वे नाटकों के समान आकर्षक रहते हैं। मनुष्य के जीवन के प्रवाह में आस्वादन के क्षणों और अवस्थाओं को सूक्ष्मता से देखने परखने में हमारी कल्पना शक्ति की सहायता करनेवाला पत्रसाहित्य साहित्य का ही दूसरा रूप प्रस्तुत करता है। पत्रों के ज़रिए अन्दर का व्यक्ति प्रकाश में आता है और हमें साहित्य के आस्वादनरूपी सागर में तैरने की सहायता करता है।'

अध्याय - ९

तीर्थयात्रा, अन्तिम दिन और महान शान्ति

श्री पै की साहित्य- तपस्या बिना रुकावट के शान्ति एवं लगन के साथ आगे बढ़ी। उनके पीछे पश्चिमी पर्वत अपने भव्य शिखरों के साथ खड़े थे और आगे विशाल नीला समुद्र। समुद्र एवं पर्वत के बीच मंजेश्वर के अपने वासस्थान में वे सतत प्रयत्न करते रहे। तुळुनाड के आश्रम के भार्गव जैसे वे साठ वर्ष तक प्रयत्न करते रहे। गद्य, पद्य एवं साहित्य के अन्य रूपों में, उदाहरण के लिए गीतिकाव्य, महाकाव्य और शोधलेख आदि में उन्होंने पूर्णत्व प्राप्त किया।

तीर्थयात्रा

हमारे देश के भिन्न भिन्न प्रदेशों के लोग इस महान आत्मा से मिलने के लिए तीर्थयात्रा के जैसे मंजेश्वर जाते थे। जिस प्रकार उडुपी के श्रीकृष्ण को, धर्मस्थल के मंजुनाथ स्वामी को वेणूर एवं कारकल के गोमटेश्वर को देखने जाया करते थे वैसे ही श्री पै से मिलने और उनसे वार्तालाप करने के लिए लोग मंजेश्वर जाया करते थे।

जो मनुष्य एक बार उनसे मिलकर वार्तालाप करता है वह उस महान व्यक्ति को कभी नहीं भूलता। उनसे वार्तालाप करना सच्चे अर्थों में एक उत्सव के समान होता है। सूर्य के नीचे जो भी विषय रहता है उसे हम लोग उनके सामने प्रस्तुत कर सकते हैं और उससे संबन्धित उनका मत प्रमाण सहित पा सकते हैं। सामने गर्जन करनेवाले समुद्र के साथ स्वरमेल दिखाते हुए जब वे बोलने लगते तब उसे सुननेवाले सब कुछ भूलकर ध्यान से उन्हें सुनते। उनके वार्तालाप की शैली उतनी आकर्षक एवं महत्वपूर्ण रही थी। उनके साथ वार्तालाप करते समय हम उन्हें स्वतन्त्र रूप से बोलने के लिए छोड़ देते थे। उनके सुर के साथ बेसुर होकर बीच में पडने से हम कतराते थे। वे भाषणकला के इतने धनी थे कि श्रोता लोग उन्हें आश्चर्य के साथ सुनते थे। उनसे मिलने और उन्हें सुनने के लिए आए हुए सारे अतिथि सन्तोष के साथ वापस लौटते थे। उनकी आँखें, कान तथा पेट पूरा का पूरा तृप्त रहता था। इतना प्यार भरा अतिथि सत्कार श्री पै लोगों को देते थे। वह बहुत ही हृदयावर्जक रहता था।

सामान्यतः ये अतिथि उनसे तरह तरह के प्रश्न लेकर आते थे।

अधिकांशतः ये प्रश्न साहित्य एवं शोधसंबन्धी होते थे। कठिन शब्द या पद, उनके अर्थ आदि के बारे में वे उनसे पूछते। अपने देश के संबन्ध में भी प्रश्न होते थे। कोई कोई किसी कवि के काल के संबन्ध में पूछता था और कोई किसी ऐतिहासिक घटना के संबन्ध में। वेद, बैबिल, धम्मपद और जैनों के धार्मिक ग्रंथ का अध्ययन करने के लिए लोग उनके पास आते थे। अपनी क्षमता के अनुसार वे प्रश्नों का उत्तर देते और उनका बोझ कम कर देते थे। श्री पै मंजेश्वर में एक जीवित विश्वकोश के समान थे।

धर्मपिता का अनुग्रह लेकर आनेवाले मनुष्य ही सार्वजनिक, सामूहिक, राजनीतिक या साहित्यिक जीवन में आगे बढ़ते रहते हैं। इस व्यापार में दल एवं पक्ष की भावना की प्रबलता दिखानेवाले लोग भी होते हैं। लेकिन श्री पै ने किसी भी दल का समर्थन नहीं किया। समर्थन के लिए उन्हें विशेष दल की ज़रूरत महसूस नहीं हुई। सभी लोगों ने उनकी प्रशंसा की। वे कीर्ति, पदवी, पुरस्कार एवं आदर की इच्छा नहीं करते थे। फिर भी ये सब उनकी खोज में उनके पास आए। औपचारिक समारोहों में अध्यक्ष की पदवी के लिए एवं सभा को संबोधित करने के लिए जो आदर दिया जाता था वे उसे स्वीकार नहीं करते थे. जब लोग इससे संबन्धित आग्रह लेकर उनके पास आते तब वे गाँव में पास ही रहनेवाले किसी व्यक्ति का नाम बता देते और उन्हें आमन्त्रित करने को कहते थे। अपने देश एवं भाषा के लिए उनका योगदान अपरिमित रहते हुए भी अपने देश या वहाँ के लोगों से बदले में कुछ पाने का आग्रह नहीं रखते थे।

मुझे डाक्टरेट नही चाहिए

अन्त में हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। बुढ़ापे में श्री पै ने राष्ट्रकवि की पदवी स्वीकार कर ली। उनके निकट के मित्र और साथियों ने स्वीकृति देने पर उन्हें राज़ी किया। उन्होंने कन्नड़ साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षपद के लिए भी स्वीकृति दे दी। उचित समय पाकर मैसूर विश्वविद्यालय ने भी उन्हें मानद डॉक्टरेट देने का निश्चय किया और यह आदर स्वीकार करने की माँग करते हुए एक पत्र उन्हें भेज दिया। ई. स. १९६३ में मई महीने की पहली तारीख को श्री पै ने उस पत्र का उत्तर इस प्रकार दिया।

'मैं मैसूर विश्वविद्यालय का कृतज्ञ हूँ क्योंकि उन्होंने मुझे डी.लिट् की पदवी प्रदान करने का निश्चय कर लिया है। मैं बूढा बन गया हूँ और इस समय कोई भी पदवी स्वीकार न करने का मैंने दृढता के साथ निश्चय कर लिया है।'

'मुझे फिर से यह बात तुमसे कहने की ज़रूरत नहीं कि इक्यासी वर्ष के बुढ़ापे के इस समय पर मेरे विवेक ने जो कहा है उसीके अनुसार काम करना उचित लगता है।'

'इस अवस्था में मैं अपना विश्वास बदलकर मैसूर विश्वविद्यालय के द्वारा दिया गया यह बड़ा सम्मान स्वीकार नहीं कर सकता। यह बात आपसे कहने में मुझे खेद हो रहा है।'

'दीर्घ काल तक मैसूर विश्वविद्यालय को प्रगति एवं गौरव प्रदान करते हुए भविष्य में उसका कल्याण करने के लिए मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।'

केवल संत कवि ही इस प्रकार का आग्रह एवं त्याग करने के लिए तैयार होंगे। रत्न किसी की खोज में नहीं जाता। जो मनुष्य रत्न को चाहता है वही उसकी खोज करता है। बहुत परखने पर भी सच्चे रत्न को पाना कठिन होता है। डॉक्टरेट की इच्छा जिसको होती है और उसे पाने के लिए जो व्यक्ति प्रयत्न करता रहता है उसको यह प्रदान करने के बदले श्री पै जैसे तटस्थ प्रतिभावान व्यक्ति को थोड़े समय पहले ही यह दिया होता तो और उसे स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया होता तो विश्वविद्यालय की प्रतिष्ठा और भी बढ़ जाती।

साहब ! मैं कितने काल तक जी सकूँगा?

जैसे कि पहले कहा जा चुका है श्री पै को सम्मेलन के अध्यक्ष बनने या दूसरे समारोह में भाषण देने की इच्छा नहीं थी। सत्तर वर्षों की उम्र में भी वे ऊर्जस्वल, स्वस्थ एवं कार्यरत रहते थे। उनके छोटे भाई के पुत्र श्री वेंकटेश पै का कहना था - 'वे अपने स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखते थे और पूर्णतः उसकी रक्षा भी करते थे। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास भी रहा था। तेज़ चलते हुए ताजा श्वास लेते हुए दौड़ते हुए और दिन में दो बार ठंडे पानी में नहाते हुए उन्होंने अपने स्वास्थ्य की पूरी रक्षा की। कम से कम आठ घंटों का विश्राम वे अपने मस्तिष्क को देते थे, जो मस्तिष्क निरन्तर अध्ययन और मनन करता रहता था।' श्री वेंकटेश पै के ये शब्द बुढ़ापे में भी श्री पै के स्वास्थ्य का रहस्य सामने ले आते थे। इसके बाद धीरे धीरे उनका स्वास्थ्य गिरता चला गया। विशेष समारोह में उनको आमन्त्रित करनेवाले मित्रों को उन्होंने लिखा - 'थोड़े समय के लिए मैं अस्वस्थ था और अब मेरा स्वास्थ्य थोड़ा बहुत सुधर रहा है। मेरी आशा है

कि मैं तुम तक पहुँच सकूँगा और लौटकर यहाँ आ सकूँगा। फिर भी मेरे छोटे भाई के बच्चे मुझे यात्रा करने नहीं देते। उन्हें शान्त करते हुए मैं तुमसे आकर मिलूँगा। यदि मैं ऐसा नहीं कर सका तो मेरा लेख निश्चय ही तुम्हें भेज दूँगा। किसी व्यक्ति को भेजकर तुम उसे ग्रहण कर सकते हो।' उन्हीं दिनों उन्होंने दूसरे मित्र को इस प्रकार लिखा - 'तुम्हारे निमंत्रण के लिए मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। लेकिन मैं क्या कर सकता हूँ? मुझे बुढ़ापे के कारण आनुषंगिक अस्वास्थ्य और थकावट महसूस हो रही है। इसलिए मैं निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सकता और कहीं जा भी नहीं सकता।' शारीरिक अस्वास्थ्य के साथ साथ निरन्तर लिखते रहने के कारण उनके दाहिने हाथ की कोहनी में दर्द होता रहता था। उनकी स्मृति क्षीण होती जाती थी और वे इस कारण से अस्वस्थ रहते थे कि जो कुछ पढ़ते थे उसे याद नहीं करते थे। अपने किसी मित्र को उन्होंने लिखा - 'तूफान में पड़े हुए दिए के समान मेरा स्वास्थ्य आगे पीछे डोलता रहता है। आज मेरा जन्मदिन है। मेरा सतत्तरवाँ वर्ष आज शुरू हो रहा है। साहब ! मैं कितने काल तक जी सकूँगा?

अपने से छोटे व्यक्ति श्री पै से अपनी पुस्तक के लिए प्रस्तावना लिखने की माँग लेकर आते थे तो पै उन्हें प्रोत्साहित करनेवाले शब्द ही लिख देते थे। लेखक चाहे वह प्रसिद्ध हो या न हो, कुछ फरक नहीं पड़ता था। उनके बीच वे कभी भेद नहीं करते थे। सभी के साथ समान व्यवहार करते थे। लेकिन अब परिस्थिति बदल गई थी। मुंबई के उनके मित्र ने 'गीतांजली' का अनुवाद किया और उस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने के लिए श्री पै से माँग की। उसका उत्तर श्री पै ने इस प्रकार दिया - 'दुर्भाग्यवश मैं बहुत बूढ़ा बन गया हूँ। बुढ़ापे एवं रोग से मैं त्रस्त रहता हूँ। मैं कोई काम नहीं कर सकता। भविष्य में मैं कोई भी प्रस्तावना लिखने योग्य नहीं रहा। मेरे बुढ़ापे एवं रोग के कारण से मैं तुम्हारे लिए प्रस्तावना नहीं लिख सकूँगा। इससे दोष मत समझना। मुझे माफ करना।' इस पत्र में तेल एवं बत्ती के अभाव में प्रकाशहीन दिये के चिह्न प्रकट हुए हैं।

बुद्ध के समान

श्री पै ने अस्सी वर्ष पूरे किए। मृत्यु की पूर्वसूचना शायद उन्हें मिली होगी। अपने एक पत्र में उन्होंने इस प्रकार लिखा -'अब मैं अस्सी वर्ष का हो गया हूँ। मेरे शरीर की शक्ति मेंरी उम्र पर ही आधारित है। मैं अब पीड़ित हूँ और दाहिनी कोहनी के कारण त्रस्त रहता हूँ। प्राणों को छोड़ने का

हर एक द्वार खुलता रहता है।' 'वैशाखी' नाम के उनके महाकाव्य में श्री बुद्ध के अन्तिम दिनों का चित्र उन्होंने खींचा है। इसको लिखते समय उन्होंने अस्सी वर्ष पूर्ण किये थे। श्री बुद्ध ने आनन्द नाम के अपने प्रिय शिष्य से कहा - 'हे आनन्द, रोओ मत। हमें प्यारी वस्तुओं को छोड़ना ही पड़ता है। उनका वियोग ज़रूरी है। जन्म लेकर जीनेवाले शरीर का नाश स्वाभाविक ही है। मरण को क्या दूर हटाया जा सकता है? आनन्द, मैं बूढा हो गया हूँ। आज मैंने अस्सी वर्ष पूरे किए। यह मेरे जीवन की अन्तिम घड़ी है। मेरा शरीर पुरानी गाड़ी के जैसा काँपता रहता है। मुझे पावे से कुशीनर ले जाओ।' कुशीनर तक पहुँचते ही भगवान का परिनिर्वाण हुआ।

श्री पै बुद्ध को उम्मीद एवं आश्चर्य से देखते थे। बौद्ध धर्म के ग्रंथों और सिद्धान्तों का उन्होंने गहरा अध्ययन किया। बुद्ध के अन्तिम दिनों के चित्र को उन्होंने इस प्रकार खींचा है -'देखो तो तथागत उस वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। ब्रह्मचर्य का शान्त प्रकाश देखो तो ! अपनी दृष्टि के शान्त होने तक देखो। आँखों के द्वारा उन्हें पी लो ! उनके धर्मोपदेश का अनुसरण करनेवाले ज्ञान, तपस्या, शान्ति, तेज,सात्विक विनम्रता एवं विद्वत्ता से भरे हुए उस महान व्यक्ति को देखो तो !' बुद्ध का यह चित्र श्री पै पर भी लागू होता है। अपने अन्तिम दिनों में बुद्धने पावे से अपने को कुशीनर ले जाने का आदेश शिष्यों को दिया। कुशीनर पहुँचते ही उनका परिनिर्वाण हुआ। 'जिस प्रकार गुब्बारा फूट जाता है, जिस प्रकार लहरें समुद्रतट तक आकर वहीं विलीन हो जाती हैं, धूमकेतु के समान, जिस प्रकार बरसात के मेघ पानी बरसाकर खाली होते हैं, जिस प्रकार बाती के खतम हो जाने पर दिया बुझ जाता है, जिस प्रकार आकाश पर बिजली कौंधकर अन्तरीक्ष में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार बुद्ध परिनिर्वाण को प्राप्त हुए।' वैसे ही अपने अन्तिम दिनों में श्री पै को मंजेश्वर से मंगलोर लाया गया। वहाँ पर ई. स. १९६३ में सितंबर ६ को वे अपने शाश्वत आवास की ओर उड़ गये।

साहित्यलोक का यह सूरज अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता की किरणों के ज़रिए साहित्यरूपी आकाश को प्रकाशित करते रहे। इस सूरज के अस्त होने के बाद ऐसा लगा कि अक्षरों के संसार में यकायक अन्धकार व्याप्त हुआ। उनका गुणगान करनेवाले हमारे देश के बहुत लोगों ने उनकी मृत्यु पर अपना दुःख व्यक्त किया। जब गान्धीजी का देहान्त हुआ उस समय श्री पै ने अपनी कविता के शब्दों के ज़रिए कि 'इन्निनिसु नी महात्मा बदुकबेकिथु' (हे महात्मा तुम्हें कुछ और काल तक जीवित रहने की ज़रूरत थी।), प्रार्थना की थी। श्री पै की मृत्यु पर इसी गीत को गाते हुए लोगों ने शोक किया।

अध्याय - १०

कवि को नमस्कार - शाश्वत स्मृतिचिह्न

केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र और अनेक राज्यों में श्री पै की मृत्यु पर शोक करने के लिए अनेक शोकसभाएँ चलाई गईं। ये सभाएँ छोटे छोटे गाँवों से लेकर बड़े बड़े शहरों तक चलाई गईं। अनेक विश्वविद्यालय, साहित्य परिषद, कर्नाटक परिषद आदि ने उनकी मृत्यु पर शोक किया। भिन्न भिन्न क्षेत्रों में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न पदों को अलंकृत करनेवाले - भारत के राष्ट्रपति, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मन्त्रीगण, संसद सदस्य, न्यायाधीश, विधि मंडल के सदस्य, व्यापारी, प्राचार्य, डॉक्टर, इंजिनियर, कृषक एवं मज़दूर सभी ने आँखों से अश्रुवर्षा की। प्रकाश नहीं रहा और सब कहीं अन्धकार व्याप्त हुआ। हमेशा जलते रहनेवाला दिया बुझ गया और हर एक व्यक्ति के मन में दुःख भर आया।

गोविन्दा, हरि गोविन्दा

जब पै जीवित थे उस समय स्वभावतः वे किसी पदवी, पुरस्कार, आदर, प्रशंसा स्वीकार नहीं करते थे। जब उनकी मृत्यु हुई तब अनेक संस्थाओं ने, सरकारों ने और बड़े बड़े व्यक्तियों ने उनके स्मरण के लिए अनेक कार्यक्रम तैयार किए। दामोदर बालिगा नाम के पै के मित्र ने उनका गुणगान करते हुए 'गोविन्दा हरि गोविन्दा' नाम की एक पुस्तक प्रकाशित की। पै के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सत्रह दुर्लभ चित्र उस पुस्तक में मिलते हैं। श्री बालिगा के द्वारा लिखी गई बत्तीस छोटी कविताएँ भी इस पुस्तक में संग्रहीत हैं। इसी पुस्तक में सोलह पृष्ठों की टिप्पणियाँ भी मिलती हैं जो पै के जीवन एवं रचनाओं से संबन्धित विवरण प्रस्तुत करती हैं। लेखक स्वयं इस पुस्तक को 'कवि का गुणगान' कहते हैं। उनकी रचनाओं और अन्य उपलब्धियों की प्रशंसा भी उसमें है। इस पुस्तक के प्रारंभ में श्री बालिगा ने 'गोलगोथा' महाकाव्य का अनुवाद अंग्रेज़ी पद्यों में किया है और ई. स. १९६४ में मुंबई में संपन्न अन्तर्राष्ट्रीय यूखारिस्त सम्मेलन में कवि को विदेशियों को परिचित कराने का श्रम भी किया है। उडुपी के महात्मा गाँधी मेम्मोरियल कॉलेज की देखरेख में 'राष्ट्रकवि गोविन्द पै अनुसन्धान केन्द्र' नाम की संस्था की स्थापना भी हुई। उस कॉलेज की स्थापना करनेवाले डॉ. माधव पै श्री पै के निकट के मित्र थे। उस समय के कॉलेज के प्राचार्य, प्रो.

के. एस. हरिदास भट्ट महान विद्वान थे। वे भी श्री पै का गुणगान करनेवाले थे। हरिदास भट्ट की प्रेरणा से पै के दायजों ने पाँच हज़ार पुस्तकोंवाला उनका पुस्तकालय अनुसंधान केन्द्र को भेंट में दे दिया। उस केन्द्र में ये पुस्तकें आज भी अच्छी तरह सँभाल कर रखी गई हैं। श्री पै की सुसंस्कृत रुचि के अनुसार अनुसन्धान केन्द्र खूब रचनात्मक कार्यक्रम करता रहता है। वह उपयोगी भाषणमालाएँ और कार्यशालाएँ अच्छी तरह चलाता रहता है। पुस्तकों का प्रकाशन भी होता रहता है। आजकल तुळु भाषा का एक शब्दकोश तैयार करने की महान परियोजना की गई है और हम आशा करते हैं कि यह सफलतापूर्वक संपन्न होगी। इस योजना के लिए कर्नाटक सरकार ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

कुन्दापुर की 'दीविगे'

कुन्दापुर के भण्डारकार कॉलेज में राष्ट्रकवि स्मरणोत्सव समिति का गठन किया गया। श्री रामदेव शणै इस समिति के अध्यक्ष थे। इस समिति ने 'दीविगे' और 'समर्पणे' नाम की दो स्मरणिकाओं का संपादन करते हुए उन्हें प्रकाशित किया। ये स्मरणिकाएँ कर्नाटक को प्रमुखता देकर तैयार की गई थीं। श्री पै के निकट के मित्रों ने, सारे देश के विद्वानों और कवियों ने उनकी कविताएँ, लेख और फोटो इकट्ठा करते हुए 'दीविगे' और 'समर्पणे' के लिए अपना अपना योगदान दिया। यह पुस्तक तीन भागों में प्रकाशित है। उसमें प्रसिद्ध कवियों की कविताएँ और दुर्लभ फोटो मिलते हैं। यह महाकवि गोविन्द पै की याद के लिए एक अच्छा सम्मान रहा।

दो सरकारों द्वारा निर्मित स्मारक

यह कवि के महत्व का सूचक है कि उनके लिए स्मारक निर्मित करने का कार्य पीपल के वृक्ष के समान बढ़ता रहता है। केरल और कर्नाटक सरकारों ने मिलकर एक स्मारक समिति का गठन किया। इस समिति के छत के नीचे दोनों राज्यों ने मिल कर कई व्यापार शुरू किए। इस पुस्तक का प्रकाशन इनमें एक है।

स्मारक समिति का इतिहास नीचे दिया जा रहा है। श्री गोविन्द पै और उनके भाई श्री अनन्त पै के बच्चे नहीं थे। श्री नारायण पै और श्री सुब्राय पै भी उनके दो भाई थे। उनके बच्चे(बेटे और बेटियाँ) थे। बेटियाँ विवाह के बाद अपने अपने पतियों के साथ रहती थीं। उनके बेटे डॉक्टर एवं वकील बने। शिक्षा के उपरान्त वे मंजेश्वर को छोड़कर दूर चले गये और

वहीं पर रहने लगे। मंजेश्वर का घर एक उपेक्षित जगह बन गया। भाग्य से उसी समय श्री पै के संपन्न पुस्तकालय को उडुपी में ले जाया गया। मंजेश्वर के घर में कोई भी नहीं रहता था। इसलिए जानवरों और पक्षियों ने इस घर को अपना वासस्थान बनाया। बाद में वह दो मंजिला घर जीर्ण होने लगा।

कवि के घर की दयनीय स्थिति

राष्ट्रकवि के भव्य महल की दयनीय अवस्था को देखकर लोगों का मन दुःख से भर आया। नाश की इस अवस्था को समाप्त करने के लिए वे अपने अपने मन में तरह तरह की योजनाएँ बनाने लगे। एक बार के. टी. श्रीधर नाम के कोई पत्रकार अपने सहयोगियों सहित इस स्थान को देखने आये और अपने लेखों और फोटो के ज़रिए उन्होंने इस घर की दयनीय स्थिति का वर्णन किया। उनका लेख केरल एवं कर्नाटक के प्रमुख समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ। तब तक पासवाले लोग मात्र इस घर की जीर्णावस्था को जानते थे। अब दूर दूर के लोग भी इसे देख और सुन कर दुःखी होने लगे। उन दिनों श्री एन. के. बालकृष्णन केरल के मन्त्री रहे थे। वे आज के कासरगोड के नीलेश्वर प्रदेश के थे। बाल्यावस्था से ही वे श्री पै का महत्व एवं बड़प्पन समझते थे। छापखाने से छपी हुई खबर पढ़कर वे मंजेश्वर चले गये। वहाँ की स्थिति देखकर केरल सरकार को उन्होंने एक रिपोर्ट भेजी। राष्ट्रकवि के आवास का सुधार करने के खातिर उन्होंने अपनी रिपोर्ट के ज़रिए ज़ोर डाला। ई. स. १९५६ के नवंबर पहली तारीख से मंजेश्वर केरल का एक भाग बन गया। अब राष्ट्रकवि के लिए एक उचित स्मारक बनाने की ज़रूरत सरकार को महसूस हुई और प्रस्ताव को मान्यता भी मिल गई। उस प्रदेश के लोग एकनिष्ठ होकर सहायता करने के लिए तैयार हुए।

श्री गोविन्द पै कन्नड़ भाषा के प्रथम राष्ट्रकवि रहे। अपने लंबे जीवन में उनका योगदान मुख्यतः कन्नड़ भाषा के खातिर रहा। इसलिए श्री एन. के. बालकृष्णन ने कर्नाटक सरकार से संपर्क करते हुए सहायता की माँग की। कर्नाटक सरकार ने तुरन्त उत्तर दिया और वह सहायता करने के लिए तैयार हुई। ई.स.१९७७ में 'स्वर्गीय श्री गोविन्द पै स्मरणोत्सव समिति, कासरगोड' नाम से एक समिति का गठन हुआ। अनेक साहित्यिक और केरल और कर्नाटक के अनेक प्रमुख व्यक्ति उस समिति में थे। समिति के द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम और परियोजना को लेकर दोनों सरकारों ने समान रूप से आर्थिक सहयोग देने का निश्चय किया।

समिति के कार्यक्रम

कासरगोड का जिलाधीश इस समिति का अध्यक्ष रहा। सहायक जिलाधीश कोषाध्यक्ष। कासरगोड जिले के शिक्षण का उपनिदेशक समिति का सचिव। डॉ. शिवराम कारन्त उपाध्यक्ष। डॉ. ए. सुब्ब राव, प्रो. के.एस. हरिदास भट्ट और श्री कय्यार किंजण्ण रै समिति के सदस्य। दोनों राज्यों के अनेक प्रमुख व्यक्ति समिति के सदस्य रहे हैं। इस समिति ने फायदे का बहुत काम किया। श्री पै के मंजेश्वर के नाशोन्मुख घर का उसने जीर्णोद्धार किया। वहाँ बिजली की सुविधा तैयार की। घर और आँगन के चारों ओर पत्थरों की दीवार बनाई। एक विस्तृत सभाघर में पत्थर से श्री पै की मूर्ति बनाने की व्यवस्था की। श्री पै की रुचि का अनुसरण करते हुए एक पुस्तकालय एवं वाचनालय शुरू करने की तैयारी अब हो रही है। पै का जन्मोत्सव, संगोष्ठी, भाषणमाला जैसे कार्यक्रम और दूसरे साहित्यिक कार्यक्रम संपन्न करने की तैयारियाँ हुई हैं। यह पुस्तक भी श्री पै से संबन्धित गहरा अध्ययन करने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों के लिए प्रकाशित की गई है। घर एवं चारों ओर का आंगनसहित अपने पूर्वजों की संपत्ति पर अपना अधिकार पै के वंशजों ने छोड़ दिया। सच्चे अर्थों में यह प्रशंसा का कार्य रहा और अच्छे सात्विक व्यवहार का सूचक रहा। कवि के घर एवं चारों ओर के आंगन की शोभा बढ़ाने का विचार भी समिति करती है। श्री पै की रुचि को मानते हुए साहित्य एवं शोध के क्षेत्र में गहरा अध्ययन प्रोत्साहित करने के लिए एक केन्द्र की स्थापना करने का भी विचार समिति का है।

इन सभी कार्यक्रमों को संपन्न करने के लिए उस प्रदेश के लोगों ने अपनी सहायता एवं सहयोग दिया है। इस कारण से केरल एवं कर्नाटक सरकारों ने एक एक लाख रुपयों की आर्थिक सहायता भी दी है। हमारा विचार है कि दोनों सरकारों की आर्थिक सहायता एवं लोगों का सहयोग बराबर मिलता रहेगा। इस प्रकार महाकवि की तेजवन्त आत्मा की पूजा आगे बढ़ाई जा सकेगी और उनका नाम हमेशा के लिए स्मरण में रहने का पवित्र कार्य बिना रुकावट के निरन्तर चलता रहेगा।

महाविद्यालय का स्मृतिस्तंभ

श्री पै के स्मारक के संबन्ध मे एक प्रमुख घटना के बारे में यहाँ कहना है। केरल सरकार ने एक सरकारी विद्यालय की स्थापना की और मंजेश्वर में 'श्री गोविन्द पै मेम्मोरियल कॉलेज' के नाम से वह आगे बढ़ रहा

है। इस महाविद्यालय की स्थापना करने के लिए उस प्रदेश के पदाधिकारियों ने लाख लाख रुपये देकर अपना सहयोग प्रदान किया है। कर्नाटक सरकार ने दो लाख रुपयों की राशि देकर सहायता की है। अब इस महाविद्यालय का संपूर्ण गठन हो गया है और वह सही सही चलता रहा है। फिर भी केरल सरकार ने स्वतन्त्र रूप में विस्तृत जगह पर शोभा देनेवाली उत्तम इमारतों के निर्माण में आवश्यक धनराशि देकर उसे आगे बढ़ाने की तैयारी की है। काम शुरू करने की तैयारियाँ हो चुकी हैं। मंजेश्वर के सरकारी महाविद्यालय से संबन्धित यह अध्याय ई.स.१९८७ में शुरू हुआ। जैसे भी हो, अब यह महाविद्यालय मंजेश्वर से दूर उसकी अपनी स्वतन्त्र इमारत में चलता रहा है।

सर्वोत्तम कविप्रतिभा, शोध एवं विद्वत्ता जैसे विशेष गुणों के लिए श्री पै का नाम पहले ही शाश्वत बन गया है। कवि की मृत्यु के उपरान्त सामान्य लोग और सरकार उनके गौरव को नये नये माप देने के लिए सच्चे अर्थों में प्रयत्न करते रहे हैं।

अध्याय - ११

गोविन्द पै से संबन्धित रचनाएँ

सामान्य रूप में अनेक व्यक्तियों ने गोविन्द पै के जीवन से संबन्धित पुस्तकों की रचना की। उनकी कविता एवं शोध से संबन्धित लेख और समीक्षाएँ बहुत कम मिलती हैं।

श्री पै को राष्ट्रकवि की पदवी जव मिली उस समय इस लेखक ने 'राष्ट्रकवि गोविन्द पै' नाम की पुस्तक लिखी। श्री जी. पी. राजरत्नम् ने 'कवि गोविन्द पै' नाम की पुस्तक लिखी। श्री पंडेश्वर गणपति राव के 'चेंगळणें' नाम के संग्रह की 'पंडितवक्कि' (विद्वान पक्षी) नाम की एक कविता है। इस कविता के विषय में इस लेखक ने 'महाकवि गोविन्द पै' नाम का एक लेख लिखा और बंगलोर में प्रकाशित एक मासिक पत्रिका में छपवाया। यह दक्षिण कर्नाटक में गोविन्द पै के संबन्ध में लिखा हुआ पहला लेख है।

श्री पै के संबन्ध में कुन्दापुर के भंडारकार महाविद्यालय में गठित समिति ने गोविन्द पै स्मरणोत्सव के सिलसिले में दो भागों में 'दीविगे' नाम की एक पुस्तक और ' समर्पणे' नाम की दूसरी पुस्तक प्रकाशित की। सारे देश के कवियों और लेखकों की लिखी कविताएँ और लेख इस पुस्तक में हैं। करीब चौबीस कवियों ने इस पुस्तक में अपनी कविताएँ लिखी हैं। उनमें महान कवि बेंद्रे, कुवेंपु और अनेक युवा कवि हैं। ४७ कवियों ने श्री पै से संबन्धित अपनी पूर्वस्मृति लिखी है। उसमें अंग्रेज़ी में सात लेख हैं। नौ लेखकों ने श्री पै की रचनाओं पर समीक्षात्मक लेख लिखे।

प्रो. हरिदास भट्ट की 'अक्षरों द्वारा कही हुई कहानी' (ओले हेलुव कथे) भी 'दीविगे' के पहले भाग में प्रकाशित हुई है।

श्री राजरत्नम् ने श्री पै के संबन्ध में दो पुस्तकें लिखीं। उनमें पहली पुस्तक 'कवि गोविन्द पै' जिसमें श्री पै का जीवन और कृतित्व संक्षेप में लिखा गया है। दूसरी पुस्तक, 'गोविन्द पै के पत्र' जिसमें ४७ पत्र हैं। उनमें से पाँच पत्र दूसरों को लिखे हुए हैं। बाकी सव राजरत्नम् के नाम पर हैं। प्रो. के. एन. हरिदास भट्ट और श्री जी. पी. राजरत्नम् ने ये पत्र संग्रहीत करके प्रकाशित किए। इसलिए श्री पै के पत्रों के महत्व से संबन्धित जानकारी आनेवाली पीढ़ी को आसानी से देने की सहायता मिली। प्रो. के. एस. हरिदास भट्ट ने पै के संबन्ध में एक पुस्तक भी लिखी है।

श्री पै के साहित्य एवं शोध के संबन्ध में गहराई से अध्ययन करके पुस्तक लिखनेवाले हैं डॉ.श्रीनिवास हावनूर। उन्होंने एन. वी. नायक के साथ मिलकर पुस्तक का संकलन किया और ' गोविन्द पै - वाङ्मय दर्शन' नाम से वह प्रकाशित किया। हावनूर ने 'श्री गोविन्द पै - समग्र वाङ्मय समीक्षे' नाम की दूसरी पुस्तक लिखी। डॉ. हावनूर और उनके मित्रों ने मिलकर सामग्री इकट्ठी की और उसे क्रमानुसार रखते हुए बड़ी पुस्तक के आकार में प्रस्तुत किया। उनका यह प्रयत्न प्रशंसा के येग्य है।

हं.प. नागराजय्या (हंपना) ने काव्यजीवी के साथ मिलकर लिखी 'गोविन्द पै - जीवनी एवं कृतित्व' नाम की पुस्तक कन्नड़ साहित्य परिषद ने प्रकाशित की। श्री पै की जीवनी एवं कृतित्व के भिन्न भिन्न पक्षों का पाँच अध्यायों में दिया गया वर्णन हृदयस्पर्शी हुआ है। डॉ. एन. एस. लक्ष्मीनारायण भट्ट द्वारा संकलित 'गोविन्द पै- शतमान स्मरण' नाम की पुस्तक कन्नड़ साहित्य अकादमी ने प्रकाशित की। कवि की शताब्दी के सिलसिले में अकादमी द्वारा चलाई गई साहित्य परिषद में प्रस्तुत शोधलेख इस पुस्तक में संकलित किए गए हैं।

गोविन्द पै ने अपनी कविता में नए पुराने छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने कन्नड़, हिन्दी, बंगाली, अंग्रेज़ी आदि कविताओं का गहरा अध्ययन किया है। इसलिए इन भाषाओं के छन्दों का ज्ञान उन्हें था। पुराने छन्दों में कविताएँ लिखने और पुराने कवियों का अनुसरण करते हुए प्रचलित पुराने छन्दों का प्रयोग करने के बदले नये नये छन्दों का प्रयोग करने में उनकी विशेष रुचि रही थी। इस विषय में श्री शंकरनारायण भट्ट ने 'गोविन्द पै के छन्दों की स्थिति'(गोविन्द पैगळ छन्दोगति) नाम की विद्वत्तापूर्ण पुस्तक लिखकर हमारा बड़ा उपकार किया है। प्रमुख लक्ष्य, लक्षण एवं प्रस्तरों का मेल दिखानेवाली यह पुस्तक अध्ययन के योग्य है।

'श्री गोविन्द पै पदप्रयोग कोश' अध्ययन करने योग्य और एक पुस्तक है। श्री सी. उपेन्द्र सोमयाजी के साथ मिलकर श्री ए. वी. नवदा ने यह पुस्तक तैयार की। नये नये शब्दों का निर्माण करते हुए उनके प्रयोग के खातिर भाषा की सहजता को नष्ट किए बिना पुराने शब्दों के सुधार के लिए और 'इसु' प्रत्यय लगाकर नए नए शब्द निर्माण करने के लिए श्री पै बहुत प्रसिद्ध थे। श्री पै की सभी रचनाओं के शब्दों का संग्रह करते हुए व्यवस्थित रूप से इन लेखकों ने विशेष शब्दों को लेकर यह कोश तैयार किया। महान कवि एवं नाटककार शेक्सपीयर, पंप, नागचन्द्र, कुमारव्यास आदि पुराने

कन्नड़ कवियों को लेकर इस प्रकार के कोश तैयार किए गए हैं। लेकिन आधुनिक कवियों के शब्दप्रयोग के संबन्ध में तैयार किया गया यह पहला शब्दकोश है। यही उसके विशेष महत्व का कारण है।

श्री पै के ८२वें जन्मदिन के अवसर पर भक्तिपूर्वक उन्हें समर्पित 'हेब्बेरळु कृतिदर्शन' (हेब्बेरळु - एक अध्ययन) नाम की पुस्तक श्री बालकृष्ण रै पोळली ने लिखी। इस पुस्तक में द्रोण के प्रति एकलव्य की अटूट भक्ति, शस्त्रविद्या के आचार्य द्रोण के मन का आन्तरिक संघर्ष, हिरण्यधनु का भय और वर्गभेद के कारण होनेवाली विकट समस्याओं से संबन्धित हलचल आदि का हृदयस्पर्शी वर्णन किया गया है। अपनी रचनाओं और शोध के कारण प्रसिद्ध उनके आजा,श्री पोलाय षीनप्पा हेगडे को श्री पै के द्वारा लिखे गए नौ पत्र श्री शेट्टी ने प्रकाशित किए हैं। श्री शेट्टी ने इन पत्रों के लिए उचित टिप्पणी भी दी है। उसी प्रकार श्री बी. पद्मनाभ सोमयाजी ने 'गिळिविंडु' पर एक विस्तृत लेख तैयार किया। सन् १९६९ में मनाए गए श्री पै के जन्मोत्सव के समय उन्होंने यह लेख पढ़ा। 'गिळिविंडु समीक्षे' नाम से श्री वेंकटाचार्य ने यह लेख पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया। श्री सोमयाजी प्रसिद्ध लेखक और संस्कृत एवं कन्नड़ भाषा के विद्वान थे। 'गिळिविंडु समीक्षे' उनकी श्रेष्ठ उपलब्धि है।

ई.स. १९८३ में याने श्री पै की शताब्दी के वर्ष में कर्नाटक के विविध विश्वविद्यालयों ने पै की जीवनी एवं कृतित्व को लेकर परिसंवाद, भाषण और कार्यशालाएँ चलाईं और अनेक उपयोगी प्रकाशन तैयार किए।

श्री पै की शताब्दी के सिलसिले में कर्नाटक विश्वविद्यालय में संपन्न परिसंवाद में विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत लेख विश्वविद्यालय की त्रैमासिक के विशेष अंक में प्रकाशित किए गए। मेरे द्वारा तैयार की हुई एक पुस्तक मंगलोर विश्वविद्यालय ने 'गोविन्द पै - स्मृति कृति' नाम से प्रकाशित की। यह उस विश्वविद्यालय का प्रथम प्रकाशन था। मंगलोर में संपन्न एक समारोह में इस पुस्तक का विमोचन हुआ। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता डॉ. शिवराम कारन्त अध्यक्ष थे। श्री पै की शताब्दी के सिलसिले में मैसूर और बंगलोर विश्वविद्यालयों ने भी समारोह आयोजित किए। मंगलोर की 'कलादर्शन', बंगलोर की 'ज्ञानसुधा', मणिपाल की 'तरंग' और अन्य अनेक पत्रिकाओं ने श्री पै की जन्मशताब्दी के सिलसिले में स्मृतिग्रंथ के रूप में विशेषांक प्रकाशित किए। अनेक कवियों और विद्वानों ने कविता और लेख प्रदान करते हुए इसमें अपना योगदान दिया। कवि की

जन्मशताब्दी के सिलसिले में सारे देश की शिक्षण संस्थाओं और मंडलियों ने कई समारोह आयोजित किए। हमारे देश एवं संस्कृति के महत्व एवं गौरव को संपन्न करनेवाले उस महात्मा को हमारे लोग सदा स्मरण करते रहेंगे और उनको आदर प्रदान करते रहेंगे।

श्री पै का मेरे प्रति विशेष प्रेम था। उनका घर मंजेश्वर में था और मैं भी उसी प्रदेश का था। उस समय उस प्रदेश को 'मंजेश्वर मगने' कहा जाता था। भूगोलविद्या के अनुसार यह कवि के थोड़े निकट पड़ता था। अक्सर हमें एक दूसरे से मिलने एवं बातें करने के खूब अवसर मिलते थे। मैं भी भाषा, कविता एवं साहित्य के अध्ययन में मन लगाता था। उन दिनों खुले मंच पर नृत्त करने का धैर्य मुझमें नहीं था। पीछे की ओर से मैं सदा सक्रिय रहता था। पहली बार जब मैं कवि से मिला और उनसे मेरा नाम बताया तो तुंरन्त उन्होंने मेरे तूलिका नाम को याद किया। दुर्गादास के तूलिका नाम से लिखनेवाले व्यक्ति तुम्हीं हो न? उन्होंने मुझसे पूछा।

मैं आश्चर्य में पड़ गया। मेरे समान तुच्छ लेखक भी उस महान कवि के मन को कुरेदकर उसमें समा गया है, यह जानकारी मुझे आश्चर्यचकित करनेवाली थी।

उनके प्रति मेरा जो विशेष आदर था, उसके कारण मैं श्री पै की रचनाओं का अध्ययन करने लगा। पै से संबन्धित भाषण देने के और लेख लिखने के जो अवसर मिलते थे मैं उनका खूब उपयोग करता था। लेख पढ़नेवाले एवं भाषण सुननेवाले व्यक्ति मेरी प्रशंसा करते थे।

दिन बीतते गए। गोविन्द पै की कविता या उसके अर्थ से संबन्धित सन्देह दूर करने के लिए जो भी श्री पै के पास आता उसको वे मेरे पास भेज देते। जिस प्रकार एकलव्य ने धनुर्विद्या का अभ्यास किया उसी प्रकार मैं पै की रचनाओं का अध्ययन करता रहा। लेकिन पै अपने शिष्य का अंगूठा माँगनेवाले आचार्य नहीं थे वे हमेशा मुझे अनुग्रह देते थे और चार हाथों से मुझे शक्ति प्रदान करते थे।

मुझे लगा कि उनका ऋण चुकाना चाहिए। जब वे कन्नड़ साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बने तब मैंने 'राष्ट्रकवि गोविन्द पै' नाम की पुस्तक लिखी और उनको समर्पित की। फिर कवि की शताब्दी के सिलसिले में पै और उनकी रचनाओं के संबन्ध में एक पुस्तक लिखने के लिए मंगलोर विश्वविद्यालय ने मुझसे माँग की। कर्तव्य को समझते हुए मैंने 'गोविन्द पै - स्मृति कृति' नाम की रचना तैयार की। केरल एवं कर्नाटक राज्यों के द्वारा गठित स्मारक समिति ने 'महाकवि गोविन्द पै' नाम की पुस्तक लिखने की

माँग की। कवि का मुझ पर जो प्रेम था, उस ऋण के भार को कम करने के लिए मैंने यह माँग स्वीकार की। मुझे सन्तोष है कि मैं इसे पूर्ण कर सका हूँ। यही नहीं, मैं अपने मन और शरीर की शक्ति की सीमाओं को अच्छी तरह जानता हूँ।

महाकवि गोविन्द पै का गद्य एवं पद्य बार बार पढ़ने पर नये नये अर्थ सामने आते हैं। मैं मानता हूँ कि उनकी रचनाओं के संबन्ध में लिखनेवालों को और भी बहुत कुछ लिखना है। इनकी भाषा, शब्द, अलंकार, छन्द, वाक्य, शब्दरचना और कहावतें इस प्रकार शोभित होते हैं जैसे छेनी से तराशे हुए चमकदार रत्न हों। विभिन्न दृष्टियों से उनकी आलोचना की जा सकती है। वे चकाचौंध से युक्त प्रकाश फैलानेवाले रत्न हैं। इसलिए कोई भी व्यक्ति यह सोचकर तृप्त नहीं हो सकता कि पै की रचनाओं से संबन्धित सब बातें वह कह चुका है।

इस सन्दर्भ में महाकवि कालिदास का श्लोक याद आता है -

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः
तितीर्षुः दुष्करं मोहात् उडुपेनास्मि सागरम्

(सूर्य से उत्पन्न वंश कितना महान है ! मन कितना छोटा है ! छोटी छोटी वस्तुओं का आवास। तरापे की छोटी छोटी बाँसों की सहायता से समुद्र के उस पार जाने की इच्छा पूर्ण करना बहुत कठिन होता है।)

मेरी यह रचना सूरज के सामने छोटे से दीपक की जैसी है। एक बूँद तेल मैं भी इसमें डालता हूँ। सदा प्रकाशित दीपक के लिए मेरी काव्यमय भक्ति समर्पित है। मैं आदरपूर्वक प्रार्थना करते हुए कहता हूँ कि यह प्रकाशमान दीपक और भी प्रकाशमान बन जाये।

राष्ट्रकवि (कविता)

(श्री मंजेश्वर गोविन्द पै को नमस्कार)

१. आकाश के समान ऊँचा सह्याद्रि पर्वत
उसके पीछे दूर दूर तक फैला
परिमाणरहित, गंभीर, विस्तृत
नीला समुद्र।
सिंह और हाथी वहाँ शोर मचाते हैं
ऊँची लहरें यहाँ गर्जन करती हैं
इसी ताल और मेल ने
तुम्हारे मन में प्रेरणा जगाई।

२. सुगन्धित पृथ्वी, खेत धान के,
मधुर, सुगन्धित, संपत्ति की शय्या
नारियल, सुपारी के पेड़
सिर हिलाते हैं, रोमांचित करते हैं ।
पिशाचों का नृत्त, धोल का ताल
यक्षगान और पाडदन के गीत
नदियों, पक्षियों का संगीत
तुम्हारी प्रतिभा के साधक रहे।

३. करुणा से काव्य बना
वाल्मीकि जैसा तुम्हारा मन
'गोलगोथा' का स्रोत है दुख
जिसे दैवपुत्र ने क्रूस पर सहा
वारांगना वासवदत्ता ने
बुद्ध-शिष्य को देखा श्मशान में
साक्षी बने वेदगीत
देवर्षि कवश की तृष्णा के।

४. ऊँचे कुल की पवित्र क्षुद्रता
रही अंगूठे की आहुति में
मातंगी बनी बहन सुगत की
पवित्र भोले मन की ।
वेद, बैबिल, धम्मपद,
जैनों के आगम पचाये तुमने
रत्नों जैसे गीत, कथाएँ
लोगों के सामने प्रस्तुत कीं।

५. तुम्हारे कलेजे का प्रेम उतरा
सदा प्रज्ज्वलित दिये के रूप में
कृष्णा को जीव किया समर्पित
अकेले में जीकर तुमने
भव्य, तेजवन्त तुम्हारी दृष्टि
तुमने ईश्वर को जीव में देखा
तुम्हारा विचार सतत यही
जिसके खातिर कविता लिखी।

६. सत्यान्वेषण शुरू हुआ
इतिहास में तुम्हारा शोध हुआ
कवि का समय, कविता की गहराई
तुमने परख ली, दिया ज्ञान सत्य का।
विद्वत्ता के हिमालय के
तुम रहे उच्चतम शिखर
तुम्हारा वर्णन शक्ति के बाहर
मैं रहा लघु, कवियों का सेवक।

७. कविता लिखना, शोध करना
दोनों साथ साथ आगे बढ़े
तीन नदियों का हुआ संगम
कन्नड़ , कोंकणी और अंग्रेज़ी
पद्य में और गद्य में
तुम्हारी शैली केवल तुम्हारी
अद्वितीय एवं अनुपमेय
यही रहा हमारा गौरव।

८. तौळवों का इतिहास एवं दाय
पड़ा अंधकार में विस्मृत
तुम्हीं ने उसे प्रदीप्त किया
तुळुनाड पर प्रेम बरसाया।
'तुम्हारी गोद में मुझे वापस ले लो
अगर मुझे पुनर्जन्म मिले'
तुमने विनम्रता से माँग की
माता से अपनी प्यारी।

९. कोंकणी माता ने तुमको जन्म दिया
तौळव माता को समर्पित किया
कन्नड़ माता ने पालने में सुलाया
पालन किया और प्रकाश में आया।
भारत माँ के प्रति तुम्हारी श्रद्धा ने
शक्ति एवं साहस दिया
सभी माताओं ने माथे पर तुम्हारे
सच्चे अर्थों में अनुग्रह बरसाया।

१०. दासता के दानव को दमन करने
तुमने स्वतन्त्रता के खातिर समर्पण किया
भारत माता की आँखों के आँसू
तुमने गीतों और कविताओं में सजाये।
'हाय, प्यास बुझाने का पानी
नमकीन रहा', किया विलाप तुमने
'मेरे बापू, तुमने राहु को भगाया
और केतु को अन्दर प्रवेश दिया'

११. 'मधु की वर्षा, दूध की लहरें,
कन्नड़ देश में', तुमने गाया
'आओ मेरी माता, तुम्हारा मुख तो दिखाओ
तुम्हारे बच्चों को अनुग्रह दे दो', तुमने विनती की
पवित्र यादों के आगे कविताओं के फूल
कवि करते हैं समर्पित
लेकिन मैं ले आया मात्र आँसू
दयालु बंधो, ग्रहण तो कर लो।

परिशिष्ट - १

श्री गोविन्द पै के चुने हुए चुटकुले

१. उड़नेवाला तोतों का झुंड उड़ने के बीच में किसी बाग को देखकर थोड़े समय के लिए वहाँ विश्राम करता है। क्या वे उस बाग की संपत्ति बनेंगे ?
२. आँखें खोलकर देखनेवालों को ईश्वर दिखाई देते हैं।
३. जन्म से कोई भी जातिहीन नहीं है। मनुष्य अपने बुरे कर्मों से जातिहीन बनता है।
४. कवि मधुमक्खी की तरह है। वह स्वातन्त्र्य का अमृत पीता है।
५. जिसे देखा, वह सौन्दर्य मनोहर है, जिसे नहीं देखा, वह और भी मनोहर है।
६. शान्ति मरती नहीं है।
७. कविता खरे अर्थों में करुणा ही है।
८. मातृभाषा के माध्यम से दी गई शिक्षा बहुत मूल्यवान होती है।
९. नाशवान वस्तुओं का मूल्य चुकाना ठीक है क्या?
१०. समुद्र क्रोध में आकर जितना भी आक्रोश क्यों न करे वह तट तोड़ कर आगे नहीं बढ़ता।
११. दासता से अच्छा मरण ही है।
१२. जो जन्म लेता है उसके लिए मृत्यु निश्चित है। लेकिन उसका प्यार मृत्यु के उपरान्त भी जीवित रहता है।
१३. मेरे पाप एवं पुण्य का कर्म मैं तुम्हें समर्पित करता हूँ।
१४. जो काम किया गया है, क्या वह मूल्य नहीं माँगेगा?
१५. हमारा शरीर कन्नड़, मन कन्नड़ और हमारी भाषा भी कन्नड़ है।
१६. हमारी अवस्था कस्तूरी मृग जैसी है, जो अपने ही शरीर में छिपी पड़ी सुगन्ध का उद्गम बाहर खोजता है।
१७. इसकी एवं उसकी लालसा के कारण तुम दरिद्रता को क्यों निमंत्रण देते हो?
१८. बिना माँगे मिलनेवाली असीम संपत्ति को क्यों खो देते हो?
१९. माँ ! बालक के जन्म लेने के पहले ही उसने स्तनों में दूध बचा के रखा है तो तुम क्यों चिन्ता करती हो?
२०. बिना राधा बने तुम्हें कृष्ण कैसे मिल जायेंगे?

२१. हम जो माँगते हैं वह तुम नहीं देते हो। लेकिन न माँगते हुए भी तुम हमारे खातिर प्रयत्न से चुन चुन कर चीज़ें दे रहे हो।
२२. फल मधुर है या कडुआ, क्या लता इसे जानती है?
२३. अपना फल स्वयं खानेवाली लता दूसरों को फल देती है क्या?
२४. बच्चे को जन्म देने के अनुभव से हीन बाँझ स्त्री अच्छी दाई कैसे बनेगी?
२५. रंगों की रेखाएँ शरीर पर उत्पन्न होने के पहले बाघ के बच्चे की छाती में दर्द होता रहता है।
२६. पक्षी अपने पंखों की गरमी से कौए के बच्चे की रक्षा करता है क्या?
२७. शिकारी कुत्ता शिकार की गंध पाकर बहुत बार हुआता रहता है और उसे पृथ्वी पर गिरने के लिए मज़बूर करता है।
२८. पानी में जोंक के समान टेढ़ी चाल मत चलो।
२९. बैल जब गाड़ी नहीं खींच सकता वह जुए की रस्सी पर गिर जाता है।
३०. बाँस की झुरमुट में पत्थर फेंककर हँसनेवाले लोग पागल हैं।
३१. मुख्य जड़ वृक्ष की रक्षा करता है, सर्प अपने फण पर रत्न की सूक्ष्मता के साथ रखवाली करता है, जीभ स्वाद बढ़ाती है।
३२. छोटी हरी मिर्च के समान तीखा ।
३३. जीवन में ऐसा भी समय आता है जब मनुष्य अपने आप ऊपर उठता है और सफलता को प्राप्त करता है।
३४. कुत्ते को पुरोडाश देना उचित है क्या?
३५. गंगा में डाली हुई शराब गंगोदक बनती है न?
३६. मनुष्य जिसकी सहायता नहीं करता उसकी रक्षा ईश्वर करता है।
३७. शब्द छोटे होने पर भी उनका प्रभाव बड़ा होता है।
३८. आँखें छोटी होने पर भी दृष्टि बड़ी होती है।
३९. चाकू छोटा होने पर भी घाव गहरा होता है।.
४०. मन के उत्तेजित हुए बिना कोई भी मनुष्य महान नहीं बन सकता।
४१. तुमने सर्प के बिल में जाकर रागालाप किया। इतना तो बस है न? फिर बिल में लाठी क्यों घुसेड़ते हो?
४२. तैरते हुए नदी पार करना और नौका का किराया देना क्या उचित है?
४३. अपने खेत में काम करते हुए दूसरे को भाड़ा देना उचित है क्या?

४४. मधुर स्वर सुनकर भी तुम कोयल को कौआ कहते हो क्या?
४५. मुकुट बनाने के लिए जब सोने का उपयोग होता है तब ताँबे के साथ उसे जोड़ा जाता है।
४६. अंजलि के फूल दोनों हाथों को सुगन्धित करते हैं।
४७. क्या तीर कभी यह कहता है कि वह धनुष के योग्य नहीं है?
४८. क्या आँखों की पुतली कभी कहती है कि वह आँखों के योग्य नहीं है?
४९. घर को आग लगाकर तुम पानी की खोज में जाते हो क्या?
५०. मेमने को भेड़िये का चुंबन।
५१. धधकनेवाले लाल प्रकाश से युक्त आँखों को देखकर अंधकार में काले बाघ को पहचाना जा सकता है।
५२. काम करने में की गई बुराई काम की पूर्ति में खतरा पैदा कर सकती है।
५३. तीर के खातिर धनुष झुकता नहीं है क्या?
५४. महान लोगों का कर्तव्य है कि वे अपने समान दूसरों को भी श्रेष्ठता की पदवी पर पहुँचायें।
५५. दूसरों को पटकाकर गिरा देना अच्छा काम नहीं है।
५६. हमारी मातृभूमि का प्रमुख सिद्धान्त है जीवन में एकता का भाव बढ़ाना।
५७. वह मेरा अकेला बेटा है। कड़ाही के मधुर अपूप (चावल और गुड़ से बनाया हुआ मधुर पकवान। वह घी या तेल में पकाया जाता है।) जैसा, पकाने की सात खोटियोंवाला।
५८. स्वयं धूप में तपकर दूसरों की रक्षा करनेवाली छत्री के समान ।
५९. कंघी न किए हुए केशों पर हिलनेवाली जुओं के समान।
६०. जिस प्रकार सूखा करेला खाया जाता है।
६१. क्षण भर में वह द्वापर हुआ।
६२. तुम दोनों उँगली एवं नख के समान एक दूसरे के साथ पले बढ़े।
६३. साँप के द्वारा चूसे गये गाय के थन के समान।
६४. गीले हाथों से गाय के थनों को निचोड़ने के समान।
६५. बाँबी में साँप की वक्रता सहज ही है।
६६. डुबकी लगाकर मोती खोजनेवाला जब तक पानी से ऊपर नहीं आता तब तक मरे हुए के समान होता है।

६७. घर की दरिद्रता का परिमाण तराजू क्या जाने?

६८ नारियल के पेड़ पर चढ़नेवाले को एवं सुपारी के पेड़ पर चढ़नेवाले को पैरों का घेरा समान होता है क्या?

६९. उस को इस बात की भी समझ नहीं है कि बकरी के कितने और गाय के कितने थन होते हैं।

७०. जिस प्रकार मछली अपने अंड़ों को मुँह में रखती है और बच्चों के बाहर आने तक भूखी रहती है उसी प्रकार।

७१. फूल के गिरने के पहले उसकी सुगंध को नष्ट न करो।

७२. जिस प्रकार हल चलानेवाले एवं बोझ ढ़ोनेवाले बैलों से गाय को अलग रहना पड़ता है वैसे ही साहसी वीरों की माताओं को अपने बच्चों से दूर रहना पड़ता है।

७३. जिस प्रकार धोबी पाले हुए हाथी की पीठ पर गन्दे वस्त्रों का पोटला रखता है।

७४. केकड़े के पैरों को न तोड़नेवाला कोई मछुआ होता है?

७५. केद्दासा की हवा जैसे शीघ्र उड़नेवाले उसने, जिनके नाक थे उन्हें सर्दी और जिनके सिर थे उन्हें सिरदर्द प्रदान किया।

७६. जो सुगन्ध तूफान में नहीं रह सकती उसीके समान।

७७. गुणों से रहित शौर्य और धैर्य रास्ते की ओर खुलनेवाले द्वार पर रखे हुए दिये के समान है।

७८. नौका आगे ले जाने के लिए पानी को पीछे की ओर धकेलना है न?

७९. खटमल की तरह काटना, बदबू फैलाना और गिर जाना।

८०. नाश की देवता,'मारी' के आने के द्वार नहीं होते। वह जहाँ हाथ लगाती है वहीं पर राह बन जाती है।

८१. रसोई घर में मुर्गे को पकाने के लिए मसाले के मिश्रण का अनुमान जिस प्रकार मुर्गे को नहीं होता वैसे ही।

८२. यदि साँप छिछुंदर को निगलता है तो थोड़े दिनों में वह शक्तिहीन हो जाता है और मर जाता है। निगली हुई छिछुंदर को वह कै करता है तो वह अंधा हो जाता है और उसका जीवन निरुपयोगी हो जाता है।

८३. जैसे दाँतों के बीच में जीभ रहती है।

८४. क्या बाँझ मवेशी के दाँत कोई देखता है।

८५. जब मोती बाहर निकाला जाता है तब शुक्ति अपना मुँह पूरा खोलती है।

८६. जिस प्रकार शीशे की ढक्कन दिये की रक्षा करते हुए सोचती है कि उसने प्रकाश को अपने आलिंगन में आबद्ध कर रखा है।
८७. नौका का खर्च पहले ही दिया। अब मैं नौका की राह देख रहा हूँ।
८८. सपने में घाव बना तो तुम मलहम क्यों खोजते हो?
८९. जिन झाड़ों और वृक्षों को कुल्हाड़ी ने काटा है उनको कुल्हाड़ी बार बार चूमती है न?'
९०. अंकुश का टेढ़ापन हाथी के कान के योग्य होता है। उसी प्रकार कुकर्म तुम्हारी बुरी आदतों के योग्य ही है।
९१. संसार कें इतिहास में महान घटनाएँ दुष्कृत्य का हस्तकौशल ही दिखाती हैं।
९२. महान सिद्धियाँ घोर कष्टों का फल होती हैं।
९३. पूर्ण रूप से सात्विक व्यक्ति मनुष्य नहीं होता।
९४. मैं उसी संसार में रहने की इच्छा करता हूँ ज़हाँ दुष्कृत्य नहीं है।
९५. अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर दूसरों को धोखा दिए बिना कोई भी दूसरों पर शासन नहीं चला सकता और अपने राज्य का विकास नहीं कर सकता।
९६. जो कोई पूर्ण रूप से सरल स्वभाव का होता है वह दूसरों पर हुकूमत नहीं चला सकता।
९७. शासकों एवं शासितों के लिए नियम एक नहीं है।
९८. क्या हाथों और पैरों को एक ही कमीज़ या पाजामा शोभा देता है?
९९. क्या लोहे का खंभा अपना टेढ़ापन स्वयं दूर कर सकता है? उस पर मार कर उसे सीधा करने के लिए हथौड़े की ज़रूरत नहीं है क्या?
१००. धर्म और गुण से रहित स्वतन्त्र राष्ट्र अंधा होता है। धर्म और गुणों के रहते हुए भी स्वतन्त्रता के बिना राष्ट्र पंगु होता है।
१०१. अपने पर विजय प्राप्त करनेवाला राष्ट्र सच्चे अर्थों में विजयी होता है।
१०२. भ्रूण जिस प्रकार नाक से श्वास नहीं लेता।
१०३. छत्री के बिना धूप में चलनेवाले मनुष्य के कष्टों को छत्री को लेकर चलनेवाला मनुष्य कैसे समझ सकता है।
१०४. पानी की जो बूँद एक बार मोती बन गई तो क्या वह फिर से पानी बन सकती है?
१०५. बछड़ा जो दूध नहीं चूसता और गाय जो दूध नहीं देती।

१०६. स्वतः गिरनेवाले पंखों के स्थान पर नये पंख आ जाते हैं, लेकिन उखाड़े हुए पंखों के स्थान पर नये पंख नहीं निकलते। यही अन्तर है।

१०७. यह खेत में रखे हुए बिजूखे के समान है। वह न खेत की रखवाली ही करती है, न फसल को बढ़ने ही देता है।

१०८. ईश्वर एवं सात्विक गुण एक ही हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा और चाँदनी एवं आँखें और दृष्टि।

१०९. ततैया के घोंसले में अंड़े बाहर से छिपे रहते हैं।

११०. वर्षा में मवेशी जैसे वह निर्विकार रहता है।

१११. घोड़े को हमने चुरा ही लिया, कम से कम घुड़साल का ताला जैसे का तैसा रहे।

११२. पृथ्वी पर हाथ से मारने से जिस प्रकार काले कीड़े नीचे गिरते हैं वैसे ही।

११३. सोना अशुद्ध हो तो सुनार को दोष क्यों दें?

११४. मुँह में दाँत नहीं हैं और मुँह पोपला बन जाय तो खाने को पचाने और बोल को समझने में कठिनाई होती है।

११५. आकाश की असीम विशालता को जाने बिना जिस प्रकार उसके पार पहुँचने के लिए उड़ने का प्रयत्न पक्षी करता रहता है, उसी प्रकार।

११६. तुमने दिया, तुम्हींने छीन लिया। तुमने जितना दिया उतना ही मैंने हाथ फैलाकर ले लिया।

११७. पूरा संसार कष्ट में रहे, यही तुम्हारी इच्छा है।

११८. सन्तोष समुद्र के लहरों के फेन के समान है। वह लहरों पर तैरता है और अदृश्य होता है।

११९. दुःख एवं कष्ट कर्कट के समान नीचे से ऊपर की ओर आता है।

१२०. यदि सेम को रौंदा जाय तो बाहर के छिलके में क्या रहता है?

१२१. आँखों से पुतली तोड़ ली जाय तो फिर आँखों में क्या रहता है?

१२२. कहा जाता है कि अपने आभूषणों से बढ़कर दूसरों की बन्धक रखी गई चीज़ों के बारे में सतर्क रहना चाहिए।

१२३. तुम्हारे मन में पाप है क्या? हेमन्त की चाँदनी रात में गरमी रहती है क्या?

१२४. यदि वह मेरी दोनों आँखें एक हाथ से तोड़ लेते हैं, तो क्या वे अपने दूसरे हाथ से मेरी रक्षा करते हुए उनके पास ले जायेंगे न?

१२५. खेल में तल्लीन होकर बच्चा भूख को भूल जाता है। माता के

स्तन दूध रिसने लग जायें तो क्या उसको बच्चे की भूख की समझ नहीं रहेगी क्या?

१२६. दूध से जैसे मट्ठा बनता है, मैं तुम्हारे विचारों से उत्पन्न हुआ।

१२७. अकाल के समय भूख दूर करने के लिए अपने बच्चे को बन्धक रखनेवाली माता के जैसे मैंने अपना मन भोग के लिए बन्धक रखा।

१२८. जिस प्रकार जानवरों का कीड़ा गाय के दुखनेवाले थनों, को काटता है वैसे।

१२९. यदि रस्सी को जलाया जाय तो भी उसके गुँथे हुए तन्तु जिस प्रकार नहीं जलते हैं वैसे।

१३०. खिलौने के टूटने पर बच्चा आँसू बहाता है न? लेकिन उसको बनानेवाले कलाकार का दुःख उससे ज़्यादा होता है।

१३१ कष्टों को हम स्वयं बुलाते हैं।

१३२. क्रोध में आई हुई माँ जिस प्रकार क्रोध के शान्त होते ही अपने बच्चे को दुलारती है, वैसे ही मैं अपने जीवन का पालन करूँगा।

१३३. दूसरों का समय नष्ट करने के लिए मैं नहीं बोलता।

१३४. मन ही स्वर्ग है, मन ही नरक, हमारे स्वर्ग पहुँचने या नरक में पड़ने का कारण मन ही है।

१३५. नाश की देवता 'मारी' की उपासना करने के लिए क्या बकरी अपने गड़ेरिये से माँग करती है क्या?

१३६. मनोहर दृश्य देखना क्या आँखों का दोष है? जब मन इन वस्तुओं को देखकर उनकी इच्छा करता है तो क्या यह मन का दोष है? उन्हें भोगने की इच्छा करना क्या शरीर का दोष है? या दोष उसका है जिसने इस शरीर को बनाया?

१३७. पाप का उत्तरदायी कौन है? मैं या तुम? अंधकार का उत्तरदायी कौन है? सूर्य या आकाश?

१३८. स्थिति वैसी है जैसे अंधा सपना देखते समय यकायक जाग जाता है, मछली जाल से निकलकर जिस प्रकार नौका में गिरती है। यह भी नहीं, वह भी नहीं।

१३९. स्वतन्त्रता ईश्वर से भी कम महत्व की एक देवी है।

१४०. यह युद्ध अन्तिम युद्ध नहीं है।

१४१. हमारी करनी का फल देने के लिए समय सहनशील होकर प्रतीक्षा करता रहता है।

१४२. खून किए हुए मनुष्य का रक्त खूनी के रक्त के लिए रोता रहता है।
१४३. हे महात्मा, थोड़े बहुत काल तुम्हारे और भी जीने की ज़रूरत थी।
१४४. देना है तो अच्छा दें दें, नहीं तो न दें।
१४५. हाय ! प्यास बुझाने का जल जो दिया वह नमकीन रहा।
१४६. क्या दुःख इच्छा का फल नहीं है?
१४७. घंटी बजना रुक जाय तो भी जिस प्रकार उसकी प्रतिध्वनि होती रहती है, उसी प्रकार।
१४८. भारत के कलेजे पर तुमने बिजली के अक्षरों में 'क्विट् इंडिया' लिखा।
१४९. खाना रहते हुए भी भूखों मरना और जीवित रहते हुए भी मृत के समान जीना।
१५०. तुमने राहु को भगाया और केतु को अन्दर प्रवेश दिया।
१५१. गाय के बहुत रंग होने पर भी उसकी आवाज़ वही है और दूध में भी फरक नहीं है।
१५२. सद्गुणों के आकर्षण से उत्पन्न प्रेम सच्चा होता है। शरीर के सौन्दर्य से उत्पन्न आकर्षण यथार्थ प्रेम नहीं होता ।
१५३. हर एक सूर्योदय पर मनुष्य पुनर्जन्म लेता है।
१५४. भूखे रहकर जीना और हवा खाना।
१५५. दवा लेने के बदले क्या कोई रोग के लिए प्रार्थना करता है?
१५६. लेखनी को देखने पर लिखना बन्द हो जाता है।
१५७. एक नाक के दो छेदों के समान वे एक ही स्थान पर रहते हैं।
१५८. 'कुरुंजी' के फूल के समान वह मनोहर है और सौन्दर्य में उसके समान केवल वही है।
१५९. वैद्य का कहा और रोगी का चाहा दोनों दूध और भात।
१६०. मैंने एक डरपोक से शादी कर ली। वही बहुत है। उसके लिए मैं पुत्रों को जन्म क्यों दूँ?
१६१. जिस प्रकार हवा सुगन्ध को रखती है उसी प्रकार मैं अपने मन की बातें सुरक्षित रखती हूँ।
१६२. जैसे साँप से, वैसे मैं पैसों से दूर रहती हूँ।
१६३. कीचड़ का कीड़ा क्या मक्खन एवं भोजन की इच्छा करता है ?
१६४. साहित्य के पूजाघर की देहली पर यकायक मैं रुक गया और बन्द द्वार पर मैंने खटखटाया। द्वार खुला और मैंने अन्दर प्रवेश किया।

१६५. खुले मैदान में सोने से बचने के लिए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर पालना लगानेवाली भिखारिन के समान।

१६६. उस तोते के समान जो शाल्मली की छींबी के पकने की प्रतीक्षा करता है।

१६७. बैल ने पर्वत की ओर खींचा और मवेशी ने नदी की ओर।

१६८. जो कोई दूसरों की दिवाली में अपने दियों को जलाने का प्रयत्न करता है, वह एवं उसका परिवार अन्धकार में पड़ता है।

१६९. कारखाने की भट्ठी में किसी भी खान से कच्ची धातु पहुँचती है। लेकिन उसे तपाने का तापमान, उसकी तरलता का स्तर, आभूषण बनाना, आदि का निश्चय कारीगरों के द्वारा ही किया जाता है।

१७०. किलकिला बहुत बार पानी में डुबकी लगाता है और गीला बन जाता है, फिर भी उसका रंग कभी फीका नहीं पड़ता।

१७१. हेमन्त ऋतु के ठंड़े दिनों में जिस प्रकार 'सुरहोण्णे' खूब फूलता है वैसे ही।

१७२. हज़ार डोरियों के लिए एक गाँठ के समान।

१७३. जोतने के बाद ही बोने के बारे में सोचा जाता है।

१७४. जोतना और बोना मेरी इच्छा के अनुसार होता है। लेकिन अच्छी फसल ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है।

१७५. जिस गली से आज यात्री चलते हैं, भविष्य में वही रथों के दौड़ने का राजमार्ग बनता है।

१७६. निशाना लगाकर धनुष पर चढ़ाया गया तीर लक्ष्य तक पहुँचता है।

१७७. प्राचार्य एवं रुचि दोनों को जिस प्रकार गँवा दिया जाता है वैसे ही।

१७८. चील के द्वारा भगाये गये कबूतरों के जैसे।

१७९. वह मेरा पहला अंडा है।

१८०. मछली का जाल कुएँ में डालकर क्या मिलता है? यदि मछली पकड़ना है तो समुद्र में एक बड़ा सा जाल फैलाना होता है।

१८१. चना भूनना और दूध उबालना दोनों एक साथ नहीं किए जाते।

१८२. मैं एक म्यान में दो तलवारें रखने का प्रयत्न करता हूँ।

१८३. मैंने अच्छा समय गँवाया और जो पैर आगे रखा उसे पीछे हटाया।

१८४. जितना मैं तैर सकता हूँ उतना ही तैरता रहूँगा। फिर मैं अपने

को ही गंगा में डाल दूँगा। गंगा का प्रवाह मुझे जहाँ ले जायगा वहाँ मैं तैरता हुआ जाता रहूँगा।

१८५. घोंघे के जैसे मैं आगे पीछे सरकता हूँ। मेरे प्राणों में जो प्रेरणा आई वह उनको छुए बिना दूर ही रही।

१८६. पिछले जन्म में आधा गाया हुआ गीत इस जन्म में गाने की प्रेरणा देता है। इस गीत को आगे बढ़ाना है और आनेवाले जन्म में गाना है। आनेवाले जीवन के स्वरमेल में जब तक यह गीत अपनी अस्मिता नहीं खो बैठता तब तक गाना आगे बढ़ाना है। तब तक ऊँघनेवाले एक गायक के समान जो अपनी वीणा पर बीच बीच में गाना शुरू करता है और बन्द करता है, उनको मेरे जीवन की वीणा पर अन्तर्विराम के साथ गायन करना ही पड़ता है।

१८७. जिस प्रकार लेखनी मेरे हाथ में है उसी प्रकार मैं नसीब के हाथों में हूँ।

१८८. परमानन्दरूपी ईश्वर से संबन्धित शोध में मेरी आत्मा की शान्ति मात्र मुझे लाभ के रूप में मिली है। मेरे काव्यनिर्माण की प्रेरणा भी वही है।

१८९. जब दुःख आता है तब मैं गाता हूँ। मेरे अस्वस्थ मन को शान्त करने के लिए मैं गाता हूँ और दुःख को भूल जाता हूँ।

१९०. गाय के समान कवि दूध मात्र बाहर छोड़ते हैं। उसे मथ कर मक्खन लेने का या तपा कर घी बनाने का काम समीक्षक का है।

१९१. अपनी इच्छा के अनुसार लिखना है, इसको छोड़कर कवि का दूसरा उद्देश्य नहीं रहता।

१९२. लेखन का उद्देश्य खोज निकालना समीक्षक का काम है।

१९३. साहित्य काली शाण पर सोने की चमकती हुई रेखा के समान, काले मेघ पर बिजली की रेखा के समान होना चाहिए।

१९४. मनुष्य का जन्म ही अश्लीलता का सूचक है। साहित्य प्रकृति की छाया जैसे रहनेवाला एक ग्रह है। तो फिर साहित्य से अश्लीलता किस प्रकार दूर की जा सकती है?

१९५. महान एवं सामान्य कवि के बीच क्या अन्तर है? पहला चीनी माटी का आभूषण है तो दूसरा साधारण माटी का।

१९६. पग पग पर काटनेवाले जूते के नुकीले पत्थर के समान वह काटता रहता है।

१९७. दूसरों के घर में अपूप के छेद रहते हैं। लेकिन उनके घर में तवे

के ही छेद हैं।

१९८. जिस प्रकार एक सेर के चौबीस तोले रहते हैं वैसे ही उसका कथन शत प्रतिशत सत्य रहता है।

१९९. दर्पण में जिस प्रकार हाथी छोटा होता है, उसी प्रकार उनकी आकृति छोटी हुई, बड़ी नहीं हुई।

२००. जिस प्रकार सेमन्तिका के फूल तोड़कर बहुत दिनों के लिए रखे गए वैसे ही उनका रंग उड़ गया, बढ़ा नहीं।

२०१. जिस प्रकार कोहनी द्वार की सिटकनी से टकराती है वैसे धक्का उसी पर पड़ा। लेकिन दुःख मुझको हुआ।

२०२. कपास तृण से भी लघु होता है। भिखारी कपास से भी लघु है। लेकिन भीख माँग कर पीड़ित करने के डर से हवा उसे फूँक फूँक कर हटाती रहती है।

२०३. उसका गोरा मुखड़ा कल के मुरझाये हुए गुलाब जैसा था।

२०४. मुझे लगा कि मैं किसी सर्प से टकराया और मेरे शरीर में रोमांच हो आया।

२०५. 'वृषोत्सर्ग' के बैल के समान बहता पानी पीने और राह पर की घास खाने के लिए उसे छोड़ दें।

२०६. लेखक रोगी होता है और संपादक डाक्टर।

२०७. सर्वोत्कृष्ट पत्रिका के संपादक को दीवार पर रखे हुए दीपक के समान भीतर एवं बाहर प्रकाश फैलाना होता है।

२०८. क्या बगुले को कहीं पर किसी एक तालाब तक सीमित रखा जा सकता है?

२०९. मारने के बाद फेंका हुआ सर्प सर्प ही होता है। अपनी हड्डियों की अस्तव्यस्त शृंखला को निश्चित स्थान पर स्थापित करने में जो प्रयत्न वह करता है और दुःख सहता है उसे वह स्वयं एवं ईश्वर ही जानता है।

२१०. जहाँ तक कन्नड़ का संबन्ध है, वह बहरा एवं गूँगा है।

२११. वह कालीन खरीदने आया, हरिकथा सुनने नहीं।

२१२. ढ़ोल बजाना और नाचना, दोनों मुझे ही करना पड़ता है।

२१३. पानी मिलाने पर भी मट्ठा मट्ठा ही रहता है। सुननेवाले तीन ही हों तो भी वह सभा ही है।

२१४. पड़ोसी के उत्सव के साथ साथ अपने बेटे का यज्ञोपवीत संपन्न

करने की इच्छा करनेवाले मनुष्य के समान।

२१५. प्राचीन काल में स्वर्ग पाने के लिए लोग 'भृगुपतन' (पर्वत पर से नीचे कूदना)करते थे।

२१६. पानी पहले ही गोमुख में जाता है और बाद में बाहर की ओर बहता है।

२१७. बाहर जाकर जब कुछ नहीं कर सका तो खाली हाथ लौटे हुए 'पुत्त'की भाँति वह घर लौटा।

२१८. जिस ईश्वर ने आँखें दी हैं, उसी ईश्वर ने सच्चे अर्थों में इन आँखों से देखने के लिए प्राकृतिक दृश्यों को भी भरपूर बनाया।

२१९. रामेश्वर जाने पर भी दुर्भाग्य का देवता शनैश्चर पीछा करता है।

२२०. वहाँ पर वे चटाई के नीचे सरक गये, लेकिन यहाँ पर वे पृथ्वी पर रंगोली के नीचे सरक गये।

२२१. धातु का तपा हुआ पत्ता पानी सोख लेता है, उसे निस्सन्देह हथौड़े की मार भी सहनी पड़ती है।

२२२. अकाल के समय ताड़वृक्ष के आकारवाला एक मेघ प्रकट हुआ।

२२३. फिर से लिखने का यह भारी काम कौन करेगा?

२२४. गर्भाशय में जिस प्रकार भ्रूण बढ़ता है उसी प्रकार वह विकसित होता है। प्रसव तक हमें प्रतीक्षा करनी है।

२२५. अंधा व्यक्ति यह बात आज तक नहीं समझा कि उसे चश्मा लगाना है।

२२६. बँधी हुई रस्सी को छोड़कर मैंने गाय को मुक्त कर दिया ताकि वह जब चाहे गोष्ठ में जा सके।

२२७. हम्पी जाने से भी अच्छा गाँव में रहना है।

२२८. उत्सव में शामिल नहीं हो सका, फिर भी मिठाइयाँ तो खा सका।

२२९. मुझे चक्रदोला में बिठाया गया और ऊपर नीचे चलने के लिए धक्का दिया गया।

२३०. प्रस्तावना लिखनेवाले की अवस्था पुरोहित के समान होती है। उसे अपने पास आनेवाले व्यक्ति के कल्याण के लिए प्रार्थना करनी पड़ती है और उस व्यक्ति को अनुग्रह देना पड़ता है। लेकिन समीक्षक डॉक्टर के समान होता है। उसको व्यक्ति के स्वास्थ्य एवं शरीर की प्रकृति के बारे में जानना पड़ता है और उसकी प्रशंसा करनी पड़ती है। ज़रूरत के अनुसार उसे काटना या फाड़ना पडता है। स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करने के लिए वह अपने रोगी को क्रूरता

के साथ नहीं, प्यार से पीडित करता है।

२३१. झाड़ियों के झुरमुट में छिपे हुए खरगोश के लिए सब कहीं अन्धकार और कोलाहल।

२३२. वह गाय के थनों के दूध की अन्तिम बूँद भी निचोड़कर बछड़े को दूध पिलाने का सूखा अनुष्ठान संपन्न करने के समान रहा।

२३३. संपादक हमेशा सास होती है और लेखक बहू।

२३४. अरे, अंधे पुरोहित, तुम्हें नमस्कार है कहकर झगड़ा मोल लेना।

२३५. घाव का निशान घाव की याद दिलाता है।

२३६. जितना समय है उतना हम खेलेंगे, अस्तमय तक काम भी करेंगे।

२३७. साहित्यिक रचनाओं में सारतत्व, जानकारी, अर्थ एवं उन्माद रहनी चाहिए।

२३८. दूसरे लोग साधारण अणुबम का निर्माण करते हैं तो हमें अधिक प्रभावशाली बम का निर्माण करना चाहिए।

२३९. मैं दो माताओं का पुत्र हूँ ! कोंकणी मेरी माता है जिसने मुझे जन्म दिया। कन्नड़ मेरी धात्री जिसने मुझे दूध देकर पाला।

२४०. मैं धर्मोपदेश नहीं देता। लेकिन मैं उपदेश सुननेवाला हूँ। जीवन भर सुनता रहा हूँ।

२४१. कन्नड़ व्यक्ति को कन्नड़ भाषा के प्रति श्रद्धा और भारत के प्रति देशभक्ति दोनों दो आँखों के समान थीं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता था।

२४२. श्री पंजे का अभिनय अन्त में 'काकवन्ध्य' रहा।

२४३. प्रथम कन्नड़ कहानी मंगलोर की 'सुवासिनी' नाम की पत्रिका में ई. स. १९०० में प्रकाशित हुई। श्री पंजे ने उसे लिखा। इसलिए श्री पंजे मंगेशराव कन्नड़ भाषा के प्रथम कथालेखक रहे।

२४४. अभी अभी बच्चे को जन्म देनेवाली स्त्री खेड़ी को कैसे अलग कर सकती है।

२४५. स्थिति नियन्त्रण के बाहर हुई। सत्य सामने आया।

२४६. नीम्बू घास के साथ साधारण घास को क्यों मिलाते हो?

२४७. मछली के बच्चे को तैरना सिखाने की ज़रूरत है क्या?

२४८. फूल की सुगन्ध सूँघने की अलग और रौंदने की अलग।

२४९. श्री पंजे मंगेशराव कन्नड़ भाषा के श्रेष्ठ कथाकार हैं।

२५०. इमली पुरानी होती हुई भी उसका खट्टापन कम नहीं होता।

२५१. मुँह बन्द होने पर भी हृदय चुप नहीं रहता।

२५२. श्री पंजे मंगेशराव का स्वर्गवास हैदराबाद में हुआ। कन्नड़ साहित्य के दीपगृह के खंभे का प्रकाशमान दिया तुळुनाड़ में बुझ गया। प्रकाश प्रकाश में मिल गया।

२५३. वहाँ से होकर जाते समय मेरे शरीर में रोमांच हो आया।

२५४. कन्नड़ भाषा का पहला लेख कब लिखा गया इसके बारे में मुझे जानना था। यकायक मुझे मंगलोर की 'सुवासिनी' मासिक पत्रिका में प्रकाशित नन्दलिके श्री लक्ष्मीनारायणप्पा के 'जोगुळ' नाम का सुन्दर लेख याद आया। यह लेख ई. स. १९०० में 'सुवासिनी' मासिक पत्रिका के प्रथम भाग के किसी अंक में प्रकाशित हुआ।

२५५. मनुष्य पूर्ण नहीं है। लेकिन वह पूर्णता के मोह में पड़ा रहता है।

२५६. व्यंग्य स्वार्थ का साधक मात्र नहीं। वह दूसरों के लिए भी उपयोगी रहता है। इसमें शंका नहीं है कि वह दोष दिखाने का एक तरीका है। लेकिन वह प्रोत्साहन देता है और जीवित रखता है।

२५७. कोई भी जब हास्यास्पद और घृणास्पद बातें देखता है तब मन में खूब हँसना चाहिए।

२५८. करेला मसाले के साथ ठीक तरह से पकाया जाय तो जीभ के लिए स्वादिष्ट और स्वास्थ्य के लिए अच्छा खाना बनता है। साथ ही वह अपना कड़वापन बनाये रखता है।

२५९. लेखकों का वर्गीकरण दो प्रकार से होता है। जो लेखक घटनाओं और प्रसंगों के बारे में लिखते हैं, वे पहले वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। जो कालातीत विषयों पर लिखते हैं वे दूसरे वर्ग में आते हैं।

२६०. मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। थोड़े लोग ऐसे होते हैं जो सभी लोगों के लिए ज़रूरत के होते हैं। दूसरे प्रकार के लोग थोड़े समय के लिए लोगों के लिए प्रिय होते हैं और बाद में ऐसे नहीं होते। तीसरे प्रकार के लोग ऐसे होते हैं जिनकी ज़रूरत लोग महसूस ही नहीं करते। लोग उन्हें तिरस्कार के साथ देखते हैं। मेरे मित्र किल्ले पहले वर्ग के हैं।

२६१. कामत ने जब भाषण खतम किया तब उन्होंने मेरे पैरों पर चाकू बाँध दिया कि मैं खेल शुरू करूँ (जूझ में भाग लेनेवाले हर एक मुर्गे के पैरों में चाकू बाँध दिया जाता है।)

२६२. जिस प्रकार कछुए को पानी होता है वैसे ही किल्ले के लिए कर्ण का चरित्र सहज एवं सरल रहा था।

२६३. शब्द सुनते नहीं और कान बोलते नहीं।

२६४. प्रतिदिन हम चावल खाते हैं, फिर भी वह हमारे लिए स्वादिष्ट होता है। चावल को हम अपने मुख्य आहार के रूप में खाते हैं।

२६५. जिस प्रकार द्रवीभूत सोना धातुमल को छोड़ देता है, जिस प्रकार हाथी बेल का फल खाता है, जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुली छोड़ता है उसी प्रकार सुगत ने अपना शरीर छोड़ दिया।

२६६. तपे हुए लोहखण्ड पर पानी डालने के समान, सोनेवाले के जागने के उपरान्त नष्ट होनेवाले सपने के समान, राख के बिना जलनेवाले कर्पूर के समान, ताजा दूध के फेन के समान बुद्ध ने अपने को शरीर से मुक्त किया।

२६७. मेरा शरीर पुराने पिंजड़े की ढ़ीली एवं जर्जर सलाखों के समान हो गया। यह रोग एक बहाना मात्र है।

२६८. जो व्यक्ति प्राणों के अधीन हो जाता है उसके लिए प्राण एक मशाल के समान हैं। जो व्यक्ति धर्म के अधीन हो जाता है उसके लिए धर्म ही मशाल बनता है।

२६९. सांसारिक सुखों से मुक्त तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं होगा।

२७०. जंगार लगा दर्पण जब अम्लोदक से साफ किया जाता है तब वह निर्मल एवं शोभित रहता है।

२७१. आँख की खुली पलक के बीच की निश्चल पुतली के समान।

२७२. पुक्कुस बुद्ध के पवित्र शब्दों को सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए, वैसे ही जैसे खाली कोठरी में धान से बोरे भरे हों, बैलगाड़ी के जुए में बैलों को बाँधने के बाद गाड़ी चलने के लिए तैयार हो, दरिद्र व्यापारी को आवश्यक धन मिल गया हो और रात के समय पैदल चलनेवालों को छप्पर दिया गया हो।

२७३. बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया - 'चुन्द को यह कहकर दोष मत देना कि उसके द्वारा दिया गया खुमी का खाना मेरे लिए अन्तिम खाना बन गया जिससे मेरी मृत्यु हुई। जानवर की हत्या करनेवाले शिकारी के बाण को दोष मत देना। जब ग्रीष्म ऋतु में तालाब सूख जाता है तो मछली को दोष मत दोना। पुरानी गाड़ी के टूटने से बैलों को दोष मत देना।'

२७४. स्त्रियों के प्रति तुम्हारे बर्ताव में सजग रहना। बूढ़ी स्त्रियों को माँ के समान, समान वय की स्त्रियों को बहिन के समान और अपने से छोटी स्त्रियों को बच्चे के समान मानना चाहिए।

२७५. जिस मनुष्य ने स्वयं को जीत लिया वह शूरों में महान रहता है।

वह युद्ध में शत शत सैनिकों को पराजित करनेवाले से भी बढ़कर वीर होता है।

२७६. प्रेम से द्वेष को शान्त किया जा सकता है, द्वेष से नहीं। शान्ति से क्रोध को , अच्छेपन से बुराई को, दान से कृपणता को और सत्य से असत्य को जीत लेना चाहिए।

२७७. वासना से बढ़कर आग नहीं है, घृणा से बड़ा घड़ियाल नहीं है, क्रोध से बढ़कर दुश्मन नहीं है, मोह से बढ़कर भयंकर जाल नहीं है, इच्छा से बढ़कर शक्तिशाली जलप्रवाह नहीं है, शान्ति से बढ़कर सन्तोष नहीं है।

२७८. जिस प्रकार माता प्राणों को भी त्यागकर अपने बच्चे की रक्षा करती है वैसे तुम भी हमेशा उठते वक्त, चलते वक्त, बैठते वक्त और सोते वक्त सजग रहना और हर एक जीव को प्यार देना।

२७९. दूसरों के धर्म और स्वतन्त्रता को आदर देनेवालों का धर्म और स्वातन्त्र्य आकाश के समान फैल कर विकास को प्राप्त करते हैं। दूसरों के धर्म एवं स्वतन्त्रता का नाश करनेवाले मनुष्य का धर्म और स्वातन्त्र्य पानी की लहरों के समान नष्ट हो जाते हैं।

२८०. दूसरों के प्रति किया जानेवाला पाप अपने प्रति ही किया जाता है। दूसरों को किया हुआ कल्याण अपना ही कल्याण होता है।

२८१. बुद्ध के उपदेश शिष्यों को बरसात में गलनेवाले शैवाल के समान, रिक्त तूणीर में बाणों के समान, दरिद्र भिखारी को बिना माँगे मिली संपत्ति के भंडार के समान और सूर्य के द्वारा अपने प्रकाश से पानी की गगरियों को भरे जाने के समान रहे।

२८२. अपवित्र जल में तेल डालने के समान आँखों के मोतियाबिन्द दूर करने के समान और सूर्य के द्वारा अंधकार दूर करने के समान बुद्ध ने मेरी शंकाओं को दूर किया।

२८३. जिस प्रकार खुली आँखें अपने मुख का सामनेवाला भाग देखती हैं, जिस प्रकार कमरे में दिया जलाने पर क्षण भर वहाँ प्रकाश फैलता है, जिस प्रकार खिड़की खोलने पर कमरे में हवा भर जाती है उसी प्रकार सुभद्र ने बुद्ध के शब्द क्षण भर के समय में ग्रहण किए।

२८४. सच्चा विश्वास, न्यायपूर्ण निश्चय, सदुक्ति, सद्वृत्ति, न्यायपूर्ण जीवन, श्रेष्ठ प्रयत्न, सजगता और अच्छे विचार, ये आर्य अष्टांगिक मार्ग के शिष्टाचार हैं।

२८५. १. जन्म, बुढ़ापा, रोग, मरण, अनिच्छित लोगों से संबन्ध, प्यारे

व्यक्तियों का वियोग, इच्छित वस्तु का न मिलना, यह सब दुःख का कारण बनता है। यह पहला सत्य है।

२. शारीरिक सुखों की इच्छा, जन्म लेने की और जन्म न लेने की इच्छा दुःख का कारण बनती है। यह दूसरा सत्य है।

३. सामाधि के ज़रिए इच्छा पर लगाम रखना, इच्छा से पीछे हटना और त्याग करना सभी दुःखों का नाश करता है। यह तीसरा सत्य है।

४. दुःखों को समाप्त करने का मार्ग शिष्टचार का चौथा सत्य है। यही अष्टांगिक मार्ग है। जो कोई इस अष्टांगिक मार्ग के विरुद्ध चलता है वह श्रमण कहलाने के योग्य नहीं। वह पीपल के फूल के समान, पंखों से रहित पक्षी के समान, हवा की छाया के समान और केंचुल से रहित सर्प के समान होता है।

२८६. सारी सृष्टि एवं जीव मरण के अधीन हैं और वे आपस में अलग अलग हो जाएँगे। इसलिए जीवन में सजग होकर सँभल कर रहना चाहिए। यही बुद्ध का अन्तिम उपदेश है।

२८७. बुद्ध जब परिनिर्वाण को प्राप्त हुए उस समय सारी पृथ्वी थर्रा उठी। वह तराजू के जैसे खड़खड़ाई जिस तराजू से मापने की वस्तु एवं माप वर्षा के प्रारंभ में तूफान में हिलने डोलनेवाले सुपारी के बाग जैसे और अपना सारा माल बाहर फेंके हुए जहाज़ जैसे छिन गए ।

२८८. दैवपुत्र के समान संपन्न कोई नहीं है।

२८९. जीवित व्यक्ति को ईश्वर से एकाकार होने के लिए समाधि और उपवास से बढ़कर दूसरा उपाय नहीं है और पापियों का मन सुधारने एवं पवित्र करने से बढ़कर दूसरा मार्ग नहीं है ।

२९०. स्त्री के समान मुस्कुराहट भरी उसकी आँखों में भविष्य को परखनेवाली पुरुष की नज़र भी थी। उसके हृदय की पुरुषजन्य शक्ति एक स्त्री के समान नाज़ुक थी।

२९१. सोने के म्यान में चमकनेवाली धारवाली तलवार जैसे।

२९२. ततैये के घोंसले की ओर पत्थर फेंकने के समान।

२९३. भूखे बाग को पालने के लिए बकरी को देने के समान।

२९४. झुंड से अलग होकर अकेले वन में घूमनेवाले मेमने को देखकर जिस प्रकार भेड़ियों का समूह सन्तोष से हुआता रहता है, उसी प्रकार।

२९५. कौओं के द्वारा छोटे कोयल को चोंच लगाने जैसे, भट्ठी के लाल लाल अंगारों के बीच सोने के तपने जैसे और साँझ के तारे का कुहासे में धुँधले रहने जैसे।

२९६. बाँझ स्त्रियाँ कितनी भाग्यशाली हैं, प्रसव न होनेवाली स्त्रियाँ कितनी भाग्यशाली हैं और जो स्तन बच्चे नहीं चूसते वे कितने भाग्य के हैं, इस प्रकार कहने के दिन निकट ही हैं।

२९७. गरुड़ पक्षी चंडूल को जिस प्रकार पकड़ता है, प्रकाशमान अर्द्धचन्द्र पश्चिम दिशा में रहता है, धनुष पर जिस प्रकार बाण चढ़ाया गया है उसी प्रकार ईसा क्रूस पर लटकने लगे।

२९८. दर्द शरीर की सहज प्रकृति है। कोई भी व्यक्ति उसे दूर कर सकता है क्या? इस प्रकार सोचते हुए हज़ार बिच्छुओं के एक साथ काटने पर जितना दर्द होता है उसी पीड़ा को ईसा ने शान्त होकर सहन किया।

२९९. बच्चा उसका मुख देख लेगा, इस इच्छा से प्रसव की पीड़ा सहन करनेवाली माता के समान, वेदना पहुँचानेवाले घाव की फ़िक्र किए बिना मरण में भी जीत की इच्छा करनेवाले सैनिक के समान अपने को छोड़कर दूर चली गई संतान को देखने की इच्छा करनेवाली माता के समान, काटनेवाले व्यक्ति को भी छाया प्रदान करनेवाले वृक्ष के समान अपने लोगों के संबन्ध में सोचते हुए ईसा अपनी पीड़ा भूल गये।

३००. ईश्वर! उन्हें क्षमा कीजिए। वे स्वयं नहीं जानते कि वे क्या करते हैं।

३०१. मृत्युरहित ईश्वर की मृत्यु के नाटक के अन्त में परदा गिरने के समान आकाश पर गहन अन्धकार व्याप्त हुआ।

३०२. जिस प्रकार हरिण का बच्चा पर्वत के ऊपर से बुलानेवाली अपनी माता के पास कूद कूद कर दौड़ता है, जिस प्रकार चंडूल पक्षी पकी हुई फसल के पास उड़ता हुआ आता है, जिस प्रकार रात का दिया सूर्योदय पर सूर्य में विलीन हो जाता है, जिस प्रकार बिजली कशाघात करती हुई आकाश से होकर दिगन्त में व्याप्त हो जाती है, उसी प्रकार ईसा अपना शरीर छोड़कर ईश्वर में विलीन हो गए।

३०३. जिस प्रकार उधार ली हुई वस्तु उसके मालिक को लौटाई जाती है उसी प्रकार ईसा ने अपना जीवन ईश्वर को समर्पित किया।

३०४. जिस प्रकार मोर वर्षाऋतु के अन्तिम इन्द्रधनुष की ओर एकटक देखता रहता है वैसे ही मग्दलन मरियम अपने शरीर को चादर

से आवृत करके क्रूस के मध्य में दृष्टि गड़ाकर अंजीर वृक्ष की छाया में बैठ गई।

३०५. अमर ईसा की निर्जीव मूर्ति के ऊपर सफेद छप्पर के जैसे चन्द्रोदय हुआ। उस दिन तक प्रेम का सन्देश एवं धर्मोपदेश देनेवाले उनके जीवन की धवल पवित्रता जैसी, उनके मृत्युरहित प्राणों की अमरता जैसी चाँदनी सब कहीं व्याप्त हो गई।

३०६. उसके लिए मैंने अपनी उँगलियाँ हड्डियों पर रगड़ लीं।

३०७. मेरे समान अनपढ़ और अनुभवहीन नारी बाद में धोखा खायगी।

३०८. यह सब उसने देख लिया। लेकिन कुछ भी नहीं पढ़ा।

३०९. जीवन ने उसे प्यार से पोषित किया। लेकिन मैंने पृथ्वी पर गिरे हुए टुकड़े खाकर जीवन बिताया और अपनी भूख को दूर करने का प्रयत्न किया।

३१०. जब उसने प्याला उठाया तब वह खिसककर नीचे गिरा और उसके पैरों पर पड़कर टुकड़े हो गया। वह उसी समय उसे भूल गई।

३११. प्याला मेरे ओंठों तक नहीं पहुँचा और मेरी प्यास न बुझी।

३१२. जीवन के अन्तिम दिनों में उनको माता का प्यार देकर उनकी सेवा करने का मौका मुझे मिला होता तो मैं कितनी सन्तुष्ट हुई होती।

३१३. निर्दय घरवाली निष्ठुर माता बनती है। जिस नारी के हृदय में प्रेम नहीं है वह प्रेमरहित माता बन जाती है।

३१४. तुम्हारे पिताजी के प्रति मेरा जो प्रेम था वह तुम्हारे रूप में प्रकट हुआ।

३१५. तुम्हें प्यास नहीं लगेगी और तुम्हारी जीभ नहीं सूखेगी।

३१६. जीवन में मैंने अनेक वस्तुओं को पाने की इच्छा की। लेकिन केवल एक अधिकार मुझे मिला। वह तुम्हारी अन्तिम दृष्टि मेरे हाथों से ढँकने का।

३१७. भाग्य पर्वत के ऊपर के मृग के समान होता है। तुम बुलावो तो भी वह रुकता नहीं और तुम्हारी प्रतीक्षा भी नहीं करता।

३१८. अच्छा सौन्दर्य मन को श्रेष्ठता के शिखर पर पहुँचा सकता है।

३१९. तुम्हारे दुःख में भी मैंने तुम्हें सन्तुष्ट एवं सुखी पाया।

३२०. नाशवन्त मनुष्य सब समान रूप से अनुग्रहीत रहते हैं और वे दुःख का अपना जीवन छोड़कर मृत्यु की राह पर धर्म का जीवन

अपनाकर शान्ति के साम्राज्य में पहुँच जाते हैं।

३२१. जब हम पराजित होते हैं तब स्वतन्त्र होने के कई मार्ग होते हैं।

३२२. दुःख से भरा हृदय खुशी खुशी की गई होली के समान है।

३२३. माता सन्तान को जन्म देती है। लेकिन क्या वह उसके जीवन का दैर्घ्य बढ़ा सकती है?

३२४. पौष के महीने में यकायक ऐसा लगा कि बिजली चमक गई हो। मेरे प्राणों में आनन्द और आश्चर्य भर आया।

३२५. दुःख की सीपी में मोती रूपी आनन्द छिपा रहता है।

३२६. अपने लिए कुछ रखते हुए ज़रूरतमन्दों को दान में दे दें तो तुम ईश्वर के सेवक हो। लेकिन अपने लिए रखे बिना सब कुछ दान में दे दें तो ईश्वर तुम्हारे सेवक बनते हैं।

३२७. शब्दों को मान्यता देते हुए काम करो। तुम्हारा काम स्वयं बोलेगा।

३२८. शब्दों का एक कान से दूसरे कान तक प्रचार पाना बेतार की व्यवस्था जैसे है। लेकिन अन्तर तो यही है कि बेतार की व्यवस्था केवल कही बात को सुनाती है। लेकिन कान से कान तक की यवस्था में समाचार तो एक कान से दूसरे कान तक व्याप्त तो होते ही हैं और हर एक मंजिल पर समाचार की मात्रा बढ़ भी जाती है। अन्त में हाथ भर धान बोरा भर भूसी में मिल जाता है।

३२९. सीखने के लिए निश्चित उम्र नहीं होती। मृत्यु तक कोई भी सीख सकता है और अपने को सुधार कर पूर्णता की ओर पहुँचाता है।

३३०. तुलसीदास ने जैसे कहा है वैसे मैं भी स्वान्तःसुखाय गाता हूँ। जिस प्रकार मेरे हाथ में लेखनी रहती है उसी प्रकार मैं ईश्वर के हाथों में रहता हूँ।

परिशिष्ट - २

गोविन्द पै के जीवन की प्रमुख घटनाएँ

१.	२३ मार्च १८८३.	जन्म (पिता - तिम्मा पै, माता - देवकी अम्मा)
२.	१८८९ - १९०३	मंगलोर में शिक्षण।
३.	फरवरी का अन्तिम सप्ताह १८९५	शोकगीत सुनकर गोविन्द पै को सर्वप्रथम कविता लिखने की प्रेरणा हुई।
४.	१८९९	शेक्सपीयर के 'ट्वेल्फथ नाइट' पुस्तक के पहले अंक का अनुवाद।
५.	१९००	मंगलोर की 'सुवासिनी' पत्रिका पर गोविन्द पै की पहली कविता 'सुवासिनी' प्रकाशित हुई।
६.	१९०३ - १९०४	मद्रास का शिक्षण। मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से बी. ए. की परिक्षा लिखी और स्वर्णपदक प्राप्त किया।
७.	१९११	कविता में प्रास का त्याग. जब वे बरोडा के नौसारी में थे तब टागोर की 'अयि भुवनमनमोहिनी' कन्नड़ भाषामें प्रास के बिना अनूदित की।
८.	१९२०	अंग्रेज़ी भाषा में मंजेश्वर के मन्दिर से संबंन्धित उनका प्रथम शोध-लेख.
९.	१९२७	तुळुनाड से संबन्धित उनका प्रथम शोध-लेख 'तुळुनाड - इतिहास के अन्धकार में' ई. स. १९२७ में मंगलोर में संपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन की स्मारिका 'पंचकज्जाय' में प्रकाशित हुआ।
१०.	१९२७	उनकी घरवाली कृष्णाबाय की मृत्यु हुई।
११.	१९२८	पैंतीस पदों की लंबी कविता 'गोम्मट जिनस्तुति' वृत्त में उन्होंने लिखी और उनकी पत्नी की समृति के लिए उन्हें

समर्पित किया।

१२. १९२८	'उमर खय्याम' - उमर खय्याम की प्रसिद्ध काव्यकृति 'रुबाइयत' के चुने हुए पदों का कन्नड भाषा में अनुवाद।
१३. मई, १९२८	'नन्दादीप' में प्रकाशित कविताएँ लिखने का प्रारंभ।
१४. १९२९	'ग्रीक नाटकों की कन्नड भाषा की शब्दावली'-गोविन्द पै ने शोध करके सिद्ध किया कि आठवीं शती के किसी ग्रीक नाटक में कन्नड भाषा के शब्द रहे हैं।
१५. १९३०	श्री पै के पहले कविता-संग्रह 'गिळिविंडु' का प्रकाशन।
१६. १९३१	ईसा के अंतिम दिनों पर आधारित 'गोलगोथा' महाकाव्य का निर्माण किया। श्री पंडेश्वर गणपति राव के लिखे 'क्रिस्तजन्म' नाम के पुस्तक ने श्री पै को 'गोलगोथा' लिखने की प्रेरणा दी।
१७. १९३७	'गोलगोथा' पुस्तक का प्रकाशन। मंगलोर के 'त्रिवेणी' प्रकाशन ने सर्वप्रथम 'गोलगोथा' प्रकाशित किया।
१८. १९४०	तीन भाषण - नीचे दिए गये विषयों पर श्री पै ने कन्नड संशोधन समिति, धारवार में तीन भाषण दिए। १. रन्न २. बसवेश्वर ३. कन्नड भाषा की प्राचीन प्रकृति।
१९. १९४६	'हेब्बेरळु' (अंगूठा) -एकलव्य पर लिखे गये 'हेब्बेरळु' नाटक का प्रकाशन।
२०. १९४७	'तुळुनाडु - पूर्वस्मृति' - तुळुनाड से संबन्धित शोध-लेख जो कासरगोड में संपन्न कन्नड साहित्य परिशद के अवसर पर प्रकाशित 'तेंकनाड' स्मारिका में लिखित।
२१. १९४७	'वैशाखी' महाकाव्य का प्रकाशन.

२२. १९४९	गोविन्द पै को राष्ट्रकवि के रूप में मान दिया गया। मद्रास सरकार ने उनको राष्ट्रकवि की पदवी प्रदान की। श्री पै कन्नड भाषा के प्रथम राष्ट्रकवि रहे।
२३. १९५०	कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष - मुंबई में संपन्न कन्नड साहित्य स म्मेलन में श्री पै अध्यक्ष बने।
२४. १९६२	'चित्रभानु' नाटक - पै ने एक गद्य नाटक 'चित्रभानु वा १९४२' नाम से प्रकाशित किया। यह नाटक ई. स. १९४२ के 'क्विट इंडिया' आंदोलन से संबन्धित।
२५. १९६२	'श्रीकृष्णचरित्र' - बंगाल के नवीनचन्द्र सेन की काव्य रचनाओं के आधार पर श्री पै के द्वारा लिखी गई पुस्तक का प्रकाशन।
२६. १९६२	अन्तिम कविता - श्री पै ने अपनी अन्तिम कविता -'वरुष हदिनल्कैथु बिदुगदेयनीदि' (स्वतन्त्रता के बाद चौदह वर्ष बीत गए)
२७. १९६३	'डॉक्टरेट' का अस्वीकार। मैसूर विश्वविद्यालय के द्वारा दिया गया डी. लिट् श्री पै ने स्वीकृत नहीं किया।
२८. ६-९-१९६३	मंगलोर में श्री गोविन्द पै का स्वर्गवास हुआ।

परिशिष्ट - ३

गोविन्द पै के द्वारा प्रमाणित तिथियाँ

१.	बुद्ध का जन्म	बुद्ध का जन्म शुक्रवार ई. पू. ३० मार्च ५८१ में हुआ। ई. पू. १८-६-५५३ में उन्होंने संसार का त्याग किया। ई. पू. ३-४-५४६ में उनको ज्ञानोदय हुआ।
२.	महावीर का जन्म	ई. पू. २६, फरवरी ५९८ में रविवार की रात की अन्तिम घड़ी में महावीर का जन्म हुआ।
३.	बुद्ध का परिनिर्वाण	ई. पू. १५, अप्रैल ५०१ में मंगलवार को बुद्ध का महान परिनिर्वाण हुआ।
४.	महावीर का परिनिर्वाण	ई. पू. १४, सितंबर ५२८ में मंगलवार को महावीर का परिनिर्वाण हुआ।
५.	पंप का जन्म	महाकवि पंप का जन्म ८२४ शालीवाहन शक वर्ष याने दुंदुभी संवत्सर, ई. स. ९०२ में हुआ।
६.	आदिपुराण का काल	महान कवि पंप ने 'आदिपुराण' नाम की अपनी काव्यरचना ई. स.९४२ में १६ अक्तूबर, रविवार को दिन के तीसरे या चौथे पहर को पूर्ण किया।
७.	चालुक्य विक्रम का राज्यारोहण	चालुक्य विक्रम के राज्यारोहण से संबन्धित राज्यारोहण के पिछले दिन किए जानेवाले 'नान्दि' आदि प्रारंभिक अनुष्ठान ९९९ पिंगल संवत्सर, चैत्र शुद्ध पद्य रविवार को याने फरवरी २६, १०७७ को हुआ। दूसरे दिन पूर्वाह्न, याने सोमवार को राज्यारोहण हुआ। वह बिदिगे पक्ष का तीसरा दिन था।
८.	हरिवंश का काल	पुन्नट गण के जिनसेन ने ११०००

		श्लोकों का 'जैन हरिवंश' संस्कृत भाषा में लिखा। उन्होंने शालीवाहन शक वर्ष ७०५ याने ई. स.७८३ में उसे पूर्ण किया।
९.	गोम्मट मूर्ति की स्थापना	(१) ५७ फीट के गोम्मटेश्वर की श्रवणबेळगाळा में १३-३-९८१ में स्थापना की गई। (२) ४१ - ५ फीट की ग्रानायट पत्थर की मूर्ति कारकळ में १३ -२ - १४३२ में स्थापित हुई। (३) गोम्मटेश्वर की ग्रानायट पत्थर की बडी सी मूर्ति वेणूर में १-३-१६०४ में स्थापित की गई।
१०.	पंपरामायण के पूर्ण होने का वर्ष	अभिनव पंप नाम से प्रसिद्ध नागचन्द्र ने पंपरामायण करीब ई. ११४० में पूर्ण किया।
११.	जन्न के काव्यग्रंथों के पूर्ण होने का वर्ष	जन्न कवि ने 'यशोधरा चरित्र' ई. स. १२०८ में और 'अनंतनाथ पुराण' ई. स.१२२५ में लिखा।
१२.	श्री मध्वाचार्य का जीवनकाल	श्री मध्वाचार्य का जन्म ई. स. १२३८ में हुआ। उनकी समाधि हिमालय के बदरिकाश्रम में ई.स. १३१८ में हुई।
१३.	विजयनगर का निर्माण	श्री विद्यारण्य ने विजयनगर के निर्माण का उद्घाटन शालीवाहन शक वर्ष १२५८ में रविवार धातुसंवत्सर के वैशाख शुद्ध सप्तमी को याने ३० एप्रील १३३५ में किया।
१४.	उद्भट काव्य	श्री सोमराज ने शालीवाहन शक वर्ष १४४४ में, चित्रभानु संवत्सर के ११वें अश्वयुज शुद्ध बुधवार को याने

		ई. स. १५२२ में उद्‌भट काव्य पूर्ण किया। वे हम्पी में रहते थे।
१५.	केरेबसदी की प्रतिष्ठा	कारकळ के केरेबसदी (तालाब का मन्दिर) की प्रतिष्ठा ई. स. १५४५ जनवरी ३१, शनिवार को हुई।
१६.	रेवणसिद्ध (जीवनकाल)	ई. स.१०९५ -११९०
१७.	मरुळसिद्ध (जीवनकाल)	ई. स. ११२०-१२०५
१८.	एकोरमी काल के संस्थापक	ई. स. ११२५-११६५
१९.	मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य का काल	ई. स.११३०-११६९
२०.	गदायुद्ध - रचनाकाल	इस विषय में श्री पै के निष्कर्ष इस प्रकार हैं -'गदायुद्ध' का 'शकसमागति' वाला पद बाद में जोड़ा हुआ है। इस पद के अनुसार रण्ण ने दूसरे काव्यग्रंथ ई. स. ९८० में पूर्ण किए। उन्होंने 'गदायुद्ध' ई. स.१००७ में पूर्ण किया।
२१.	तीन नागवर्मा और उनका जीवनकाल	श्री पै ने सप्रमाण सिद्ध किया कि कन्नड कवियों के बीच तीन नागवर्मा रहे थे। (१) पहले नागवर्मा एक ब्राह्मण थे। उनका कालई. स. ९५० - १०१५। उन्होंने 'छन्दोम्बुधि' और 'कामतक कादंबरी' नाम की पुस्तकों का प्रणयन किया। (२) दूसरे नागवर्मा जैन थे. उनका जीवनकाल करीब ई. स. ११२० - १२००। उन्होंने 'वास्तुकोश', 'काव्यालोकन' और 'भाषाभूषण' नाम की तीन पुस्तकें लिखीं। (३) तीसरे नागवर्मा एक ब्राह्मण थे। उनका जीवनकाल ई. बारहवीं सदी में था। उन्होंने 'चन्द्रचूडामणि शतक'

	नाम की पुस्तक लिखी।
२२. हरिहर - जीवनकाल	ई.११४५ में कवि का जन्म हुआ। ई.(११७५-१०८०) में उन्होंने 'गिरिजा कल्याण' लिखा। ई. १२३० -१२३५ में वे शिव में विलीन हो गए।
२३. राघवांक - जिवनकाल	राघवांक का जन्म ई. स. ११६० में हुआ। उन्होंने 'हरिश्चन्द्र' काव्य ई. स. ११९० में लिखा। उनका स्वर्गवास बेलूर में ई. स.१२१० में हुआ।
२४. लक्ष्मीश - जिवनकाल	लक्ष्मीश कवी कदूर प्रदेश के देवनूर नाम के स्थान से आनेवाले थे।
२५. शिशुमयन - जन्म	'त्रिपुरदहन सागत्य' के लेखक शिशुमयन का जन्म ई. स. ३१दिसंबर १४७२ में हुआ। उनका जीवनकाल चौदहवीं सदी में था।
२६. रत्नाकरवर्णि	'भारतेश वैभव' रचना के लेखक श्री रत्नाकरवर्णिने अपनी कविता में अनेक विदेशी शब्दों का उपयोग किया। श्री पै का विचार है कि कवि सोलहवीं शताब्दी के थे। उन्होंने अपनी रचना ई. स. १५२२ में की।
२७. पार्थिसुब्बा - काल और देश	यक्षगान की कला के पितामह पार्थिसुब्बा का जन्म कुंबळा के पास अजवर प्रदेश में हुआ। ई. स. १७३० - १७५० के बीच उनका जन्म हुआ और ई. स. १८०१-१८०२ के बीच उनका स्वर्गवास हुआ।
२८. दुर्गसिंह - जिवनकाल	दुर्गसिंह ने अपनी रचना 'पंचतंत्र' ई. स. ४मार्च १०३१ में पूर्ण की।
२९. ब्रह्मशिव - जिवनकाल	'समयपरीक्षा' नाम का काव्य उन्होंने लिखा। उनकाजीवनकाल ई. स. ११५० -१२००तक था।

परिशिष्ट - ४

गोविन्द पै के शोध - लेख

श्री पै ने अंग्रेज़ी और कन्नड भाषाओं में असंख्य शोध-लेख लिखे। उनमें से थोड़े लेखों की सूची नीचे दी गई है -

१. उडुपी श्रीकृष्ण मठ में सारस्वतों से संबन्धित दो शिलालेख
२. इतिहास के अन्धकार में तुळुनाड
३. तुळुनाड - पूर्वस्मृति
४. कर्नाटक में जैन धर्म की शुरूआत
५. पंप - देश और काल
६. मध्वाचार्य का काल
७. रन्न एक ही रहे थे।
८. हैगा - हैवा
९. तलकडु के पश्चिमी गंगों के अन्तिम दिन
१०. नागवर्मा कितने थे ?
११. बुद्ध और महावीर का परिनिर्वाण
१२. वज्रसूची
१३. नीन + आर + गे
१४. मलवळ्ळी के खंभे पर का अभिलेख
१५. गोम्मट नाम की व्युत्पत्ति और अर्थ
१६. कद्री का मंजुनाथ
१७. लक्ष्मीश का देश और काल
१८. कन्नड षट्पदी
१९. 'कर्नाटक' शब्द की व्याख्या और अर्थ ('न' का उच्चारण 'नट' शब्द के 'न' जैसा या 'गण' शब्द के 'ण' जैसा ?)

२०. पार्थिसुब्बा - हमारे पूर्वजों के संबन्ध में

२१. पूर्वकालीन उपलब्धियाँ

२२. रत्नाकर सिद्ध का काल

२३. श्रवणबेळगोळा में गोम्मट की मूर्ति की स्थाप्ना

२४. बाहुबली की मूर्ति को गोम्मट क्यों कहा जाता है ?

२५. टोळेमी हिप्पकुरा

२६. नन्दलिके लक्ष्मीनाराणप्पा

२७. कन्नड भाषा का प्राचीन रूप

२८. भारत और ग्रीस के संबन्ध

२९. युगों की शुरूआत

३०. वेणूर का पत्थर का अभिलेख

स्वस्तिश्री शालिवाहन शक १५९७ राक्षस संवत्सर चैत्र बहुल १० को
चीगड पाटणीं बैसिके रंगभट्ट तथा विनायकपंडित आपुभट्ट तेगै वैद्य
तानिं कोचिचा कुमंदोर आंद्रिकि फांड्रे त्या वानि रोपान ह्या मलबारदेश
बु आविले औषधमात्र रुक्षवाल्लि झाडरवंउं ओळखतेल्या मनुष्याकडु
न गोदेकुनु वेवेगळां गावांतु पेटवून तिंनिं वेरवद आणवून त्यात्या झाडांचें फळ
फूल पान बीज समस्तां त्यान्या तुतु काला वरिस पादून तिंतीं चितारिलीं त्या उप
रांत आमिं आमगेल्या वैद्यग्रंथाचानि घीटाप्रमाणीं त्यांत्या ओखधाचे गुण
वाकुनु सकानजो जो गुण आमका कळलो तो तो वात्यां आरवदांचीं नावं पळेउनु
आजि दानि वर्षं सकान्नि साडे आमिं लागिना वूतु दालिक्रुस पादून दिलातें ल
टिक अग्निशाणुं चाकन अविस्पणु आंमि आमचीं निसाणि करुणु दिली
ते सत्यवचनणु मानुवें जगद्वरुणु नागरबा पानद्द बरवूनु दिली श्रीः

रंगभट्ट

विनायकपंडित

आपु वीओम

The Konkani Testmony of Appu Bhat, Ranga Bhat and Vinayak Pandith as well as the Konkani terms for variaous parts of plants fixing expression in 12 volumes of **Hortus Indicus Malabaricus** (Published between 1678 and 1693AD) are in Devanagari.



डॉ कय्यार किंञण्ण रै

७.६.१९१४ में जन्म

डॉ. कय्यार किंञण्ण रै जी कन्नड भाषा के महान लेखक कवि। केंद्र साहित्य अकादेमी पुरस्कृत, राष्ट्रीय पुरस्कार विजेत, स्वातंत्र्य आंदोलन में भी सक्रिय भाग लिया था। १९६९ में अत्युत्तम अध्यापक पुरस्कार राष्ट्रपति से प्राप्त हुआ। १९९८ में अखिल भारत कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। मंगलूर विश्वविद्यालय से डी. लिट पदवि इनको प्राप्त हुई।

संस्कृत तथा कन्नड भाषा के विद्वान रहे। १३ काव्य संग्रह, ८ गद्य संग्रह, ६ साहित्य विमर्शात्मक ग्रंथ, ४ कन्नड व्याकरण प्रबंधों का संग्रह, ६ विद्यार्थियों के लिए साहित्य कृतियों का संग्रह संपादित किया है।



डॉ एल सुनिता बाई

जन्म : २४-५-१९४४ कोचीन (केरळ).

केरळ विश्वविद्यालय से संस्कृत, हिन्दी, पी.एच.डी. पूर्व प्रोफेसर, सुकृतीन्द्र प्राच्यविद्या शोधसंस्थान, कोचीन, इनका १७ ग्रंथ एंव ५० शोधनिबन्ध प्रकाशन हुआ है। गत ४० वर्षा से अनुवाद के क्षेत्र में कार्यरत। भारतीय अनुवाद परिषद की ओर से अनुवाद के लिए वर्ष २००५-०६ का डा. गार्गी गुप्त द्विवागीश पुरस्कार प्राप्त।

कोंकणी भास आनी संस्कृती प्रतिष्टान
मंगळूर - ५७५०१६

रू - २००.००